श्रृंखला सम्पादक
अखिलेश
कहानियाँ रिश्तों की
मानवता
सम्पादक
अवधेश मिश्र

मानवता

कहानियाँ रिश्तों की

मानवता
'कहानियाँ रिश्तों की'

शृंखला सम्पादक
अखिलेश

सम्पादक
अवधेश मिश्र

प्रकाशकीय

'कहानियाँ रिश्तों की' पुस्तक शृंखला की योजना सहसा नहीं बनी। यह अनुभव किया जा रहा है कि विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत कारणों से सम्बन्धों की अन्त:सलिला क्षीण हो रही है। सम्बन्ध वे सतरंगी सूत्र हैं जिनसे मनुष्यता का इन्द्रधनुषी पट बुना और बना है। व्यापक स्तर पर कहें, तो समग्र सृष्टि ही सम्बन्धों के सतत चक्र का प्रतिफल है। हमारा ध्यान हिन्दी कहानियों की ओर गया जिनमें सम्बन्धों की एक समृद्ध मंजूषा मौजूद है। साहित्य की यही विशेषता है कि वह विस्मृति का धुँधलका दूर कर पाठक को मनुष्यता की नई सुबह के लिए जाग्रत करता है।

इस सन्दर्भ में अनेक रचनाकारों और मित्रों से चर्चा हुई। उन्हें भी यह योजना अच्छी लगी। तय किया गया कि इस पुस्तक शृंखला में कुछ चुनिन्दा सम्बन्धों पर पुस्तकें प्रकाशित हों। फलत: जिन सम्बन्धों पर पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं वे है–प्रेम, दाम्पत्य, परिवार, माँ, पिता, सहोदर, दादा-दादी नाना-नानी, बड़े-बुज़ुर्ग, दोस्त, गाँव-घर, मानवता। ये पुस्तकें पाठकों की संवेदना व भावना को प्रशस्त करेंगी, ऐसी हमारी मंगलाशा है।

हमारी हार्दिक इच्छा है कि सुधी पाठक इन पुस्तकों को पढ़कर अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें अवगत कराएँ। पुस्तकों में सम्मिलित कहानियों पर अपनी राय देते हुए यह सुझाव भी दें कि इन सम्बन्धों पर और किन कहानियों को शामिल किया जा सकता है। यह भी बताएँ कि क्या कुछ और ऐसे सम्बन्ध हैं जिनको केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियों को इस शृंखला में रखा जाना अपेक्षित है। पाठकों की सहभागिता से ही शब्दों का लोकतंत्र मजबूत होता है।

'कहानियाँ रिश्तों की' शृंखला की पुस्तकें विभिन्न अवसरों पर भेंट की जा सकती हैं।...या कोई भी व्यक्ति इन्हें पढ़ते हुए अपने रिश्तों का कोई गुमनाम...लापता सिरा हासिल कर सकता है। यह भी जाना जा सकता है कि समय और समाज की गति-मति रिश्तों में व्याप्त आत्मीयता को किस तरह तीव्र अथवा क्षीण करती चलती है। एक संक्रमणशील समाज में सम्बन्धों के भास्वर भविष्य को समर्पित है यह पुस्तक शृंखला—'कहानियाँ रिश्तों की'।

रिश्तों की बुनियाद पर

सम्बन्धों पर आधारित कहानियों की यह शृंखला पाठकों, शोधार्थियों, समाजशास्त्रियों और सामाजिक चिन्तकों के लिए सादर प्रस्तुत है।

यूँ तो हर अच्छी कहानी, सभी अच्छे किस्से इनसानी रिश्तों की बुनियाद पर ही रचे जाते हैं किन्तु कहानियों के हमारे इन संकलनों की नाभि में रिश्तों को सबसे प्रमुख कारक मानने के पीछे कुछ अन्य वजहें भी हैं जिनकी चर्चा यहाँ अनुचित नहीं होगी।

भारतीय समाज में रिश्तों को जितनी मजबूती, आत्मीयता और ऊर्जा हासिल रही है, वह विरल है। एक तरह से कहा जा सकता है कि इस देश के यथार्थ को रिश्तों की समझ के बगैर जाना-समझा नहीं जा सकता है। माँ-पिता, भाई-बहन, दोस्त, दादी-नानी, बाबा-नाना, मामा, मौसा-मौसी, बुआ-फूफा, दादा, चाचा, दोस्ती–अनगिनत सम्बन्ध हैं जो लोगों के अनुभव-संसार में जीवन्त हैं और जिनसे लोगों का अनुभव-संसार बना है। इसीलिए हमारे देश की विभिन्न भाषाओं में लिखी गई कहानियों, उपन्यासों आदि में ये रिश्ते बार-बार समूची ऊष्मा, जटिलता और गहनता के साथ प्रकट हुए हैं। न केवल लेखकों, कवियों, कलाकारों बल्कि सामाजिक चिन्तकों के लिए भी ये रिश्ते एक तरह से लिट्मस पेपर हैं जिनसे वे अपने अध्ययन क्षेत्र के निष्कर्षों, स्थापनाओं, सिद्धान्तों की जाँच कर सकते हैं। अत: रिश्तों पर रची गई कहानियों की यह शृंखला हमारी दुनिया का अंकन होने के साथ-साथ हमारी दुनिया को पहचानने और उसकी व्याख्या करने की परियोजना के लिए सन्दर्भ कोश के रूप में भी ग्रहण की जा सकती है।

कहना जरूरी है कि हमारे देश में विभिन्न प्रकार के नजदीकी मानव सम्बन्धों का स्वरूप कोई स्थिर चीज नहीं रहा है। तरह-तरह के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के सापेक्ष उसमें बदलाव होते रहे हैं। इस शृंखला की विभिन्न कड़ियों में कहानियों के चयन के समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि वे किसी एक खास अवधि या कालखंड की न होकर समूची हिन्दी कहानी के खजाने से चुनी जाएँ। अत: इन कहानियों के पाठ से गुजरना आधुनिक समाज के परिवर्तन, विकास और इनके मानव आत्मा पर पड़नेवाले असर को समझने में भी मददगार हो सकता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कहानियाँ सामाजिक अध्ययन की खुराक भर न हों, इनके होने की बुनियादी और अपरिहार्य शर्त इनका कहानी के रूप में भी सार्थक और विशिष्ट होना है। इसलिए आप इस शृंखला के विभिन्न संकलनों में हिन्दी के वरिष्ठ एवं नए कथाकारों की प्रसिद्ध कहानियों को पढ़ सकते हैं।

इस योजना के सम्पादन के सन्दर्भ में यह कहना आवश्यक है कि इसके प्रत्येक संकलन के

अलग-अलग सम्पादक हैं जिनकी समकालीन रचनाशीलता में अपनी ठोस उपस्थिति है। सम्पादन और चयन का वास्तविक कार्य उन्होंने ही किया है। अत: इस आयोजन में जो कुछ अच्छा और स्वीकार्य है वह उन्हीं के कारण है। जो कमियाँ हैं, अन्तर्विरोध हैं यदि वो हैं तो बतौर शृंखला सम्पादक मेरी त्रुटियों, सीमाओं के कारण हैं, उनके लिए मैं आपसे यही अनुरोध करूँगा कि मुआफ करते हुए रिश्तों के इस कथा-संसार में सम्मिलित हों।

आखिर में, मैं राजकमल प्रकाशन के प्रबन्ध निदेशक श्री अशोक महेश्वरी जी का आभारी हूँ कि उन्होंने इस परियोजना के लिए अपनी स्वीकृति दी और शृंखला सम्पादक के रूप में मुझे कार्य करने का न केवल अवसर प्रदान किया बल्कि काम करने की प्रक्रिया में हर तरह की स्वतन्त्रता और सहूलियतें दीं।

भूमंडलीकरण और संचार क्रान्ति के बाद दुनिया काफी बदल गई है। भारतीय समाज के विषय में विचार करें तो कह सकते हैं कि उक्त बदलाव का सर्वाधिक असर यहाँ इनसानी रिश्तों पर ही पड़ा है। उस पर इतने आघात, इतने घाव हुए हैं कि उसके विगत चेहरे को पहचानना नामुमकिन हो चुका है। रिश्तों के मध्य की गरमजोशी, संवेदना, विश्वास, एका आदि के तार छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। हम कह सकते हैं कि रिश्तों का यह भरा-पूरा संसार छूट रहा है, बिछड़ रहा है। जब कोई चीज हमसे दूर होती है, छूटती है तभी शायद हमें उसकी सर्वाधिक जरूरत होती है। ये कहानियाँ जड़ों से कटते जा रहे अकेले, निहत्थे आज के आदमी की इस दिशा में कुछ मदद कर सकें, उसके सरोकार और जज्बातों को थोड़ी ताकत दे सकें, यही हमारी आकांक्षा है।

–अखिलेश

सम्पादकीय

समकालीन युवा कवि व्योमेश शुक्ल अपनी एक कविता में कहते हैं–

कुछ लोगों ने मुझसे पूछा

तुम कितने भाई बहन हो

मैंने कभी गिना नहीं

गिनने लगा

मैं छोटा बोला चौदह

वे हँसे और मान गए ममेरों और मौसेरों को सगा मानने की

मेरी निर्दोष गलती

इस तरह मुझे बताई गई

माँ के गर्भ और पिता के वीर्य की अनिवार्यता

और सगेपन की रुढ़ि।

'माँ के गर्भ और पिता के वीर्य की अनिवार्यता' और 'ममेरों और मौसेरों को सगा मानने की निर्दोष गलती' दरअसल जैविकता और सामाजिकता का द्वैत है। वास्तविकता यह भी है कि अब इस जैविक अनिवार्यता का सामाजिक रूपांतरण 'एकल परिवार' के रूप में हो चुका है। ऐसे में द्वितीयक रिश्तों की ऊष्मा महसूस करना मुश्किल हो गया है।

द्वितीयक यानी चचेरे-ममेरे भाई-बहन, चाचा-ताऊ, बुआ, एवं ननिहाल के अन्य रिश्ते। ये रिश्ते-नाते भारतीय पारिवारिक तंत्र की विशेषता हैं, जरा सोचिए, बहुत सामर्थ्यवान अंग्रेजी भाषा के शब्द अंकल, आंटी या कजिन का अर्थ-छवियाँ क्या भारतीय रिश्तों की बहुरंगी भंगिमा के साथ न्याय करने में समर्थ हैं? अभी तक ये सम्बोधन गैर पारिवारिक औपचारिक रिश्तों के ही हुआ करते थे किन्तु अब तो सगे चाचा-चाची भी अंकल-आंटी पुकारे जाने लगे हैं। ये परिवर्तन पारिवारिक संरचनाओं में आए बदलाव के सूचक हैं।

चचेरे-ममेरे रिश्तों में जीवन्त एवं सतत संवाद अब दुर्लभ हैं। स्कूली बच्चों की किताबों में भी परिवार का अर्थ माता-पिता और बच्चे ही हैं। ऐसे में यदि कोई छोटे बृहत्तर परिवार की बात करता है तो इसे उसकी निर्दोष गलती ही कहा जा सकता है।

अब लुप्तप्राय हो रहे संयुक्त परिवार में कई बार सगे-चचेरों का अन्तर खत्म हो जाता है। तमाम चाचियों के बीच कोई एक ऐसी चाची होती थी जिनसे परिवार के सभी बच्चे ज्यादा आत्मीय होते थे। चाचा-भतीजे का सम्बन्ध ज्यादा सहज एवं खुला होता था। किन्तु कभी-कभी इसका विपरीत भी घटित होता था। संयुक्त परिवार संघर्ष के कुरुक्षेत्र भी बनते देखे गए हैं। 'महान् भारत कथा' ऐसे ही एक महाकाव्यात्मक संघर्ष का उदाहरण है। रिश्ते शक्ति संबल या कमजोरी कब और कैसे बन जाते हैं इसकी एक विशिष्ट गतिकी होती है, जो कई बार यूरोकेन्द्रित सिद्धान्तों की अवहेलना करती है। वैसे ही जहाँ जीवन से साक्षात्कार की बात हो, कोई भी सिद्धान्त बहुत दूर तक साथ नहीं देता। साहित्य के माध्यम से भी समाज की एक समझ विकसित की जा सकती है। साहित्य का एक प्रकार्य सामजिक दस्तावेज होना भी है।

वस्तुत: सार्वजनिक जीवन के दबावों की फलश्रुतियाँ निजी एवं पारिवारिक जीवन में भी होती हैं। अपने आरम्भिक काल से ही हिन्दी कहानी का रिश्ता इनसे रहा है। अब तो इतिहास को भी फिक्शन में लिखने की बात हो रही है। तो कथा साहित्य की इस भूमिका को भी रेखांकित किया जाना चाहिए। इस संग्रह में संकलित कहानियों को इस दृष्टि से देखना चाहिए। इस उद्देश्य में हम कितने सफल या असफल हुए हैं यह तो सुधीजन ही बता पाएँगे। हमने अपनी तरफ से यह कोशिश जरूर की है। निश्चित ही इस प्रयास में कुछ कमी रह गई होगी, इसे मेरी सीमा और अज्ञान ही माना जाना चाहिए।

हम अपनी ओर से इस शृंखला के सम्पादक श्री अखिलेश के प्रति आभार व्यक्त करते हैं साथ ही हम संकलित कहानियों के लेखकों के प्रति भी शुक्रगुजार हैं।

–अवधेश मिश्र

अनुक्रम

ताई

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

१

"ताऊजी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे?'' कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैलाकर कहा–"हाँ, बेटा, ला देंगे।'' उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले–"क्या करेगा रेलगाड़ी का?''

बालक बोला–"उसमें बैठकर बली दूल जाएँगे। हम बी जाएँगे, चुन्नी को बी ले जाएँगे। बाबूजी को नहीं ले जाएँगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जाएँगे।''

बाबू–"और किसे ले जाएगा?''

बालक दम भर सोचकर बोला–"बछ ओल किसी को नहीं ले जाएँगे।''

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा–"और अपनी ताई को नहीं ले जाएगा?"

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला–"ताई को नहीं ले जाएँगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं–"अपने ताऊजी ही को ले जा, मेरे ऊपर दया रख।"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया।

बाबू साहब ने फिर पूछा–"ताई को क्यों नहीं ले जाएगा?"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई के भाव को देखकर उसे यह आशा न थी कि वह प्यार करेंगी। उससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा–"क्यों रे, बोलता नहीं? ताई प्यार करें तो रेल पर बिठाकर ले जाएगा?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनी के पास ले जाकर उससे बोले–"लो इसे प्यार कर लो तो तुम्हें भी ले जाएगा।"

परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोलीं–"तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बैठाने की चेष्टा करते हुए बोले–"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठाएगा। –क्यों रे मनोहर?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में तो चोट नहीं लगी, पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया। चुमकार-पुचकार कर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसा तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया।

बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले–"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया। जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुँह मटकाकर बोलीं–"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे? आप ही तो मेरे ऊपर डालते थे और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं!"

बाबू साहब कुढ़कर बोले–"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं?"

रामेश्वरी–"और नहीं किसे कहते हैं? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है, तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबू–"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है!"

रामेश्वरी–"तुम्हारा हो जाता होगा और होने को होता है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो। पराये धन से भी कहीं घर भरता है!"

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले–"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे?"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं–"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो, पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं; नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं–पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा–"पूजा-पाठ सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।"

श्रीमती जी कुछ-कुछ रुआँसे स्वर में बोलीं–"इसी विश्वास ने सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जाएँ, तो काम कैसे चले? सब विश्वास पर ही बैठे रहें, तो आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गए।

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनसे एक छोटा भाई है। उसका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु 35 वर्ष के लगभग है और छोटे भाई कृष्णदास की 21 के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें हैं। एक पुत्र–वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं–और कन्या है। कन्या की वय दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं–ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तानहीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तानहीनता का बड़ा दुख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शैया पर लेटे शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे हैं। पास ही दूसरी शैया पर रामेश्वरी हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गए थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा–"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोली–"तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन पंडित ने कहा कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है, और उपाय करने से सन्तान भी हो सकती है। उसने उपाय भी बताए थे, पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान के अधीन है।"

बाबू साहब हँसकर बोले–"तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी...क्या कहूँ? तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया भर के झूठे और धूर्त हैं। झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनक कर बोलीं–"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ से बनाकर तो कहते नहीं हैं। शास्त्र में जो

लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है तो वे भी झूठे हैं। अँगरेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठ बताते हैं।"

बाबू साहब–"तुम बात तो समझतीं नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो, परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते हैं और लोगों को ठगते फिरते हैं? ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी–"हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो। अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला, तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले–"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का सुख देखने की इच्छा न हो, परन्तु क्या किया जाए? जब नहीं है, और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है; जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाए।"

रामेश्वरी कुढ़कर बोलीं–"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ? इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला, यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्ही से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँसकर बोले–"अरे, तुम भी कहाँ की क्षुद्र बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गए हैं, उनका सबका नाम क्या उनकी सन्तान की बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है, जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे। उनके सन्तान कहाँ हैं। पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला आ रहा है, और अभी तक न जाने कितने दिनों तक चला जाएगा।"

रामेश्वरी–"शास्त्रों में लिखा है, जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती?"

बाबू–"मुक्ति पर मुझे विश्वास नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम? यदि मुक्ति होना भी मान लिया जाए, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवालों की मुक्ति हो ही जाती

है! मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है? ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी?''

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं–"अब तुमसे कौन बकवास करे। तुम तो अपने सामने किसी को मानते ही नहीं।''

३

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी से भद्दी और बिलकुल काम में न आनेवाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपना समझता है तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आनेवाली, नष्ट होने पर मनुष्य को दुख होता है, इसलिए कि वह अपनी चीज है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपना बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं कर लेता कि वह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक् नहीं किए जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लानेवाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी जब यह देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हे-नन्हे मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया

और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गईं। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उस समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।'' कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आए। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद टूटी। पति को बच्चों में मग्न होते देखकर उनकी भौंहें तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आए और मुस्कुराकर बोले–"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी उनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।''

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दुख हुआ। केवल दुख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध आया। वह दुख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले–"इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।''

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी, परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मन में कहा–'इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जाएँ, पाप कटें! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।'

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा–"अब झेंपने से क्या लाभ। अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।''

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं, "मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी। तुम्हीं को मुबारक रहे। निगोड़े आप ही आ-आ के घुसते हैं। एक घर में रहने में कभी-कभी हँसना-बोलना पड़ता ही

है। अभी परसों जरा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बात सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन न वों चैन।''

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा–"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है! अभी अच्छी-खासी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।''

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वे आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे-ही-जैसे बाबू राजमीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्राय: बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नजर से गिरती जा रही हैं, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने यह सोचा–पराए बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं। दुनिया मरती जाती है, पर दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गए। न ये होते, न मुझे यह दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे, उस दिन घी के दीये जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरे घर का सत्यानाश कर रखा है।

४

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति के भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए टहलने लगीं।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गई? और वह छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे तो क्या ही आनन्द आवे! देर तक गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया

और उनकी टाँगों में लिपटकर बोला–"ताई, हमें पतंग मँगा दो?'' रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा–"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।''

मनोहर कुछ अप्रतिभ-सा होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा–"ताई मँगा दो, हम भी उड़ाएँगे।''

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा–यदि यह मेरा पुत्र होता तो आज मुझसे बढ़कर भाग्यवान स्त्री संसार में दूसरी न होती! निगोड़ा-मरा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है। यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरनेवाली थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला–"तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी, तो ताऊ जी से कहकर तुम्हें पिटवाएँगे।''

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुँह क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़क कर बोलीं–"जा, कह दे अपने ताऊ जी से। देखें, वह मेरा क्या कर लेंगे।''

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा–यह सब ताऊ जी के दुलार का फल है कि बालिश्त भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे, इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहाँ पर एक द्वार था जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया, और उनसे दो फीट दूर पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे घर के आँगन में जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख, वह प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा, परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला गया। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया–"ताई!'' रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उसके मन में आया कि अच्छा है,

मरने दो, सदा का पाप कट जाएगा। यही सोचकर वह एक क्षण रुकीं। इधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया–"अरी ताई!" रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर से गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह जोर से चिल्ला उठतीं और कहतीं–"देखो-देखो, वह गिरा जा रहा है–उसे बचाओ, दौड़ो–मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं–"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ मैं चाहती तो बचा सकती थी–मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी, टाँग बिठा दी गई। वह क्रमश: फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा–"मनोहर कैसा है?"

रामजीदास ने उत्तर दिया–"अच्छा है।"

रामेश्वरी–"उसे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई, हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं। अब वह मनोहर और उसकी बहन चुन्नी से द्वेष नहीं करतीं। और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

दो आस्थाएँ

अमृतलाल नागर

१

"अरी कहाँ हो? इन्दर की बहुरिया'', कहते हुए आँगन पार कर पंडित देवधर की घरवाली सँकरे, अँधेरे, टूटे हुए जीने की ओर बढ़ी।

इन्दर की बहू ऊपर कमरे में बैठी बच्चे का झबला सी रही थी। मशीन रोककर बोली, "आओ, बुआजी। मैं यहाँ हूँ।'' कहते हुए वह उठकर कमरे के दरवाजे तक आई।

घुटने पर हाथ टेककर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए पंडिताइन इस कदर हाँफ रही थीं कि ऊपर आते ही जीने के बाहर की दीवार से पीठ टेककर बैठ गईं।

इन्दर की बहू आगे बढ़कर पल्ले को दोनों हाथों की चुटकियों से पकड़ सात बार अपनी फुफिया सास के पैरों पड़ी।

"ठंडी सीरी बूढ़ सुहागन, दूधन नहाओ पूतन फलो!'' आशीर्वाद देते हुए पंडिताइन रुकीं, दम लेकर अपने आशीर्वाद को नया बोल देते हुए कहा, "हम तो, बहुरिया रात-दिन यही मनाए हैं। पहलौठी का होता, तो आज दिन ब्याव की फिकर पड़ती। (दबी आह) राम करैं, मारकंडे की आर्बल लैके आवै जल्दी से। राम करैं, सातों सुख भोगो बेटा!''

इन्दर की बहू का मुख-मंडल करुणा और श्रद्धा से भर उठा, पलकें नीची हो गईं। फुफिया सास की बाँह पकड़कर उठाते हुए कहा, "कमरे में चलो, बुआजी।''

"चलो, रानी। तनिक सैंताय लिया, तो साँस में साँस अमाई। अब हमसे चढ़ा-उतरा नाहीं जाय है, बेटा। क्या करैं?''

बुआजी उठकर बहुरिया के साथ अन्दर आईं। मशीन पर नन्हा-सा झबला देखकर बुआजी ने एक बार अपनी भतीज-बहू को खुफिया पुलिस की दृष्टि से देखा, फिर पूछा, "ई झगला...''

"दूधवाली के बच्चे के लिए सी रही हूँ। चार बिटियों के बाद अबके लड़का हुआ है उसे। बड़ा शुभ समै है बिचारी के लिए।''

"बड़ी दया-ममता है, बहू, तुमरे मन में। ठाकुरजी महाराज तुमरी सारी मनोकामना पूरी करैं। तुम्हें और इन्दर को देख के ऐसा चित्त परसन्न होए है, ऐसा कलेजा जुड़े है, बेटा, कि...जुग-जुग जियौ! एक हमरे भोला-तिरभुअन की बहुएँ हैंगी। (आह, फिर विचार-मग्नता) हूँ:! जैसा मानुख बैसी जोय। बहूबानी तो कच्चा बेंत होमें हैंगी। पराए घर की बेटियों को क्या दोस दूँ।''

"कोई नई बात हुई बुआजी?''

"अ-रे। जिस घर के सिंस्कार ही बदल जाएँ, उस घर में नित्त नई बातें होमेंगी। हम तो कहमे हैं, रानी, कि हमरे पाप उदै भए हैं।''

कहकर बुआजी की आँखें फिर शून्य में सध गईं। इन्दर की बहू को 'नई बात' का सूत्र नहीं मिल पा रहा था, इसलिए उसके मन में उथल-पुथल मच रही थी। कुछ नई बात जरूर हुई है, वो भी कहते थे कि फूफाजी कुछ उखड़े से खोए हुए से हैं।

"बड़े देवर की कुतिया क्या फिर चौके में।...'' इन्दर की बहू का अनुमान सत्य के निकट पहुँचा। घटना पंडित देवधर के ज्येष्ठ पुत्र डॉक्टर भोलाशंकर भट्ट द्वारा पाली गई असली स्काटलैंड के श्वान की बेटी जूलियट के कारण ही घटी। इस बार तो उसने गजब ही ढा दिया। पंडितजी की बगिया में पुरखों का बनवाया हुआ एक गुप्त साधना गृह भी है। घर की चहारदीवारी से अन्दर ही यह बगिया भी है, उसमें एक ऊँचे चबूतरे पर एक छोटा-सा मन्दिर बना है। मन्दिर में एक संन्यासी का पुराना कलमी चित्र चन्दन की नक्काशीदार, जर्जर चौकी पर रखा है। उस छोटे से मन्दिर में उकड़ँू बैठकर ही प्रवेश किया जा सकता है। मन्दिर के अन्दर जाकर दाहिने हाथ की ओर एक बड़े आलेनुमा द्वार से अपने सारे शरीर को सिकोड़कर ही कोई मनुष्य साधना-गृह में प्रवेश कर सकता है। इस गृह में संगमर्मर की बनी सरस्वती देवी की अनुपम मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिस पर सदा तेल से भिगोया रेशमी वस्त्र

पड़ा रहता है। केवल श्रीमुख के ही दर्शन होते हैं। मूर्ति के सम्मुख अखंड-दीप जलता है। यह साधना-गृह एक मनुष्य के पालथी मारकर बैठने लायक चौड़ा तथा मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करने लायक लम्बा है। पंडित देवधरजी भट्ट के प्रपितामह के पिता को संन्यासी ने यह मूर्ति और महासरस्वती का बीज-मंत्र दिया था। सुनते हैं, उन्होंने संन्यासी की कृपा से यहीं बैठकर वाग्देवी को सिद्ध किया और लोक में बड़ा यश और धन कमाया था। पंडितजी के पितामह और पिता भी बड़े नामी-गिरामी हुए। रजवाड़ों में पुजते थे। पंडित देवधरजी को यद्यपि पुरखों का सिद्ध किया हुआ बीज-मंत्र नहीं मिला, फिर भी उन्होंने अपने यजमानों से यथेष्ट पूजा और दक्षिणा प्राप्त की। बीज-मंत्र इसलिए न पा सके कि वह उत्तराधिकार के नियम से पिता के अन्तकाल में उनके बड़े भाई धरणीधरजी को ही प्राप्त हुआ था, और वे भरी जवानी में ही हृदय गति रुक जाने से स्वर्ग सिधार गए थे। पंडितजी पुरखों की सरस्वती के बड़े कठोर उपासक थे। फिर भी पंडित देवधरजी ने आजीवन बड़ी निष्ठा के साथ जगदम्बा की सेवा की है।

एक दिन नित्य-नियमानुसार गंगा से लौटकर सबेरे पंडितजी ने जब साधना-गृह में प्रवेश किया, तो उसे भोला की कुतिया के सौरी-घर के रूप में पाया। पंडितजी की क्रोधाग्नि प्रचंड रूप से भड़क उठी। लड़के, लड़कों की बहुएँ एकमत होकर पंडित देवधर से जबानी मोर्चा लेने लगे। पंडित देवधरजी ने उस दिन से घर में प्रवेश और अन्न-जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ले रखी है। वे साधना-गृह के पास कुएँ वाले दालान में पड़े रहते हैं। आज चार दिन से उन्होंने कुछ नहीं खाया। कहीं और बाजार में तो वे खाने-पीने से रहे, शायद इन्दर के घर भोजन करते हों। यही पूछने के लिए इन्दर की बुआ इस समय यहाँ आई थीं : परन्तु उनकी भतीज-बहू ने जब उनके यहाँ भोजन न करने की बात बताई, तो सुनकर बुआजी कुछ देर के लिए पत्थर हो गईं। पति की अड़सठ वर्ष की आयु, नित्य सबेरे तीन बजे उठ दो मील पैदल चलकर गंगाजी जाना-आना, अपना सारा कार्यक्रम निभाना, दोपहर के बारह-एक बजे तक ब्रह्म-यज्ञ, भागवत पाठ, सरस्वती कवच का जप आदि यथावत् चल रहा है; और उनके मुँह में अन्न का एक दाना भी नहीं पहुँचा, यह विचार बुआजी को जड़ बना रहा था।

"ये तो सब बातें मुझे इस बखत तुमसे मालूम पड़ रही हैं, बुआजी। फूफाजी ने तो मेरी जान में कभी कुछ भी नहीं कहा। कहते तो मेरे सामने जिकर आए बिन न रहता।''

"अरे तेरे फूफाजी तो रिसी-मुनी हैंगे, बेटा। बस इन्हें करोध न होता, तो इनके ऐसा महात्मा नहीं था पिरथी पे। क्या करूँ, अपना जो धरम था, सो निभा दिया। जैसा समय हो वैसा नेम साधना चाहिए। पेट के अंश से भला कोई कैसे जीत सके हैं।''

"तो फूफाजी आखिर कितने दिन यों ही बिना खाए चल सकेंगे। बुढ़ापे का शरीर है...''

"वोई तो मैं भी कहूँ हूँ, बेटा। मगर इनकी जिद के अगाड़ी मेरी कहाँ चल पाव है। बहोत होवे हैं, तो कोने में बैठ के रो लूँ हूँ।'' कहते-कहते बुआजी का गला भर आया; बोलीं–"इनके सामने सबको रख के चली जाऊँ, तो मेरी गत सुधर जाए। जाने क्या-क्या देखना बदा है

लिलार में!'' बुआजी टूट गईं, फूट-फूटकर रोने लगीं।

"तुम फिकर न करो, बुआजी। इतने दिनों तक तो मालूम नहीं था, पर आज से फूफाजी के खाने-पीने का सब इन्तजाम हो जाएगा।''

२

डॉक्टर इन्द्रदत्त शर्मा के यूनिवर्सिटी से लौटकर आने पर चाय पीते समय उनकी पत्नी ने सारा हाल कह सुनाया। इन्द्रदत्त सन्न रह गए। प्रेयसी के समान मनोहर लगनेवाली चाय की प्याली परित्यक्ता वधू की तरह उनके ध्यान-मन से उतर गई। इन्द्रदत्त अपने फूफाजी के हठ को पहचानते थे। फूफाजी बिना किसी से कुछ-कहे सुने इसी प्रकार अनशन पर प्राण त्याग कर सकते हैं, इसे इन्द्रदत अच्छी तरह जानते थे। उनके अन्तर का कष्ट चेहरे पर तड़पने लगा। पति की व्यथा को गौर से देखकर पत्नी ने कहा, "तुम आज उन्हें खाने से लिए रोक ही लेना। मैं बड़ी शुद्धताई से बनाऊँगी।''

"प्रश्न यह है वे मानेंगे भी? उनका तो 'चन्द्र टरै सूरज टरै' वाला हिसाब है।''

"तुम कहना तो सही।''

"कहूँगा तो सही, पर मैं जानता हूँ। मगर इस तरह चलेंगे कितने दिन? भोला को ऐसा हठ न करना चाहिए।''

"भोला क्या करें। कुतिया के पीछे-पीछे घूमते फिरें?''

"शौक है अपना और क्या? फूफाजी को भी इतना विरोध न करना चाहिए।''

"फूफाजी का न्याय हम नहीं कर सकते।''

"अभी मान लो तुम्हारे साथ ही ऐसी गुजरती?''

"मैं निभा लेता।''

"कहना आसान है, करना बड़ा मुश्किल है। फूफाजी तो चाहते हैं सब-के-सब पुराने जमाने के बने रहें। चोटी-जनेऊ, छूत-छात, सिनेमा न जाओ और घूँघट काढ़ो, भला ये कोई भी मानेगा।''

"मेरे ख्याल में फूफाजी इस पर कुछ...''

"भले न कहें, उन्हें अच्छा तो नहीं लगता।''

"ठीक है। तुम्हें भी मेरी बहुत-सी बातें अच्छी नहीं लगतीं, मुझे भी तुम्हारी कुछ बातें अच्छी नहीं लगतीं।''

"कौन-सी बातें?''

"मैं शिकायत नहीं करता। उदाहरण दे रहा हूँ। ठीक-ठीक एक मत के कोई दो आदमी नहीं होते। होते भी हैं, तो बहुत कम। पर इससे क्या लोगों में निभाव नहीं होता? भोला और उसकी देखा-देखी त्रिभुवन में भी घंमड आ गया है; माँ-बाप को ऐसे देखते हैं, जैसे उनसे पैदा ही नहीं हुए। फूफाजी हठी और रूढ़ि पन्थी हैं सही, पर एकदम अवज्ञा के योग्य नहीं। ये लोग उन्हें चिढ़ाने के लिए घर में प्याज, लहसुन, अंडा, मछली सब कुछ खाते हैं। फूफाजी ने अपना चौका ही तो अलग किया। किसी से कुछ कहा-सुना तो नहीं?''

स्वभाव से शान्त और बोलने में मितव्ययी इन्द्रदत्त इस समय आवेश में आ गए थे। फूफाजी चार दिनों से निराहार हैं। फूफाजी के प्रति उनका सदा से बड़ा आदरभाव था। लोक उनका आदर करता है। इधर महीनों से इन्द्रदत्त के आग्रह पर पंडित देवधरजी प्रतिदिन शाम के समय दो-ढाई घंटे उनके घर बिताते हैं। कभी भागवत, कभी रामायण, कभी कोई पौराणिक उपाख्यान चल पड़ता है। पंडितजी अपनी तरह से कहते हैं, इन्द्रदत्त उनके द्वारा प्राचीन समाज के विकास क्रम में चित्र देखता, उनसे अपने लिए नया रस पाता। कभी-कभी बातों के रस में आकर अपने राजा-ताल्लुकेदार यजमानों के मजेदार संस्मरण सुनाते हैं। कभी उनके बचपन और जवानी की स्मृतियों तक से टकराती हुई पुरानी सामाजिक तस्वीरें, इन मुहल्लों की पुरानी झाँकियाँ सामने आ जाती हैं। फूफाजी के अनुभवों से अपने लिए ज्ञान-सूत्र बटोरते हुए उनके निकट संपर्क में आकर इन्द्रदत्त को आदर के अलावा उनसे प्रेम भी हो गया है।

इन्द्रदत्त की पत्नी के मन में आदर-भाव तो है, पर जब से वे बराबर आकर बैठने लगे हैं, तब से उसे एक दबी-ढँकी शिकायत भी है। पति के साथ घड़ी-दो घड़ी बैठकर बातें करने, कैरम या चौसर खेलने, या अपने पैत्रिक घर के सम्बन्ध में, जो अब नए सिरे से बन रहा है, सलाह-सूत करने का समय उसे नहीं मिल पाता। अपनी छोटी देवरानी त्रिभुवन की बहू से बड़ा नेह-हेत होने का कारण उसकी बातों में विश्वास रखकर वह फूफाजी के पुरानेपन से किसी हद तक फिरंट भी है। इसीलिए जब इन्द्रदत्त ने यह कहा कि घर में मांस-मछली के प्रयोग के बाद फूफाजी ने अपना चौका अलग कर लिया, मगर कुछ बोले नहीं, तो उनकी पत्नी से रहा न गया। कहने लगी–"तो उन लोगों से...अरे, पोते-पोतियों तक से तो बोलते नहीं, फिर शिकायत किससे करेंगे?''

"फूफाजी को पहचानने में बस यहीं तुम लोग गलती करते हो। उनका प्रेम प्राय: गूँगा है। मैंने अनुभव से इस बात को समझा है।'' बन्द रहने पर भी झिरझिरे दरवाजों से जिस तरह गरम लू के तीर आते हैं, संयमी इन्द्रदत्त के अन्दर में उद्वेग इसी तरह प्रकट हो रहा था।

पत्नी ने पति के रुख पर रुख किया; तुरन्त शान्त और मृदु स्वर में कहा,

"मैं फूफाजी को पहचानती हूँ। उनके ऐसे विद्वान की कदर उस घर में नहीं। उनका प्रेम तुम जैसों से ही हो सकता है। तुम चिन्ता न करो। बरत आज पूरा हो जाएगा।''

"मान जाएँगे?'' पत्नी के चेहरे तक उठी इन्द्रदत्त की आँखों में शंका थी, उनका स्वर करुण था।

"प्रेम नेम से बड़ा है।'' पति के क्षोभ और चिन्ता को चतुराई के साथ पत्नी ने मीठे आश्वासन से हर लिया, परन्तु वह उन्हें फिर चाय-नाश्ता न करा सकी।

३

डॉक्टर इन्द्रदत्त शर्मा फिर घर में बैठ न सके। आज उनका धैर्य डिग गया था। फूफाजी लगभग छै-साढ़े छै के आते हैं। इन्द्रदत्त का मन कह रहा था कि वे आज भी आएँगे; पर शंका भी थी, मुमकिन है अधिक कमजोर हो गए हों, न आएँ। इन्द्रदत्त ने स्वयं जाकर उन्हें बुला ले आना ही उचित समझा। हालाँकि उन्हें यह मालूम है कि इस समय फूफाजी स्नान-संध्या आदि में व्यस्त रहते हैं। पंडित देवधरजी का घर अधिक दूर न था। डॉक्टर इन्द्रदत्त सदर दरवाजे से घर में प्रवेश करने की बजाय एक गली और पार कर कर बगिया के द्वार पर आए। फूफाजी गंगा लहरी का पाठ कर रहे थे। फूलों की सुगन्धि-सा उनका मधुर स्वर बगिया की चहारदीवारी के बाहर महक रहा था :

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा,

विलोल द्वानीरं तव जननि तीरे श्रित वताम्।

सुधात: स्वादीप: सलिलमिदाय तृप्ति पिबतां,

जनानामानन्द: परिहसति निर्वाण पदवीम्।।

इन्द्रदत्त दरवाजे पर खड़े-खड़े सुनते रहे। आँखों में आँसू आ गए। फूफाजी का स्वर उनके कानों में मानो अंतिम बार की प्रसादी के रूप में पड़ रहा था। कुछ दिनों बाद, कुछ ही दिनों बाद यह स्वर फिर सुनने को नहीं मिलेगा। कितनी तन्मयता है, आवाज में कितनी जान है! कौन कहेगा कि पंडित देवधर का मन क्षुब्ध है, उन्होंने चार दिनों से खाना भी नहीं खाया है?...ऐसे व्यक्ति को, ऐसे पिता को भोला-त्रिभुवन कष्ट देते हैं। इन्द्रदत्त इस समय अत्यन्त भावुक हो उठे थे। उन्होंने फूफाजी की तन्मयता भंग न करने का निश्चय किया। गंगा लहरी पाठ कर रहे हैं, इसलिए नहाकर उठे हैं या नहाने जा रहे हैं, इसके बाद संध्या करेंगे। फूफाजी से भेंट हो जाएगी। उनके कार्यक्रम में विघ्न न डालकर इतना समय बुआ के पास

बैठ लूँगा, यह सोचकर वे फिर पीछे की गली की ओर मुड़े।

४

"अम्मा!''

"हाँ, बड़ी बहू।'' वह अपने कमरे में, दरवाजे के पास घुटनों पर ठोड़ी टिकाए दोनों हाथ बाँधे गहरे सोच में बैठी थीं। जेठे बेटे की बहू का स्वर सुनकर तड़-फड़ ताजी हो गईं। हाँ, इतनी देर के खोएपन ने उनके दीन स्वर में बड़ी करुणा भर दी थी।

बड़ी बहू के चेहरे की ठसक को उनकी कमर के चारों ओर फूली हुई चर्बी सोह रही थी, आवाज भी उसी तरह मिजाज के काँटे पर सधी हुई, बोली, "उन्होंने पुछवाया है कि दादा आखिर चाहते क्या हैं?''

"वो तो कुछ भी नहीं चाहे हैं, बहू।''

"तो ये अनशन फिर किसी बात का हो रहा है?''

पंडित देवधर की सहधर्मिणी ने स्वर को और संयत कर उत्तर दिया, "उनका सुभाव तो तुम जानो ही हो, बहुरिया।''

"ये तो कोई जवाब नहीं हुआ, अम्मा। तो क्या जान देंगे? ऐसा हठ भी भला किस काम का? बड़े विद्वान हैं, भक्त हैं, दुनिया भर को पुन्न और परोपकार सिखाते हैं...कुत्ते में क्या उसी भगवान की दी हुई जान नहीं है?''

बड़ी बहू तेज पड़ती गई, सास चुपचाप सुनती रही।

"ये तो माँ-बाप का धरम नहीं हुआ, ये तो दुश्मनी हुई, और क्या? घर में सबसे बोलना-चालना तो बन्द कर ही रखा था...''

"बोलना-चालना तो उनका सदा का ऐसा ही है, बेटा। तुम लोग भी इतने बरसों से देखते हो, भोला-तिरभुअन तो सदा से जाने हैं।''

"इन्दर भाई साहब के यहाँ तो घुल-घुल के बातें करते हैं।''

"इन्दर पढ़ा-लिखा है न, वैसी ही बातों में इनका मन लगे है। इसमें...''

"हाँ-हाँ, हम लोग तो सब गँवार हैं, भ्रष्ट हैं। हम पापियों से बोलने क्या देखने से भी उनका धर्म नष्ट होता है।''

"बहू, बेटा, गुस्सा होने से कोई फायदा नहीं। हम लोग तो अब चिता में खड़े भये हैंगे, रानी। तुम सब को रख के उनके सामने चली जाऊँ, विश्वनाथ बाबा से उठते-बैठते आँचल पसार के वरदान माँगूँ हूँ, बेटा। अब...मेरे कलेजे में दम नहीं रहा, क्या करूँ?''

बुआजी रो पड़ीं।

इन्द्रदत्त जरा देर से दालान में ठिठके खड़े थे, बुआ को रोते देख उनकी भावुकता थम न सकी, पुकारा, "बुआ!''

बुआजी एक क्षण के लिए ठिठकीं, चट से आँसू पोंछ, आवाज सँभालकर मिठास के साथ बोलीं, "आओ, भैया।''

भोला की बहू ने सिर का पल्ला जरा सँभाल लिया और शराफती मुस्कान के साथ अपने जेठ को हाथ जोड़े।

इन्द्रदत्त ने कमरे में आकर बुआजी के पैर छुए और पास ही बैठने लगे। बुआजी हड़बड़ाकर बोलीं, "अरे, चारपाई पर बैठो।''

"नहीं। मैं सुख से बैठा हूँ आपके पास।''

"तो ठहरो, मैं चटाई...''

बुआजी उठीं, इन्द्रदत्त ने उनका साथ पकड़कर बैठा लिया और फिर भोला की बहू को देखकर बोला, "कैसी हो, सुशीला? मनोरमा कैसी है?''

"सब ठीक हैं।''

"बच्चे?''

"अच्छे हैं। भाभीजी और आप तो कभी झाँकते ही नहीं। इतने पास रहते हैं और फिर भी...''

"मैं सबकी राजी-खुशी बराबर पूछ लेता हूँ। रहा आना-जाना, सो...''

"आपको तो खैर टाइम नहीं मिलता, लेकिन भाभीजी भी नहीं आतीं, बाल नहीं, बच्चे नहीं, कोई काम...''

"घर में मदद लगी है। ऐसे में घर छोड़ के कैसे आए बिचारा।'' बुआजी ने अपनी बहू की बात काटी। बहू आँखें चढ़ाकर याद आने का भाव जनाते हुए बोली, "हाँ, ठीक है। कौन-सा

हिस्सा बनवा रहे हैं, भाई साहब?''

"पूरा घर नए सिरे से बन रहा हैगा। ऐसा बढ़िया कि मुहल्ले में ऐसा घर नहीं है किसी का।'' सास ने बहू के वैभव को लज्जित करने की दबी तड़प के साथ कहा। बुआजी यों कहना नहीं चाहती थीं, पर जी की चोट अनायास फूट पड़ी। बड़ी बहू की आँखें चमकीं, अपनी दुहरी ठोड़ी को गर्दन से चिपकाकर अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव को जतलाया, और पूछा, "पर रहते तो शायद...''

"पीछेवाले हिस्से में रहते हैं।''

"इसी हिस्से में जीजा का, मेरा और भैया का जनम भया। एक भाई और भया था। अब यहीं भए। हमरे बाप ताऊ, दादा और जाने कौन-कौन का जनम...''

"वो हिस्सा तो घर भर में सबसे ज्यादा खराब है। कैसे रहते हैं?''

"जहाँ पुरखों का जन्म हुआ, वह जगह स्वर्ग से भी बढ़कर है। पुरखे पृथ्वी देवता हैं।''

बड़ी बहू ने आगे कुछ न कहा, सिर का पल्ला फिर सँभालने लगी।

"आज तो बहुत दिनों में आए, भैया। मैं भी इतनी बार गई। बहू से तो भेंट हो जावे है।''

बुआ-भतीजे को बातें करते छोड़कर बड़ी बहू चली गई। उसके जाने के बाद दो क्षण मौन रहा। उसके बाद दोनों ही प्राय: साथ-साथ बोलने को उद्धत हुए। इन्द्रदत्त को कुछ कहते देखकर बुआजी चुप हो गईं।

"सुना, फूफाजी ने...''

"उनकी चिन्ता न करो, बेटा। वो किसी के मान के हैं?''

"पर इस तरह कितने दिन चलेगा?''

"चलेगा जितने दिन चलना होगा।'' बुआजी का स्वर आँसुओं में डूबने उतराने लगा, "जो मेरे भाग में लिखा होगा...'' आगे कुछ न कह सकीं, आँसू पोंछने लगीं।

"सच-सच बताना, बुआजी, तुमने कुछ खाया भी...''

"खाती हूँ। रोज ही खाती हूँ।'' पल्ले से आँखें ढँके हुए वे बोलीं। इन्द्रदत्त को लगा कि वे झूठ बोल रही हैं।

"तुम इसी वक्त मेरे साथ घर चलो, बुआजी। फूफाजी वैसे तो आएँगे ही, पर आज मैं...उन्हें लेकर ही आऊँगा। नहीं तो आज से मेरा भी अनशन आरम्भ होगा।''

"करो जो जिसकी समझ आए। मेरा किसी पर जोर नहीं, बस नहीं।'' आँखों में फिर बाढ़ आ गई, पल्ला आँखों पर ही रहा।

"नहीं, बुआजी। या तो आज से फूफाजी का व्रत टूटेगा...''

"कहिए, भाई साहब?'' कहते हुए भोला ने कमरे में प्रवेश किया। माँ को रोते देख उसके मन में कसाव आया। माँ ने अपने दुख का नाम-निशान मिटा देने का असफल प्रयत्न किया, परन्तु उनके चेहरे पर पड़ी हुई आन्तरिक पीड़ा की छाया और आँसुओं से ताजी नहाई हुई आँखें उनके पुत्र से छिपी न रह सकीं। भोला की मुख-मुद्रा कठोर हो गई। माँ की ओर से मुँह फेरकर चारपाई पर अपना भारी भरकम शरीर प्रतिष्ठित करते हुए उन्होंने अपने ममेरे भाई से पूछा, "घर बन गया आपका?''

"तैयारी पर ही है। बरसात के पहले ही कम्प्लीट हो जाएगा।''

"सुना है, नक्शा बहुत अच्छा बनवाया है आपने।''

इन्द्रदत्त ने कोई उत्तर न दिया।

"मैं भी एक कोठी बनवाने का इरादा कर रहा हूँ। इस घर में अब गुजर नहीं होती।''

इन्द्रदत्त खामोश रहे। भोला भी पल भर चुप रहे, फिर बोले, "दादा का नया तमाशा देखा आपने? आजकल तो वे आपके यहाँ ही उठते-बैठते हैं। हम लोगों की खूब-खूब शिकायतें करते होंगे।''

"तुमको मुझसे ज्यादा जानना चाहिए, पर-निन्दा और शिकायतें करने की आदत फूफाजी में कभी नहीं रही।'' इन्द्रदत्त का स्वर संयत रहने पर भी किंचित उत्तेजित था।

"न सही। मैं आपसे पूछता हूँ, इंसाफ कीजिए आप। यह कौन-सा ज्ञान है, कि एक जीव से इतनी नफरत की जाए। और...और खास अपनी लड़की और बहुओं से...पोते-पोतियों तक से नफरत की जाए...यह किस शास्त्र में लिखा है, जनाब, बोलिए।'' भोला की उत्तेजना ऐसे खुली, जैसे मोरी से डाट हटाते ही हौदी का पानी बहता है।

इन्द्रदत्त ने शान्त, दृढ़ स्वर में बात का उत्तर दिया, "तुम बात को गलत रंग दे रहे हो, भोला। इस प्रकार यह विकट, कहना चाहिए कि घरेलू समस्याएँ कभी हल नहीं हो जातीं।''

"मैं गलत रंग क्या दे रहा हूँ, जनाब? सच कहता हूँ, और इंसाफ की बात कहता हूँ। ताली

हमेशा दोनों हाथों से बजा करती है।''

"लेकिन तुम एक ही हाथ से ताली बजा रहे हो, यानी धरती पर हाथ पीट-पीटकर।''

"क्या? मैं समझा नहीं।''

"तुम अपने आप ही लड़ रहे हो और अपने को ही चोट पहुँचा रहे हो, भोला। फूफाजी के सब विचारों से सहमत होना जरूरी नहीं है। फिर भी वह आदर के पात्र हैं। वे हमारी पिछली पीढ़ी हैं, जिनकी प्रतिक्रियाओं पर क्रियाशील होकर हमारा विकास हो रहा है। उनकी खामियाँ तो तुम खूब देख लेते हो, देखनी भी चाहिए; मगर यह ध्यान रहे कि खूबियों की ओर से आँख मूँदना हमारे-तुम्हारे लिए, सारी नई पीढ़ी के लिए केवल हानिप्रद है और कुछ नहीं।''

भोला ने अपनी जेब से सोने का सिगरेट-केस निकाला और चेहरे पर आड़ी तिरछी रेखाएँ डालकर कहने लगा, "मैं समझता था, भाई साहब, कि आपने इतनी हिस्ट्री-उस्ट्री पढ़कर बड़ी समझ पाई होगी।'' इतना कहकर भोला के चेहरे पर संतोष और गर्व का भाव आ गया। प्रोफेसर इन्द्रदत्त के पढ़े-लिखेपन को दो कौड़ी का साबित कर भोला सातवें आसमान की बुर्जी पर चढ़ गया, "ढकोसलों में ढकेलनेवाली ऐसी पिछली पीढ़ियों से हमारा देश और खासतौर से हमारी हिन्दू सुसाइटी, बहुत 'सफर' कर चुकी, जनाब! अब चालीस बरस पहले का जमाना भी नहीं रहा, जो 'पिताहि देवा पिताहि धर्मा' रटा-रटाकर ये लोग अपनी धौंस गाँठ लें। मैं कहता हूँ, आप पुराने हैं, बड़े निष्ठावान हैं, होंगे...अपनी निष्ठा-विष्ठा को अपने पास रखिए। नया जमाना आप लोगों की तानाशाही को बर्दाश्त नहीं करेगा!''

"तुम अगर किसी की तानाशाही को बरदाश्त नहीं करोगे, तो तुम्हारी तानाशाही को ही भला कौन बरदाश्त करेगा?''

"मैं क्या करता हूँ, जनाब?''

"तुम अपने झूठे सुधारों का बोझ हरेक पर लादने के लिए उतावले क्यों रहते हो?''

"बतलाइए, मैंने ऐसा क्या किया है?''

"तुम फूफाजी को चिढ़ाते हो, भोला। मैं आज साफ-साफ ही कहूँगा। तुम और त्रिभुवन, दोनों...'' इन्द्रदत्त ने सीधे स्वर में कहा।

"मैं यह सब बेवकूफी की-सी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ, भाई साहब! जनाब, हमको गोश्त अच्छा लगता है और हम खाते हैं और जरूर खाएँगे। देखें, आप हमारा क्या कर लेते हैं?''

"मैं आपका कुछ भी न कर लूँगा, भोला शंकरजी। आप शौक से खाइए। मेरे ख्याल में फूफाजी ने भी इसका कोई विरोध नहीं किया। वह नहीं खाते, उनके संस्कार ऐसे नहीं हैं, तो तुम यह क्यों चाहते हो कि वह भी तुम्हारी बात, तुम्हारा मत मानने लगें? रहा यह है उन्होंने अपना चौका अलग कर लिया या वह तुम लोगों के कारण क्षुब्ध हैं, वह बातें तानाशाही नहीं कही जा सकतीं। उन्हें बुरा लगता है, बस।''

"मैं पूछता हूँ, क्यों बुरा लगता है? मेरी भी बड़े-बड़े प्रोफसरों और नामी आलिम-फाजिलों से दिन-रात की सोहबत है। आपके वेद के जमाने के ब्राह्मण और मुनि तो गऊ तक को खा जाते थे।'' भोला ने गर्दन झटकाई, उनके चेहरे का मांस थुलथुला उठा, उनकी सिगरेट जल गई।

इन्द्रदत्त बोले, "ठीक है, वे खाते थे। राम, कृष्ण, अर्जुन, इन्द्र वगैरा भी खाते थे, पीते भी थे, मगर यह कहने से तुम उस संस्कार को धो तो नहीं सकते, जो समय के अनुसार परिवर्तित हुआ और वैष्णव धर्म के साथ करीब-करीब राष्ट्रव्यापी भी हो गया।''

"हाँ, तो फिर दूसरा संस्कार भी राष्ट्रव्यापी हो रहा है।''

"हो रहा है, ठीक है।''

"तो फिर दादा हमारा विरोध क्यों करते हैं?''

"भोला, हम फूफाजी का न्याय नहीं कर सकते। इसलिए नहीं कि हम अयोग्य हैं, वरन् इसलिए कि हमारे न्याय के अनुसार चलने के लिए उनके पास अब दिन नहीं रहे, आदत बदलने के लिए आखिरी वक्त में अब उत्साह भी नहीं रहा।''

"मैं पूछता हूँ, क्यों नहीं रहा?''

"यह सरासर ज्यादती है तुम्हारी। अरे भाई, वह बीता युग है, उस पर हमारा वश नहीं। हमारा वश केवल वर्तमान और भविष्य पर ही हो सकता है। विगत युग की मान्यताओं को उस युग के लिए हमें जैसे-का-तैसा स्वीकार करना होगा...पहले बात सुन लो, फिर कुछ कहना...हाँ, तो मैं कह रहा था कि हमें अपने पुरखों की खूबियाँ देखनी चाहिए, ताकि हम उन्हें लेकर आगे बढ़ सकें। उनकी खामियों को या सीमाओं को समझना चाहिए, जिनसे कि हम आगे बढ़कर अपनी नई सीमा स्थापित कर सकें। उनके ऊपर अपनी सुधारवादी मनोवृत्ति को लादना घोर तानाशाही है।''

"और वो जो करते हैं, वह तानाशाही नहीं है?''

"अगर तानाशाही है, तो तुम उसका जरूर विरोध करो। मगर नफरत से नहीं। वे तुम्हारे

अत्यन्त निकट के सम्बन्धी हैं, तुम्हारे पिता हैं। इतनी श्रद्धा तुम्हें करनी ही होगी, उन्हें इतनी सहानुभूति तुम्हें देनी ही होगी।''

इन्द्रदत्त बहुत शान्त भाव से पालथी मारकर बैठे हुए बातें कर रहे थे।

भोला के चेहरे पर कभी चिढ़ और कभी लापरवाही भरी अकड़ के साथ सिगरेट का धुआँ लहराता था। इन्द्रदत्त की बात सुन तमककर बोला, "अ...अ...आप चाहते हैं कि लोग गोश्त खाना छोड़ दें?''

"दोस्त, अच्छा होता है कि तुम अगर यह मांस-मछली वगैरह के अपने शौक, कम-से-कम उनके और बुआजी के जीवन-काल में घर से बाहर ही पूरे करते। यह चोरी के लिए नहीं, उनके लिहाज के लिए करते, तो परिवार में और भी शोभा बढ़ती। खैर, झगड़ा इस बात पर तो है नहीं। झगड़ा तो तुम्हारी...''

"जूलियट की वजह से है। वह उनके कमरे में जाती है, या अभी हाल ही में उसने सरस्वतीजी के मन्दिर में बच्चे पैदा किए...तो, तो आप एक बेजुबान जानवर से भी बदला लेंगे, जनाब? यह आपकी इन्सानियत है?''

"मैं कहता हूँ, तुमने उसको पाला ही क्यों? कम-से-कम माँ-बाप का जरा-सा मान तो रखा होता।''

"इसमें मान रखने की क्या बात है, भाई साहब?'' भोला उठकर छोटी-सी जगह से तेजी से अकड़ते हुए टहलने लगे। चारपाई से कमरे के एक कोने तक जाकर लौटते हुए रुककर कहा, "हमारा शौक है, हमने किया। और कोई बुरा शौक तो है नहीं। साहब, औरों के फादर-मदर्स होते हैं, तो लड़कों के शौक पर खुश होते हैं...और एक हमारी किस्मत है कि...''

"तुम सिर्फ अपनी ही खुशी को देखते हो, भोला। तुमने यह नहीं देखा कि फूफाजी कितने धैर्य और संयम से तुम लोगों की इन हरकतों को सहन करते हैं।''

"खाक-धूल है...संयम है! हूँ! हजारों तो गालियाँ दे डालीं हम लोगों को!''

"और बदले में तुमने उनके ऊपर कुतिया छोड़ दी।''

"ऐसी ही बहुत शुद्धता का घमंड है, तो अपनी तरफ दीवार उठवा लें। हम जो-जो हमारे जी में आएगा करेंगे। और अब तो बढ़-बढ़कर करेंगे।''

"यह यो लड़ाई की बात हुई, समझौता नहीं हुआ।''

"जी, हाँ, हम तो खुले आम कहते हैं कि हमारा और दादा का समझौता नहीं हो सकता। इस मामले में मेरी और त्रिभुवन की राय एक है। अगर वे हमारे 'प्रोग्रेसिव' खयालात को नहीं देख सकते, तो उनके लिए हमारे घर में कोई जगह नहीं है।"

"भोला!" बड़ी देर से गर्दन झुकाए खामोश बैठी हुई माँ ने काँपते स्वर में और भीख का-सा हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा, "बेटा, उनके आगे ऐसी बात भूल से भी न कह देना। तुम्हारे पैरों..."

"कहूँगा, और हजार बार कहूँगा! अब तो हमारी-उनकी ठन गई। वो हमारे लड़कों-बच्चों का पहनना-ओढ़ना नहीं देख सकते, हँसना-खेलना नहीं बर्दाश्त कर सकते, हम लोगों को बर्दाश्त नहीं कर सकते, तो मैं उनके धर्म को ठोकर मारता हूँ। उनके ठाकुर, पोथी, पुराण, सब मेरे जूते की नोक पर हैं।"

माँ की आँखों से बूँदें टपक पड़ीं। उन्होंने अपना सिर फिर झुका लिया। भोला की यह बदतमीजी इन्द्रदत्त को बुरी तरह तड़पा रही थी। स्वर ठंडा रखने का प्रयत्न करते हुए भी सनक-भरी हँसी-हँसकर बोले, "अगर तुम्हारी यही सब बातें नए और 'प्रोग्रेसिव' विचारों का प्रतिनिधित्व वाकई करती हों, इसी से मनुष्य सुशिक्षित और फैशनवाला माना जाता हो, तो मैं कहूँगा कि भोला, तुम और तुम्हारी ही तरह का सारा नया जमाना जंगली है। बल्कि उनसे भी गया गुजरा है। तुम्हारा नया जमाना न नया है न पुराना। तुम्हारे विचार नए तो खैर हैं ही नहीं, अंग्रेजी दासता के अवशेष चिह्न हैं। और तुम्हारी सभ्यता सामन्तों, पैसेवालों के खोखले जोम से बढ़कर कुछ भी नहीं है। तुम्हारे विचार इन्सानों के नहीं, हैवानों के हैं।" इन्द्रदत्त स्वाभाविक रूप से उत्तेजित हो उठे।

"खैर, आपको अपनी इन्सानियत मुबारक रहे! हम हिपोक्रेट लोगों को खूब जानते हैं और उन्हें दूर ही से नमस्कार करते हैं।"

भोलाशंकर तमककर खड़े हुए, तेजी से बाहर चले, दरवाजे पर पहुँचकर माँ से कहा, "तुम दादा को समझा देना, अम्मा। मैं अनशन की धमकियों से जरा भी नहीं डरूँगा। जान ही तो देंगे...तो मरें न। मगर मैं उनको अपने घर में यों नहीं मरने दूँगा। जाएँ गंगा किनारे मरें...यहाँ उनके लिए अब जगह नहीं है।"

"पर यह घर अकेला तुम लोगों का ही नहीं है।"

"खैर, यह तो हम कोर्ट में देख लेंगे, अगर जरूरत पड़ी तो। लेकिन मेरा अब उनसे कोई वास्ता नहीं रहा।"

भोलाशंकर चले गए। बुआजी चुपचाप सिर झुकाए टप-टप आँसू बहाती रहीं। इन्द्रदत्त उत्तेजित मुद्रा में बैठे थे। जिसके पास किसी भी वस्तु विशेष का अभाव रहा हो, उनके पास

वह वस्तु थोड़ी-सी ही हो जाए, तो बहुत मालूम पड़ती है। इन्द्रदत्त के लिए इतना क्रोध और उत्तेजना इसी तरह अधिक प्रतीत हो रही थी। पल भर चुप रहकर आवेश में आ बुआजी के हाथ पर हाथ रखते हुए कहा, "तुम और फूफाजी मेरे घर चलकर रहो, बुआ। वह भी तो तुम्हारा ही घर है।''

"तुम अपने फूफाजी से भोला की बातों का जिकर न करना, बेटा।''

"नहीं।''

"तुम अपने फूफाजी का किसी तरह से यह बरत तुड़वा दो बेटा, तुम्हें बड़ा पुन्न होगा। तुम्हें मेरी आत्मा उठते-बैठते असीसेगी, मेरा भैया।''

"मैं इसी इरादे से आया हूँ। तुम भी चलो, बुआ, तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि तुम भी...''

"अरे, मेरी चिन्ता क्या है?''

"हाँ, तुम्हारी चिन्ता नहीं। चिन्ता तो तुम्हें और फूफाजी को करनी है...मेरी ओर से। तुम दोनों के भोजन कर लेने तक मैं भी अपने प्रण से अटल रहूँगा।''

बुआजी एक क्षण चिन्ता में पड़ गईं। फिर मीठी वाणी में समझाकर कहा, "देखो भैया इन्दर, मेरे लिए जैसे भोला-तिरभुअन, वैसे तुम। जैसा ये घर, वैसा वो। आज तुम अपने फूफाजी को किसी तरह जिमा लो। उनके बरत टूटने की खबर सुनते ही, तुम्हारी कसम, मैं आप ही ठाकुरजी का भोग पा लूँगी। लेकिन इसी घर में। किसी के जी को कलेस हो, बेटा ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। क्या कहूँ तेरे फूफाजी का करोध मेरी कुछ चलने नहीं देवे है। अपने जी को कलेस देवे हैं, सो देवे हैं, बाकी बच्चों के जी को जो कलेस लगै है, उसके लिए तो कहा ही क्या जाए? कलजुग कलजुग की तरै से चलैगा, भैया।''

इन्द्रदत्त कुछ देर तक बुआजी की घुटन का खुलना देखते रहे।

५

पंडित देवधरजी भट्ट ने नित्य-नियम के अनुसार झुटपुटे समय अपने भतीजे के आँगन में प्रवेश कर आवाज लगाई, "इन्द्रदत्त।''

"आइए, फूफाजी।''

सँकरी, टूटी, सीलन-भरी लखौरी ईंटों पर खड़ाऊँ की खट-खट बढ़ती गई। इन्द्रदत्त कठहरे के पास खड़े थे। जीने के दरवाजे के बाहर आते हुए पंडित देवधर उन्हें दिखलाई दिए। उनके भस्म लगे कपाल और देह पर पड़े जैशिव छाप से दुपट्टे में उनकी देह से एक आभा-सी

फूटती हुई उन्हें महसूस हो रही थी। फूफाजी के आते ही घर बदल गया। उन्हें देखकर हर रोज ऐसा ही महसूस होता है, पर आज की बात तो न्यारी ही थी। फूफाजी के चार दिनों का व्रत आज उनके व्यक्तित्व को इन्द्रदत्त की दृष्टि में और भी अधिक तेजोमय बना रहा था। फूफाजी को लेकर आज उनका मन अत्यन्त भावुक हो रहा था, पीड़ा पा रहा था। इन्द्रदत्त ने अनुभव किया कि फूफाजी के चेहरे पर किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं, भूख की थकन नहीं। चेहरा सूखा, कुछ उतरा हुआ था; परन्तु मुख की चेष्टा नहीं बिगड़ी थी! पंडित देवधर की यह बात इन्द्रदत्त को बहुत छू रही थी।

पंडितजी आकर चौकी पर बैठ गए। इन्द्रदत्त उनके सामने मूढ़े पर बैठे। घर बनने के कारण उनका बैठका उजड़ गया था। अभ्यागत के आने पर इन्द्रदत्त संकोच के साथ इसी टूटे कमरे में उसका स्वागत करते हैं। फूफाजी से तो खैर संकोच नहीं। पंखे का रुख उन्होंने उनकी ओर कर दिया और फिर बैठ गए। कुछ देर तक दोनों ओर से खामोशी रही, फिर फूफाजी ने बात उठाई, "तुम अभी घर गए थे, सुना।''

"जी, हाँ!''

"तुम्हारी बुआ मुझसे कह रही थीं। मैंने यह भी सुना है कि तुम मेरे कारण किसी प्रकार का बाल-हठ करने की धमकी भी दे आए हो।''

पंडित देवधर ने अपना दुपट्टा उतारकर चौकी पर रख दिया। पालथी मारकर वे सीधे तने हुए बैठे थे। उनका प्राय: पीला पड़ा हुआ गोरा बदन उनके बैठने के सधाव के कारण ही 'स्पिरिचुअल' जँच रहा था, अन्यथा उनका यह पीलापन उनकी गोरी अवस्था का भी परिचय दे रहा था।

इन्द्रदत्त ने सध-सधकर कहना शुरू किया, "मेरा हठ सम्पन्न नहीं, बड़ों के हठ में योगदान है।''

"इन बातों से कुछ लाभ नहीं, इन्द्र। मेरी गति के लिए मेरे अपने नियम हैं।''

"और मेरे अपने नियम भी तो हो सकते हैं।''

"तुम्हें स्वाधीनता है।''

"तब मैंने भी यदि अनशन का फैसला किया है, तो गलत नहीं है।''

"तुम अपने प्रति मेरे स्नेह पर बोझ लाद रहे हो। मैं आत्म-शुद्धि के लिए व्रत कर रहा हूँ...पुरखों के साधना-गृह की जो यह दुर्गति हुई है, वह मेरे ही किसी पाप के कारण–अपने अन्त:करण की गंगा से मुझे सरस्वती का मन्दिर धोना ही पड़ेगा। तुम अपना आग्रह लौटा

लो बेटा।''

एक मिनट के लिए कमरे में फिर सन्नाटा छा गया, केवल पंखे की गूँज ही उस खामोशी में लहरें उठा रही थी।

इन्द्रदत्त ने शान्त स्वर में कहा, "एक बात पूछूँ? मन्दिर में कुत्ते के प्रवेश से यदि भगवती अपवित्र हो जाती हैं, तो फिर घट-घट व्यापी ईश्वर की भावना बिलकुल झूठी है, एक ईश्वर पवित्र और दूसरा अपवित्र क्यों माना जाए?''

पंडित देवधर चुप बैठे रहे। फिर गम्भीर होकर कहा, "हिन्दू धर्म बड़ा गूढ़ है। तुम इस झगड़े में न पड़ो।''

"मैं इस झगड़े में न पड़ँूगा, फूफाजी, पर एक बात सोचता हूँ...भगवान राम अगर प्रेम के वश में होकर शबरी के झूठे बेर खा सकते थे, हिन्दू लोग यदि इस अन्याय में विश्वास रखते हैं, तो फिर छूत-अछूत का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। युधिष्ठिर ने अपने साथ-साथ चलने वाले कुत्ते के बिना स्वर्ग में जाने तक से इनकार कर दिया था। यह सब कहानियाँ क्या हिन्दू धर्म की महिमा बखानने वाली नहीं हैं? क्या यह महत् भाव नहीं है? फिर इनके विपरीत छुआछूत के भय से छुई-मुई होनेवाले गूढ़ धर्म की महिमा को आप क्यों मानते हैं? इन रूढ़ियों से बँधकर मनुष्य क्या अपने को छोटा नहीं कर लेता?''

पंडितजी शान्तिपूर्वक सुनते रहे। इन्द्रदत्त को भय हुआ कि बुरा न मान गए हों। तुरन्त बोले, "मैं किसी हद तक उत्तेजित जरूर हूँ, लेकिन जो कुछ पूछ रहा हूँ, जिज्ञासु के रूप में ही।''

"ठीक है।'' पंडितजी बोले, "हमारे यहाँ आचार की बड़ी महिमा है! मनुस्मृति में आया है कि 'आचार: प्रथमोधर्म:' जैसा आचार होगा, वैसे ही विचार भी होंगे। तुम शुद्धाचरण को बुरा मानते हो?''

"जी नहीं।''

"तब मेरा आचार क्यों भ्रष्ट करा रहे हो?''

"ऐसी धृष्टता करने का विचार स्वप्न में भी मेरे मन में नहीं आ सकता। हाँ, आपसे क्षमा माँगते हुए जरूर कहूँगा कि आपके आचार नए युग को विचार-शक्ति नहीं दे पा रहे। इसलिए उनका मूल्य मेरे लिए कुछ नहीं के बराबर है। मैं दुर्विनीत नहीं हूँ फूफाजी, परन्तु सच-सच यह अनुभव करता हूँ कि दुनिया आगे बढ़ रही है और आपका दृष्टिकोण व्यर्थ के रोड़े की तरह उसकी गति को अटकाता है।...पर इस समय जाने दीजिए...मैं तो यही निवेदन करने घर गया था और यही मेरा आग्रह है कि आप भोजन कर लें।''

पंडितजी मुस्कुराए। इन्द्रदत्त के मन में आशा जागी। पंडितजी बोले, "करूँगा, एक शर्त पर।"

"आज्ञा कीजिए।"

"जो मेरे, अर्थात् पुरानी परिपाटी के यम, नियम, संयम आदि हैं, आज से तुम्हें भी निभाने पड़ेंगे, क्योंकि जिनका मूल्य तुम्हारी दृष्टि में कुछ नहीं, वे आचार-विचार मेरे लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान हैं।"

इन्द्रदत्त स्तम्भित रह गए। वे कभी सोच भी नहीं सकते थे कि फूफाजी सहसा अनहोनी शर्त से उन्हें बाँधने का प्रयत्न करेंगे। पूछा, "कब तक निभाना पड़ेगा?"

"आजीवन।"

इन्द्रदत्त किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। जिन नियमों में उनकी आस्था नहीं, जो चीज उनके विचारों के अनुसार मनुष्य को अन्धविश्वास से जकड़ देती है, और जो भारतीय संस्कृति का कलंक है, उनसे उनका प्रबुद्ध मन भला क्योंकर बँध सकता है? हाँ कहें, तो कैसे कहें? उन्होंने इस व्रत, नियम, बलिदान, चमत्कार और मिथ्या विश्वासों से भरे हुए हिन्दू धर्म को समाज पर घोर अत्याचार करते देखा है। अपने आपको तरह-तरह से प्रपीड़ित कर धार्मिक कहलानेवाला व्यक्ति इस देश को रसातल में ले गया। इस कठोर जीवन को साधनेवाले 'शुद्धाचरणी' ब्राह्मण धर्म ने इस देश की स्त्रियों और हीन कहलानेवाली जातियों को सदियों तक दासता की चक्की में बुरी तरह पीसा है, और अब भी बहुत काफी हद तक पीस रहा है। हो सकता है कि मनुष्य की चेतना के उगते युग में इस शुद्ध कहलानेवाले आचार ने अन्धकार में उन्नत विचारों की ज्योति जगाई हो, पर अब तो सदियों से इसी झूठे धर्म ने औसत भारतवासी को दास, अन्धविश्वासी, और असीम रूप से अत्याचारों को सहन करनेवाला, झूठी दैवी शक्तियों पर यानी अपनी ही धोखा देनेवाली, लुभावनी, असम्भव कल्पनाओं पर विश्वास करनेवाला, झूठा, भाग्यवादी बनाकर देश की कमर तोड़ रखी है। इसने औसत भारतवासी से आत्म-विश्वास छीन लिया है। इस जड़ता के खिलाफ उपनिषद् जागे, मानव-धर्म जागा, योग का ज्ञान जागा, बौद्ध, भागवत-धर्म जागा, मध्यकाल का सन्त आंदोलन उठा और आज के वैज्ञानिक युग ने तो इसे एकदम निस्सार सिद्ध कर सदा के लिए इसकी कब्र ही खोद दी है। यह जड़ धर्म कभी भारत को महान् नहीं बना सका होगा। भारत की महानता उसके कर्मयोग में है, उसके व्यापक मानवीय दृष्टिकोण में है, व्यास-वाल्मीकि आदि के परम उदार भावों में है। प्राचीन भारत के दर्शन, न्याय वैशेषिक, साहित्य, शिल्प, संगीत आदि इस जड़ धर्म की उपज हरगिज नहीं हो सकते। फिर भी यह जड़ता भारत पर अर्से से भूत की तरह छाई हुई है। इसी से घृणा करने के कारण आज का नया भारतीय बिना जाँच-पड़ताल किए, अपनी सारी परम्पराओं से घृणा करते हुए, सिद्धान्तहीन, आस्थाहीन और निष्क्रिय हो गया है...नहीं, वे फूफाजी का धर्म हरगिज न निभा सकेंगे, हरगिज नहीं, हरगिज नहीं! पर वे भोजन कैसे करेंगे? बुआजी फिर कैसे और

कब तक भोजन करेंगी? कैसी विडम्बना है? दो मनुष्यों की मौत की नैतिक जिम्मेदारी उनके ऊपर आएगी।

पंडित देवधर ने उन्हें मौन देखकर पूछा, "कहो भोजन कराओगे मुझे?''

"जी...मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ।''

"स्पष्ट कहो, मेरा धर्म ग्रहण करोगे?''

"फूफाजी, आप बहुत माँग रहे हैं। मेरा विश्वास माँग रहे हैं। मैं आपके धर्म को युग का धर्म नहीं मानता, अपना नहीं मानता।''

"मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता से प्रसन्न हूँ। तुम धार्मिक हो, इसी तरह अपने से मुझको पहचानो। मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। यद्यपि तुम्हारे सत्संग से मैंने इतने दिनों में यह समझ लिया है कि मेरा युग, मेरा धर्म अब सदा के लिए लोप हो रहा है। फिर भी मेरी अंतिम साँस तक तो हरगिज नहीं। मेरी आस्था तप:पूत है। तुम्हारा कल्याण हो। सुखी हो, बेटा...अच्छा, तो अब मैं चलूँ...''

"परन्तु मेरा अनशन का निश्चय अडिग है, फूफाजी। मैं आपके चरण छूकर कह रहा हूँ।''

"पैर छोड़ दो बेटे, इन पैरों में पहले ही जड़ता समा चुकी है...और अब तो जीव के साथ ही मिटेगी अन्यथा नहीं।...खैर, कल विचार करना अपने अनशन पर...''

अन्तिम वाक्य पंडितजी ने इस तरह कहा कि इन्द्रदत्त को करारा झटका लगा। पर वे मौन रहने पर विवश थे। पंडित देवधर चलने लगे। इन्द्रदत्त के मन में भयंकर तूफान उठ रहा था। वे हार गए। बुआजी को क्या उत्तर देंगे? इस अगति का अन्त क्या होगा? क्या वे फूफाजी की बात मान लें...? कैसे मान लें? यह ठीक है कि फूफाजी अपने धर्म पर किस प्रकार एकनिष्ठ हैं, यह एकनिष्ठता उन्हें बेहद प्रभावित करती है, फिर भी उनके धर्म को वह क्योंकर स्वीकार करें?

पंडित देवधरजी जीने पर पहुँचकर रुके। इन्द्रदत्त उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। पंडितजी घूमकर बोले, "तुम्हारी मान्यताओं में मेरी आस्था नहीं है, इन्द्र, फिर भी मैं, उसके वास्तविक पक्ष को कुछ-कुछ देख अवश्य पा रहा हूँ। एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ, क्या तुम भोला-त्रिभुवन के धर्म को आज का, या किसी भी युग का वास्ताविक धर्म मानते हो?''

"जी नहीं, उनका कोई धर्म ही नहीं है।''

"तुम्हारा कल्याण हो बेटे! धन-मद से जन्मे इस खोखले धर्म से सदा लड़ना, जैसे मैं लड़ा।

तुम अपने मत के अनुसार लड़ो, पर लड़ो अवश्य। यह आस्थाहीन, दम्भ-भरा अदार्शनिक, अधार्मिक जीवन लोक के लिए अकल्याणकारी है। बोलो वचन देते हो?''

"मैं आपको अपना विश्वास देता हूँ।'' कहकर इन्द्रवत्त ने फूफाजी के चरण छू लिए।

खड़ाऊ की खट्-खट् जीने से उतर गई, आँगन पार किया, दूर चले। इन्द्रदत्त आकर कटे पड़े से अपने पलंग पर गिर गए। नया युग पुराने युग से स्वेच्छा से विदा हो रहा था; पर विदा होते समय कितना प्रबल मोह था, और कितना निर्मम व्यवहार भी।

खून का रिश्ता

भीष्म साहनी

खाट की पाटी पर बैठा चाचा मंगलसेन हाथ में चिलम थामे सपने देख रहा था। उसने देखा कि वह समधियों के घर बैठा है और वीरजी की सगाई हो रही है। उसकी पगड़ी पर केसर के छींटे हैं और हाथ में दूध का गिलास है जिसे वह घूँट-घूँट करके पी रहा है। दूध पीते हुए कभी बादाम की गिरी मुँह में जाती है, कभी पिस्ते की। बाबूजी पास खड़े समधियों से उसका परिचय करा रहे हैं, यह मेरा चचाजाद छोटा भाई है, मंगलसेन! समधी मंगलसेन के चारों ओर घूम रहे हैं। उनमें से एक झुककर बड़े आग्रह से पूछता है, और दूध लाऊँ चाचाजी? थोड़ा-सा और? अच्छा, ले आओ, आधा गिलास, मंगलसेन कहता है और तर्जनी से गिलास के तल में से शक्कर निकाल-निकालकर चाटने लगता है...

मंगलसेन ने जीभ का चटखारा लिया और सिर हिलाया। तम्बाकू की कड़वाहट से भरे मुँह में भी मिठास आ गई, मगर स्वप्न भंग हो गया। हल्की-सी झुरझुरी मंगलसेन के सारे बदन में दौड़ गई और मन सगाई पर जाने के लिए ललक उठा। यह स्वप्नों की बात नहीं थी, आज सचमुच भतीजे की सगाई का दिन था। बस, थोड़ी देर बाद ही सगे-सम्बन्धी घर आने लगेंगे, बाजा बजेगा, फिर आगे-आगे बाबूजी, पीछे-पीछे मंगलसेन और घर के अन्य सम्बन्धी, सभी सड़क पर चलते हुए, समधियों के घर जाएँगे।

मंगलसेन के लिए खाट पर बैठना असम्भव हो गया। बदन में खून तो छटाँक-भर था,

मगर ऐसा उछलने लगा कि बैठने नहीं देता था।

ऐन उसी वक्त कोठरी में सन्तू आ पहुँचा और खाट पर बैठकर मंगलसेन के हाथ में से चिलम लेते हुए बोला, "तुम्हें सगाई पर नहीं ले जाएँगे; चाचा।"

चाचा मंगलसेन के बदन में सिर से पाँव तक लरजिश हुई। पर यह सोचकर कि सन्तू खिलवाड़ कर रहा है, बोला, "बड़ों के साथ मजाक नहीं किया करते, कई बार कहा है। मुझे नहीं ले जाएँगे, तो क्या तुम्हें ले जाएँगे?"

"किसी को भी नहीं ले जाएँगे। वीरजी कहते हैं, सगाई डलवाने सिर्फ बाबूजी जाएँगे, और कोई नहीं जाएगा।"

"वीरजी आए हैं?" चाचा मंगलसेन के बदन में फिर लरजिश हुई और दिल धक्-धक् करने लगा। सन्तू घर का पुराना नौकर था, क्या मालूम ठीक ही कहता हो।

"ऊपर चलो, सब लोग खाना खा रहे हैं।" सन्तू ने चिलम के दो कश लगाए, फिर चिलम को ताक पर रखा और बाहर जाने लगा। दरवाजे के पास पहुँचकर उसने फिर एक बार घूमकर हँसते हुए कहा, "तुम्हें नहीं ले जाएँगे, चाचा, लगा लो शर्त, दो-दो रुपए की शर्त लगती है?"

"बस, बक-बक नहीं कर, जा अपना काम देख!"

ऊपर रसोईघर में सचमुच बहस चल रही थी। सन्तू ने गलत नहीं कहा था। रसोईघर में एक तरफ, दीवार के साथ पीठ लगाए बाबूजी बैठे खाना खा रहे थे। चौके के ऐन बीच में वीरजी और मनोरमा, भाई-बहन, एक साथ, एक ही थाली में खाना खा रहे थे। माँजी चूल्हे के सामने बैठी पराँठे सेंक रही थीं। माँ बेटे को समझा रही थीं, "यही मौके खुशी के होते हैं, बेटा! कोई पैसे का भूखा नहीं होता। अकेले तुम्हारे पिताजी सगाई डलवाने जाएँगे तो समधी भी इसे अपना अपमान समझेंगे।"

"मैंने कह दिया, माँ, मेरी सगाई सवा रुपए में होगी और केवल बाबूजी सगाई डलवाने जाएँगे। जो मंजूर नहीं हो तो अभी से..."

"बस-बस, आगे कुछ मत कहना!" माँ ने झट टोकते हुए कहा। फिर क्षुब्ध होकर बोलीं, "जो तुम्हारे मन में आए करो। आजकल कौन किसी की सुनता है! छोटा-सा परिवार और इसमें भी कभी कोई काम ढंग से नहीं हुआ। मुझे तो पहले ही मालूम था, तुम अपनी करोगे..."

"अपनी क्यों करेगा, मैं कान खींचकर इसे मनवा लूँगा!" बाबूजी ने बेटे की ओर देखते हुए

बड़े दुलार से कहा।

पर वीरजी खीज उठे, "क्या आप खुद नहीं कहा करते थे कि ब्याह-शादियों पर पैसे बर्बाद नहीं करने चाहिए। अब अपने बेटे की सगाई का वक्त आया तो सिद्धान्त ताक पर रख दिए। बस, आप अकेले जाइए और सवा रुपया लेकर सगाई डलवा लाइए।''

"वाह जी, मैं क्यों न जाऊँ? आजकल बहनें भी जाती हैं!'' मनोरमा सिर झटककर बोली, "वीरजी, तुम इस मामले में चुप रहो!''

"सुनो, बेटा, न तुम्हारी बात, न मेरी,'' बाबूजी बोले, "केवल पाँच या सात सम्बन्धी लेकर जाएँगे। कहोगे तो बाजा भी नहीं होगा। वहाँ उनसे कुछ माँगेंगे भी नहीं। जो समधी ठीक समझें दे दें, हम कुछ नहीं बोलेंगे।''

इस पर वीरजी तुनककर कुछ कहने जा ही रहे थे, जब सीढ़ियों पर मंगलसेन के कदमों की आवाज आई।

"अच्छा, अभी मंगलसेन से कोई बात नहीं करना। खाना खा लो, फिर बातें होती रहेंगी।'' माँजी ने कहा।

पचास बरस की उम्र के मंगलसेन के बदन के सभी चूल ढीले पड़ गए थे। जब चलता तो उचक-उचककर हिचकोले खाता हुआ और जब सीढ़ियाँ चढ़ता तो पाँव घसीटकर, बार-बार छड़ी ठकोरता हुआ। जब भी वह सड़क पर जा रहा होता, मोड़ पर का साइकिलवाला दुकानदार हमेशा मंगलसेन से मजाक करके कहता, "आओ, मंगलसेनजी, पेच कस दें!'' और जवाब में मंगलसेन हमेशा उसे छड़ी दिखाकर कहता, "अपने से बड़ों के साथ मजाक नहीं किया करते। तू अपनी हैसियत तो देख!''

मंगलसेन को अपनी हैसियत पर बड़ा नाज था। किसी जमाने में फौज में रह चुका था, इस कारण अब भी सिर पर खाकी पगड़ी पहनता था। खाकी रंग सरकारी रंग है, पटवारी से लेकर बड़े-बड़े इंस्पेक्टर तक सभी खाकी पगड़ी पहनते हैं। इस पर ऊँचा खानदान और शहर के धनीमानी भाई के घर में रहना, ऐंठता नहीं तो क्या करता?

दहलीज पर पहुँचकर मंगलसेन ने अन्दर झाँका। खिचड़ी मूँछें सस्ता तम्बाकू पीते रहने के कारण पीली हो रही थीं। घनी भौंहों के नीचे दाईं आँख कुछ ज्यादा खुली हुई और बाईं आँख कुछ ज्यादा सिकुड़ी हुई थी। सामने के तीन दाँत गायब थे।

"भौजाईजी, आप रोटियाँ सेंक रही हैं? नौकरों के होते हुए...।''

"आओ मंगलसेनजी, आओ, जरा देखो तो यहाँ कौन बैठा है!''

"नमस्ते, चाचाजी!" वीरजी ने बैठे-बैठे कहा।

"उठकर चाचाजी को पालागन करो, बेटा, तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं है!" बाबूजी ने बेटे को झिड़ककर कहा।

वीरजी उठ खड़े हुए और झुककर चाचाजी को पालागन किया। चाचाजी झेंप गए।

कोने में बैठा सन्तू, जो नल के पास बर्तन मलने लगा था, कन्धे के पीछे मुँह छिपाए हँसने लगा।

"जीते रहो, बड़ी उम्र हो!" मंगलसेन ने कहा और वीरजी के सिर पर इस गम्भीरता से हाथ फेरा कि वीरजी के बाल बिखर गए।

मनोरमा खिलखिलाकर हँसने लगी।

"सगाईवाले दिन वीरजी खुद आ गए हैं। वाह-वाह!"

"बैठ जा, बैठ जा, मंगलसेन, बहुत बातें नहीं करते।" बाबूजी बोले।

"आप मेरी जगह पर बैठ जाइए, चाचाजी, मैं दूसरी चटाई ले लूँगा।" वीरजी ने कहा।

"दो मिनट खड़ा रहेगा तो मंगलसेन की टाँगें नहीं टूट जाएँगी!" बाबूजी बोले, "यह खुद भी चटाई पकड़ सकता है। जाओ मंगलसेन, जरा टाँगें हिलाओ और अपने लिए चटाई उठा लाओ।"

माँजी ने दाँत-तले होंठ दबाया और घूर-घूरकर बाबूजी की ओर देखने लगीं, "नौकरों के सामने तो मंगलसेन के साथ इस तरह रुखाई से नहीं बोलना चाहिए। आखिर तो खून का रिश्ता है, कुछ लिहाज करना चाहिए।"

मंगलसेन छज्जे पर से चटाई उठाने गया। दरवाजे के पास पहुँचकर, नौकर की पीठ के पीछे से गुजरने लगा, तो सन्तू ने हँसकर कहा, "वहाँ नहीं है, चाचाजी, मैं देता हूँ, ठहरो। एक ही बर्तन रह गया है, मलकर उठाता हूँ।"

सन्तू निश्चिन्त बैठा, कन्धों के बीच सिर झुकाए बर्तन मलता रहा।

मनोरमा घुटनों के ऊपर अपनी ठुड्डी रखे, दोनों हाथों से अपने पैरों की उँगलियाँ मलती हुई, कोई वार्ता सुनाने लगी, "दुकानदारों की टाँगें कितनी छोटी होती हैं, भैया, क्या तुमने कभी देखा है?" अपने भाई की ओर कनखियों से देखकर हँसती हुई बोली, "जितनी देर वे गद्दी पर बैठे रहें, ठीक लगते हैं, पर जब उठें तो सहसा छोटे हो जाते हैं, इतनी छोटी-छोटी

टाँगें! आज मैं एक दुकान पर सूटकेस लेने गई...''

"उठो, सन्तू, चटाई ला दो। हर वक्त का मजाक अच्छा नहीं होता।'' चाचा मंगलसेन सन्तू से आग्रह करने लगा।

"वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, मंगलसेन? चलो, इधर आओ! उठ सन्तू, चटाई ले आ, सुनता नहीं तू? इसे कोई बात कहो तो कान में दबा जाता है!'' माँ बोलीं।

सन्तू की पीठ पर चाबुक पड़ी। उसी वक्त उठा और जाकर चटाई ले आया। माँजी ने चूल्हे के पास दीवार के साथ रखी दो थालियों में से एक थाली उठाकर मंगलसेन के सामने रख दी। मैले रूमाल से हाथ पोंछते हुए मंगलसेन चटाई पर बैठ गया। थाली में आज तीन भाजियाँ रखी थीं, चपातियाँ खूब गरम-गरम थीं।

सहसा बाबूजी ने मंगलसेन से पूछा, "आज रामदास के पास गए थे? किराया दिया उसने या नहीं?''

मंगलसेन खुशी में था। उसी तरह चहककर बोला, "बाबूजी, वह अफीमची कभी घर पर मिलता है, कभी नहीं। आज घर पर था ही नहीं।''

"एक थप्पड़ मैं तेरे मुँह पर लगाऊँगा, तुमने क्या मुझे बच्चा समझ रखा है?''

रसोईघर में सहसा सन्नाटा छा गया। माँ ने होंठ भींच लिए। मंगलसेन की पुलकन सिहरन में बदल गई। उसका दायाँ गाल हिलने-सा लगा, जैसे चपत पड़ने पर सचमुच हिलने लगता है।

"छह महीने का किराया उस पर चढ़ गया है, तू करता क्या रहता है?''

नुक्कड़ में बैठे सन्तू के भी हाथ बर्तनों को मलते-मलते रुक गए। भाई-बहन फर्श की ओर देखने लगे। हाय, बेचारा, मनोरमा ने मन ही मन कहा और अपने पैरों की उँगलियों की ओर देखने लगी। वीरजी का खून खौल उठा। चाचाजी गरीब हैं न, इसीलिए इन्हें इतना दुत्कारा जाता है...

"और पराँठा डालूँ, मंगलसेनजी?'' माँ ने पूछा। मंगलसेन का कौर अभी गले में ही अटका हुआ था। दोनों हाथों से थाली को ढँकते हुए हड़बड़ाकर बोला, "नहीं, भौजाईजी, बस जी!''

"जब मेरे यहाँ रहते यह हाल है, तो जब मैं कभी बाहर जाऊँगा तो क्या हाल होगा? मैं चाहता हूँ, तू कुछ सीख जाए और किराए का सारा काम सँभाल ले। मगर छह महीने तुझे यहाँ आए हो गए, तूने कुछ नहीं सीखा।''

इस वाक्य को सुनकर मंगलसेन के सर्द लहू में थोड़ी-सी हरारत आई।

"मैं आज ही किराया ले आऊँगा, बाबूजी! न देगा तो जाएगा कहाँ? मेरा भी नाम मंगलसेन है!''

"मुझे कभी बाहर जाना पड़ा, तो तुम्हीं को काम सँभालना है। नौकर कभी किसी को कमाकर नहीं खिलाते। जमीन-जायदाद का काम करना हो तो सुस्ती से काम नहीं चलता। कुछ हिम्मत से काम लिया करो।''

मंगलसेन के बदन में झुरझुरी हुई। दिल में ऐसा हुलास उठा कि जी चाहा, पगड़ी उतारकर बाबूजी के कदमों पर रख दे। हुमककर बोला, "चिन्ता न करो जी, मेरे होते यहाँ चिड़ी फड़क जाए तो कहना? डर किस बात का? मैंने लाम देखी है, बाबूजी! बसरे की लड़ाई में कप्तान रस्किन था हमारा। कहने लगा, देखो मंगलसेन, हमारी शराब की बोतल लारी में रह गई है। वह हमें चाहिए। उधर मशीनगन चल रही थी। मैंने कहा, अभी लो, साहब! और अकेले मैं वहाँ से बोतल निकाल लाया। ऐसी क्या बात है...''

मंगलसेन फिर चहकने लगा। मनोरमा मुस्कुराई और कनखियों से अपने भाई की ओर देखकर धीमे-से बोली, "चाचाजी की दुम फिर हिलने लगी!''

मंगलसेन खाना खा चुका था। उठते हुए हँसकर बोला, "तो चार बजे चलेंगे न सगाई डलवाने?''

"तू जा, अपना काम देख, जो जरूरत हुई तो तुम्हें बुला लेंगे।'' बाबूजी बोले।

चाचा मंगलसेन का दिल धक्-से रह गया। सन्तू शायद ठीक ही कहता था, मुझे नहीं ले चलेंगे। उसे रुलाई-सी आ गई, मगर फिर चुपचाप उठ खड़ा हुआ। बाहर जाकर जूते पहने, छड़ी उठाई और झूलता हुआ सीढ़ियों की ओर जाने लगा।

वीरजी का चेहरा क्रोध और लज्जा से तमतमा उठा। मनोरमा को डर लगा कि बात और बिगड़ेगी, वीरजी कहीं बाबूजी से न उलझ बैठें। माँजी को भी बुरा लगा। धीमे-से कहने लगीं, "देखो जी, नौकरों के सामने मंगलसेन की इज्जत-आबरू का कुछ तो खयाल रखा करो। आखिर तो खून का रिश्ता है। कुछ तो मुँह-मुलाहिजा रखना चाहिए। दिन-भर आपका काम करता है।''

"मैंने उसे क्या कहा है?'' बाबूजी ने हैरान होकर पूछा।

"यों रुखाई के साथ नहीं बोलते। वह क्या सोचता होगा? इस तरह बेआबरूई किसी की नहीं करनी चाहिए।''

"क्या बक रही हो? मैंने उसे क्या कहा है?" बाबूजी बोले। फिर सहसा वीरजी की ओर घूमकर कहने लगे, "अब तू बोल, भाई, क्या कहता है? कोई भी काम ढंग से करने देगा या नहीं?"

"मैंने कह दिया, पिताजी, आप अकेले जाइए और सवा रुपए लेकर सगाई डलवा लाइए।"

रसोईघर में चुप्पी छा गई। इस समस्या का कोई हल नजर नहीं आ रहा था। वीरजी टस से मस नहीं हो रहे थे।

सहसा बाबूजी ने सिर पर से पगड़ी उतारी और सिर आगे को झुकाकर बोले, "कुछ तो इन सफेद बालों का खयाल कर! क्यों हमें रुसवा करता है?"

वीरजी गुस्से में थे। चाचा मंगलसेन गरीब हैं, इसीलिए उसके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया जाता है। यह बात उसे खल रही थी। मगर जब बाबूजी ने पगड़ी उतारकर अपने सफेद बालों की दुहाई दी तो सहम गया। फिर भी साहस करके बोला, "यदि आप अकेले नहीं जाना चाहते तो चाचाजी को साथ ले जाइए। बस, दो जने चले जाएँ।"

"कौन-से चाचा को?" माँजी ने पूछा।

"चाचा मंगलसेन को।"

कोने में बैठे सन्तू ने भी हैरान होकर सिर उठाया। माँ झट-से बोलीं, "हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो! अपने रईस भाइयों को छोड़कर इस मरदूद को साथ ले जाएँ? सारा शहर थू-थू करेगा!"

"माँजी, अभी तो आप कह रही थीं, खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचाजी गरीब हैं, इसीलिए?"

"मैं कब कहती हूँ, यह न जाए! यह भी जाए, लेकिन और सम्बन्धी भी तो जाएँ। अपने धनी-मानी सम्बन्धियों को छोड़ दें और इस बहुरुपिए को साथ ले जाएँ, क्या यह अच्छा लगेगा?"

"तो फिर बाबूजी अकेले जाएँ," वीरजी परेशान हो उठे, "मैंने जो कहना था कह दिया! अब जो तुम्हारे मन में आए करो, मेरा इससे कोई वास्ता नहीं।" और उठकर रसोईघर से बाहर चले गए।

बेटे के यों उठ जाने से रसोईघर में चुप्पी छा गई। माँ और बाप दोनों का मन खिन्न हो

उठा। ऐसा शुभ दिन हो, बेटा घर पर आए और यों तकरार होने लगे। माँ का दिल टूक-टूक होने लगा। उधर बाबूजी का क्रोध बढ़ रहा था। उनका जी चाहता था कह दे, जा फिर मैं भी नहीं जाऊँगा। भेज दे जिसको भेजना चाहता है। मगर यह वक्त झगड़े को लम्बा करने का न था।

सबसे पहले माँ ने हार मानी, "क्या बुरा कहता है! आजकल लड़के माँ-बाप के हजारों रुपए लुटा देते हैं। इसके विचार तो कितने ऊँचे हैं! यह तो सवा रुपए में सगाई करना चाहता है। तुम मंगलसेन को ही अपने साथ ले जाओ। अकेले जाने से तो अच्छा है।''

बाबूजी बड़बड़ाए, बहुत बोले, मगर आखिर चुप हो गए। बच्चों के आगे किस माँ-बाप की चलती है? और चुपचाप उठकर अपने कमरे में जाने लगे।

"जा सन्तू, मंगलसेन को कह, तैयार हो जाए।'' माँजी ने कहा।

मनोरमा चहक उठी और भागी हुई वीरजी को बताने चली गई कि बाबूजी मान गए हैं।

मंगलसेन को जब मालूम हुआ कि अकेला वही बाबूजी के साथ जाएगा, तो कितनी ही देर तक वह कोठरी में उचकता और चक्कर लगाता रहा। बदन का छटाँक-भर खून फिर उछलने लगा। जी चाहा कि सन्तू से उसी वक्त शर्त के दो रुपए रखवा ले। क्यों न हो, आखिर मुझसे बड़ा सम्बन्धी है भी कौन, मुझे नहीं ले जाएँगे तो किसे ले जाएँगे? मैं और बाबूजी ही इस घर के कर्त्ता-धर्त्ता हैं और कौन है? जितना ही अधिक वह इस बात पर सोचता, उतना ही अधिक उसे अपने बड़प्पन पर विश्वास होने लगता। आखिर उसने कोने में रखी ट्रंकी को खोला और कपड़े बदलने लगा।

घंटा-भर बाद जब मंगलसेन तैयार होकर आँगन में आया, तो माँजी का दिल बैठ गया–यह सूरत लेकर समधियों के घर जाएगा? मंगलसेन के सिर पर खाकी पगड़ी, नीचे मैली कमीज के ऊपर खाकी फौजी कोट, जिसके धागे निकल रहे थे और नीचे धारीदार पाजामा और मोटे-मोटे काले बूट। माँ को रुलाई आ गई। पर यह अवसर रोने का नहीं था। अपनी रुलाई को दबाती हुई वह आगे बढ़ आईं।

"मनोरमा, जा, भाई की अलमारी में से एक धुला पाजामा निकाल ला।'' फिर बाबूजी के कमरे की ओर मुँह करके बोलीं, "सुनते हो जी, अपनी एक पगड़ी इधर भेज देना। मंगलसेन के पास ढंग की पगड़ी नहीं है।''

मंगलसेन का कायाकल्प होने लगा। मनोरमा पाजामा ले आई। सन्तू बूट पालिश करने लगा। आँगन के ऐन बीचोबीच एक कुरसी पर मंगलसेन को बिठा दिया गया और परिवार के लोग उसके आसपास भाग-दौड़ करने लगे। कहीं से मनोरमा की दो सहेलियाँ भी आ पहुँची थीं। मंगलसेन पहले से भी छोटा लग रहा था। नंगा सिर, दोनों हाथ घुटनों के बीच

जोड़े वह आगे की ओर झुककर बैठा था। बार-बार उसे रोमांच हो रहा था।...

मंगलसेन का स्वप्न सचमुच साकार हो उठा। समधियों के घर में उसकी वह आवभगत हुई कि देखते बनता था। मंगलसेन आरामकुरसी पर बैठा था और पीछे एक आदमी खड़ा पंखा झल रहा था। समधी आगे-पीछे, हाथ बाँधे घूम रहे थे। एक आदमी ने सचमुच झुककर बड़े आग्रह से कहा, "और दूध लाऊँ, चाचाजी? थोड़ा-सा और?''

और जवाब में मंगलसेन ने कहा, "हाँ, आधा गिलास ले आओ।''

समधियों के घर की ऐसी सज-धज थी कि मंगलसेन दंग रह गया और उसका सिर हवा में तैरने लगा। आवाज ऊँची करके बोला, "लड़की कुछ पढ़ी-लिखी भी है या नहीं? हमारा बेटा तो एम.ए. पास है।''

"जी, आपकी दया से लड़की ने इसी साल बी.ए. पास किया है।''

मंगलसेन ने छड़ी से फर्श को ठकोरा, फिर सिर हिलाकर बोला, "घर का काम-धन्धा भी कुछ जानती है या सारा वक्त किताबें ही पढ़ती रहती है?''

"जी, थोड़ा-बहुत जानती है।''

"थोड़ा-बहुत क्यों?''

आखिर सगाई डलवाने का वक्त आया। समधी बादामों से भरे कितने ही थाल लाकर बाबूजी और मंगलसेन के सामने रखने लगे। बाबूजी ने हाथ बाँध दिए, "मैं तो केवल एक रुपया और चार आने लूँगा। मेरा इन चीजों में विश्वास नहीं है। हमें अब पुरानी रस्मों को बदलना चाहिए। आप सलामत रहें, आपका सवा रुपया भी मेरे लिए सवा लाख के बराबर है।''

"आपको किस चीज की कमी है, लालाजी! पर हमारा दिल रखने के लिए ही कुछ स्वीकार कर लीजिए।''

बाबूजी मुस्कुराए, "नहीं महाराज, आप मुझे मजबूर न करें। यह उसूल की बात है। मैं तो सवा ही रुपया लेकर जाऊँगा। आपका सितारा बुलन्द रहे! आपकी बेटी हमारे घर आएगी, तो साक्षात् लक्ष्मी विराजेगी!''

मंगलसेन के लिए चुप रहना असम्भव हो रहा था। हुमककर बोला, "एक बार कह जो दिया जी कि हम सवा रुपया ही लेंगे। आप बार-बार तंग क्यों करते हैं?''

बेटी के पिता हँस दिए और पास खड़े अपने किसी सम्बन्धी के कान में बोले, "लड़के के

चाचा हैं, दूर के। घर में टिके हुए हैं। लालाजी ने आसरा दे रखा है।''

आखिर समधी अन्दर से एक थाल ले आए, जिस पर लाल रंग का रेशमी रूमाल बिछा था और बाबूजी के सामने रख दिया। बाबूजी ने रूमाल उठाया, तो नीचे चाँदी के थाल में चाँदी की तीन चमचम करती कटोरियाँ रखी थीं, एक में केसर, दूसरी में रांगला धागा, तीसरी में एक चमकता चाँदी का रुपया और चमकती चवन्नी। इसके अलावा तीन कटोरियों में तीन छोटे-छोटे चाँदी के चम्मच रखे थे।

"आपने आखिर अपनी ही बात की,'' बाबूजी ने हँसकर कहा, "मैं तो केवल सवा रुपया लेने आया था...'' मगर थाल स्वीकार कर लिया और मन-ही-मन कटोरियों, थाल और चम्मचों का मूल्य आँकने लगे।

मनोरमा और उसकी सहेलियाँ छज्जे पर खड़ी थीं जब दोनों भाई सड़क पर आते दिखाई दिए। मंगलसेन के कन्धे पर थाल था, लाल रंग के रूमाल से ढँका हुआ और आगे-आगे बाबूजी चले आ रहे थे।

वीरजी अब भी अपने कमरे में थे और पलंग पर लेटे किसी नॉवल के पन्नों में अपने मन को लगाने का विफल प्रयास कर रहे थे। उनका माथा थका हुआ था, मगर हृदय धूमिल भावनाओं से उद्वेलित होने लगा था। क्या प्रभा मेरे लिए भी कोई सन्देश भेजेगी? सवा रुपए में सगाई डलवाने के बारे में वह क्या सोचती होगी? मन ही मन तो जरूर मेरे आदर्शों को सराहती होगी। मैंने एक गरीब आदमी को अपनी सगाई डलवाने के लिए भेजा। इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे आदर्शों का क्या हो सकता है?

"लाख-लाख बधाइयाँ, भौजाईजी!'' घर में कदम रखते ही मंगलसेन ने आवाज लगाई।

मनोरमा और उसकी सहेलियाँ भागती हुईं जंगले पर आ गईं। बाबूजी गम्भीर मुद्रा बनाए, आँगन में आए और छड़ी कोने में रखकर अपने कमरे में चले गए।

मनोरमा भागती हुई नीचे गई और झपटकर थाल चाचा मंगलसेन के हाथ से छीन लिया।

"कैसी पगली है! दो मिनट इन्तजार नहीं कर सकती।''

"वाह जी, वाह!'' मनोरमा ने हँसकर कहा, "बाबूजी की पगड़ी पहन ली तो बाबूजी ही बन बैठे हैं! लाइए, मुझे दीजिए। आपका काम पूरा हो गया।''

माँजी की दोनों बहनें जो इस बीच आ गई थीं, माँजी से गले मिल-मिलकर बधाई देने लगीं। आवाज सुनकर वीरजी भी जंगले पर आ खड़े हुए और नीचे आँगन का दृश्य देखने लगे। थाल पर रखे लाल रूमाल को देखते ही उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। सहसा ही

वह ससुराल की चीजों से गहरा लगाव महसूस करने लगे। इस रूमाल को जरूर प्रभा ने अपने हाथ से छुआ होगा। उनका जी चाहा कि रूमाल को हाथ में लेकर चूम लें। इस भेंट को देखकर उनका मन प्रभा से मिलने के लिए बेताब होने लगा।

माँजी ने थाल पर से रूमाल उठाया। चमकती कटोरियाँ, चमकता थाल, बीच में रखे चम्मच। वीरजी को महसूस हुआ, जैसे प्रभा ने अपने गोरे-गोरे हाथों से इन चीजों को करीने से सजाकर रखा होगा।

"पानी पिलाओ, सन्तू।'' चाचा मंगलसेन ने आँगन में कुर्सी पर बैठते हुए, टाँग के ऊपर टाँग रखकर, सन्तू को आवाज लगाई।

इतने में माँजी को याद आई, "तीन कटोरियाँ और दो चम्मच? यह क्या हिसाब हुआ? क्या तीन चम्मच नहीं दिए समधियों ने ।'' फिर बाबूजी के कमरे की ओर मुँह करके बोलीं, "अजी सुनते हो! तुम भी कैसे हो, आज के दिन भी कोई अन्दर जा बैठता है?''

"क्या है?'' बाबूजी ने अन्दर से ही पूछा।

"कुछ बताओ तो सही, समधियों ने क्या कुछ दिया है?''

"बस, थाल में जो कुछ है वही दिया है, तेरे बेटे ने मना जो कर दिया था।''

"क्या तीन कटोरियाँ थीं और दो चम्मच थे?''

"नहीं तो, चम्मच भी तीन थे।''

"चम्मच तो यहाँ सिर्फ दो रखे हैं।''

"नहीं-नहीं, ध्यान से देखो, जरूर तीन होंगे। मंगलसेन से पूछो, वही थाल उठाकर लाया था।''

"मंगलसेनजी, तीसरा चम्मच कहाँ है?''

मंगलसेन सन्तू को सगाई का ब्यौरा दे रहा था–"समधी हमारे सामने हाथ बाँधे यों खड़े थे, जैसे नौकर हों। लड़की बड़ी सुशील है, बड़ी सलीकेवाली है, बी.ए. पास है, सीना-पिरोना भी जानती है...''

"मंगलसेनजी, तीसरा चम्मच कहाँ है?''

"कौन-सा चम्मच? वहीं थाल में होगा।'' मंगलसेन ने लापरवाही से जवाब दिया।

"थाल में तो नहीं है।''

"तो उन्होंने दो ही चम्मच दिए होंगे। बाबूजी ने थाल लिया था।''

"हमें बेवकूफ बना रहे हो, मंगलसेनजी, तुम्हारे भाई कह रहे हैं तीन चम्मच थे!''

इतने में बाबूजी की गरज सुनाई दी, "इसीलिए मेरे साथ गए थे कि चम्मच गँवा आओगे? कुछ नहीं तो पाँच-पाँच रुपए का एक-एक चम्मच होगा।''

मंगलसेन ने उसी लापरवाही से कुरसी पर से उठकर कहा, "मैं अभी जाकर पूछ आता हूँ। इसमें क्या है? हो सकता है, उन्होंने दो ही चम्मच रखे हों।''

"वहाँ कहाँ जाओगे? बताओ चम्मच कहाँ है? सारा वक्त तो थाल पर रूमाल रखा रहा।''

"बाबूजी, थाल तो आपने लिया था, आपने चम्मच गिने नहीं थे?''

"मेरे साथ चालाकी करता है? बदजात! बता तीसरा चम्मच कहाँ है?''

माँजी चम्मच खो जाने पर विचलित हो उठी थीं। बहनों की ओर घूमकर बोलीं, "गिनी-चुनी तो समधियों ने चीजें दी हैं, उनमें से भी अगर कुछ खो जाए, तो बुरा तो आखिर लगता ही है!''

"कैसा ढीठ आदमी है, सुन रहा है और कुछ बोलता नहीं!'' बाबूजी ने गरजकर कहा।

चम्मच खो जाने पर अचानक वीरजी को बेहद गुस्सा आ गया। प्रभा ने चम्मच भेजा और वह उन तक पहुँचा ही नहीं। प्रभा के प्रेम की पहली निशानी ही खो गई। वीरजी सहसा आवेश में आ गए। वीरजी ने आव देखा न ताव, मंगलसेन के पास जाकर उसे दोनों कन्धों से पकड़कर झिंझोड़ दिया।

"आपको इसीलिए भेजा था कि आप चीजें गँवा आएँ?''

सभी चुप हो गए। सकता-सा छा गया। वीरजी खिन्न-से महसूस करने लगे कि मुझसे यह क्या भूल हो गई और झेंपकर वापस जाने लगे।

"तुम बीच में मत पड़ो, बेटा! अगर चम्मच खो गया है तो तुम्हारी बला से! सबका धर्म अपने-अपने साथ है। एक चम्मच से कोई अमीर नहीं बन जाएगा!''

"जेब तो देखो इसकी।'' बाबूजी ने गरजकर कहा।

मौसियाँ झेंप गईं और पीछे हट गईं। पर मनोरमा से न रहा गया। झट आगे बढ़कर वह जेब देखने लगी। रसोईघर की दहलीज पर सन्तू हाथ में पानी का गिलास उठाए रुक गया और मंगलसेन की ओर देखने लगा। चाचा मंगलसेन खड़ा कभी एक का मुँह देख रहा था, कभी दूसरे का। वह कुछ कहना चाहता था, मगर मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था।

एक जेब में से मैला-सा रूमाल निकला, फिर बीड़ियों की गड्डी, माचिस, छोटा-सा पैंसिल का टुकड़ा।

"इस जेब में तो नहीं है।'' मनोरमा बोली और दूसरी जेब देखने लगी। मनोरमा एक-एक चीज निकालती और अपनी सहेलियों को दिखा-दिखाकर हँसती।

दाईं जेब में कुछ खनका। मनोरमा चिल्ला उठी, "कुछ खनका है, इसी जेब में है, चोर पकड़ा गया! तुमने सुना, मालती?''

जेब में टूटा हुआ चाकू रखा था, जो चाबियों के गुच्छे से लगकर खनका था।

"छोड़ दो, मनोरमा! जाने दो, सबका धर्म अपने-अपने साथ है। आपसे चम्मच अच्छा नहीं है, मंगलसेनजी, लेकिन यह सगाई की चीज थी।''

मंगलसेन की साँस फूलने लगी और टाँगें काँपने लगीं, लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा था।

"दोनों कान खोलकर सुन ले, मंगलसेन!'' बाबूजी ने गरजकर कहा, "मैं तेरे से पाँच रुपए चम्मच के ले लूँगा, इसमें मैं कोई लिहाज नहीं करूँगा।''

मंगलसेन खड़े-खड़े गिर पड़ा।

"बधाई, बहनजी!'' नीचे आँगन में से तीन-चार स्त्रियों की आवाज एक साथ आ गई।

मंगलसेन गिरा भी अजीब ढंग से। धम्म-से जमीन पर जो पड़ा तो उकड़ँू हो गया, और पगड़ी उतरकर गले में आ गई। मनोरमा अपनी हँसी रोके न रोक सकी।

"देखो जी, कुछ तो खयाल करो। गली-मुहल्ला सुनता होगा। इतनी रुखाई से भी कोई बोलता है!'' माँजी ने कहा, फिर घबराकर सन्तू से कहने लगीं, "इधर आओ सन्तू, और इन्हें छज्जे पर लिटा आओ।''

वीरजी फिर खिन्न-सा अनुभव करते हुए अपने कमरे में चले गए। मैंने जल्दबाजी की, मुझे बीच में नहीं पड़ना चाहिए था। इन्होंने चम्मच कहाँ चुराया होगा, जरूर कहीं गिर गया होगा।

बाबूजी नीचे अपने कमरे में चले गए। शीघ्र ही घर में ढोलक बजने की आवाज आने लगी। मनोरमा और उसकी सहेलियाँ आँगन में कालीन बिछवाकर बैठ गईं। ढोलक की आवाज सुनकर पड़ोसिनें घर में बधाई देने आने लगीं।

ऐन उसी वक्त गलीवाले दरवाजे के पास एक लड़का आ खड़ा हुआ। संकोचवश वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि अन्दर जाए या वहीं खड़ा रहे। मनोरमा ने देखते ही पहचान लिया कि प्रभा का भाई, वीरजी का साला है। भागी हुई उसके पास जा पहुँची और शरारत से उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

"आओ, बेटाजी, अन्दर आओ, तुम यहाँ पड़ोस में रहते हो न?''

"नहीं, मैं प्रभा का भाई हूँ।''

"मिठाई खाओगे?'' मनोरमा ने फिर शरारत से कहा और हँसने लगी। लड़का सकुचा गया।

"नहीं, मैं तो यह देने आया हूँ।'' उसने कहा और जाकेट की जेब में से एक चमकता, सफेद चम्मच निकाला और मनोरमा के हाथ में देकर उन्हीं कदमों वापस लौट गया।

"हाय, चम्मच मिल गया! माँजी चम्मच मिल गया!''

पर माँजी सम्बन्धियों से घिरी खड़ी थीं। मनोरमा रुक गई और माँ से नजरें मिलाने की कोशिश करते हुए, हाथ ऊँचा करके चम्मच हिलाने लगी। चम्मच को कभी नाक पर रखती, कभी हवा में हिलाती, कभी ऊँचा फेंककर हाथ में पकड़ती, मगर माँजी कुछ समझ ही नहीं रही थीं।...

छज्जे पर सन्तू ने मंगलसेन को खाट पर लिटाया और मुँह पर पानी का छींटा देते हुए बोला, "तुम शर्त जीत गए। बस तनख्वाह मिलने पर दो रुपए नकद तुम्हारी हथेली पर रख दूँगा।''

रिश्ते-नाते

कामतानाथ

पोस्टकार्ड पर पता अंग्रेजी में था। मजमून उर्दू में। उसका एक कोना फटा था, जिसका अर्थ था कि वह किसी की मृत्यु की सूचना है, लेकिन किसकी, यह मजमून पढ़े बिना नहीं जाना जा सकता था और उर्दू मुझे आती नहीं थी। पता बिलकुल साफ था। अत: इस बारे में कोई शंका नहीं हो सकती थी कि पत्र किसी और का हो। फिर भी मैंने पोस्टकार्ड को उलट-पुलटकर देखा और लिखावट से ही अनुमान लगाने का प्रयत्न किया। लिखावट किसी बूढ़े आदमी की लग रही थी या किसी ऐसे व्यक्ति की, जिसका हाथ काँपता हो। मैंने पत्र पर छपी डाकखाने की मुहर पढ़ने की कोशिश की। इस शहर की मुहर बिलकुल साफ थी, लेकिन पोस्टकार्ड जहाँ से चला था, वहाँ की मुहर कतई पढ़ने में नहीं आ रही थी। पोस्टकार्ड की रंगत से लग रहा था जैसे वह काफी दिनों से रखा रहा हो। उस पर छपी टिकट की डिजाइन भी वही बता रही थी। क्या किया जाए, मैंने मन-ही-मन सोचा। इस तरह उसे डाल देना तो कतई उचित नहीं होगा। तभी पत्नी आ गई। उसने पोस्टमैन की आवाज सुन ली थी, "किसकी चिट्ठी है?'' उसने पूछा।

"पता नहीं।'', मैंने कहा और कार्ड उसकी ओर बढ़ा दिया।

"यह तो किसी के मरने की चिट्ठी है।'' उसने कहा।

"हाँ, लगता तो यही है।'' असहमति का मेरे पास कोई कारण नहीं था।

"पढ़ा नहीं तुमने?''

"कैसे पढ़ँू? मजमून उर्दू में है और उर्दू मैं जानता नहीं। तुम्हें पढ़नी आती है?''

उसने मुझे घूरकर देखा। जाहिर है, यह वक्त मजाक का नहीं था, लेकिन वाक्य मेरे मुँह से निकल चुका था।

"किसी से पढ़वा लो न।''

यह मैं जानता था, लेकिन प्रश्न यह था कि किससे पढ़वाया जाए। मेरे पिता, चाचा, ताऊ सब उर्दू पढ़े थे। ताऊ का लड़का भर्तृहरि फारसी भी पढ़ा था। कायस्थों में उन दिनों यही चलन था, लेकिन मेरे बड़े होते-होते देश आजाद हो गया। उसी के साथ उर्दू का चलन भी समाप्त हो गया और मुझे अलिफ बे पे की जगह क, ख, ग सीखना पड़ा।

मन-ही-मन मैंने अपने पड़ोसियों के बारे में सोचा कि शायद उनमें से कोई उर्दू जानता हो, लेकिन मैं किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। मेरे ऑफिस में जरूर कुछ मुसलमान थे। दो-एक के यहाँ मैं ईद-बकरीद जाता भी रहता था। उनमें रियाज अहमद मेरे घर के सबसे निकट रहता था। इसी लिए उससे मेरी रब्त-जब्त भी, औरों की अपेक्षा कुछ ज्यादा थी। मैंने स्कूटर निकाला और उसके यहाँ पहुँच गया। आज शनिवार था। हम लोगों का हाफ-डे होता था। मुझे उम्मीद थी कि मेरी तरह वह भी घर पहुँच चुका होगा, लेकिन वह घर पर नहीं था। उसकी बेटी खदीजा ने बताया कि डैडी तो अभी आए नहीं। बाजार जाना था उन्हें। शायद उधर से ही चले गए हों।

"आप बैठिए।'' उसने कहा और मेरे लिए पानी लेने चली गई।

मैंने पोस्टकार्ड निकालकर हाथ में ले लिया। वह लौटकर आई तो पोस्टकार्ड उसे देते हुए कहा, "इसे पढ़ो जरा।''

उसने पोस्टकार्ड ले लिया। "यह तो उर्दू में है, अंकल।'' उसने कहा।

"हाँ, इसीलिए तो तुमसे पढ़वा रहा हूँ।''

"उर्दू मुझे कहाँ आती है!'' उसने कहा।

मैंने उसकी ओर देखा। मुझे मालूम था, वह बी.ए. में पढ़ रही है।

"क्यों, स्कूल में भी नहीं पढ़ी तुमने?'' मैंने कहा।

"न,'' उसने कहा, "हमारे स्कूल में पढ़ाई ही नहीं जाती थी।''

"तुम्हारी अम्मी तो जानती होंगी?''

तभी रियाज आ गया। "कहो, खैरियत तो है?'' उसने कहा। निश्चय ही मुझे देखकर उसे आश्चर्य हुआ होगा। अभी दो घंटे पहले हम लोग ऑफिस में साथ थे।

"वैसे ही,'' मैंने कहा, "एक प्रॉब्लम आ गई है।'' और मैंने पोस्टकार्ड खदीजा के हाथ से लेकर उसकी ओर बढ़ा दिया, "इसे पढ़ो जरा।''

उसने पोस्टकार्ड हाथ में ले लिया, "यह तो किसी के मरने की खबर लगती है।'' उसने उसे बिना पढ़े ही कहा। पोस्टकार्ड का कोना फटा होने का अर्थ उसे भी मालूम था।

"लगता तो यही है।''

वह सोफे पर बैठ गया और पोस्टकार्ड को उलटकर देखने लगा। सम्भवत: उसे भी पड़ने में कठिनाई हो रही थी।

"किसी मनोहर लाल ने लिखा है।'' उसने अन्तत: कहा।

"अच्छा आगे।''

"बसन्तू कौन है?''

"मैं ही हूँ।''

"तुम?''

"हाँ, घर का मेरा यही नाम है।''

वह कुछ ज्यादा गौर से पढ़ने लगा, "लिखा है, तुम्हारी दादी का पिछले इतवार, तारीख अट्ठाईस सितम्बर को इन्तकाल हो गया। बुधवार, आठ अक्टूबर को दसवाँ और सनीचर, ग्यारह अक्टूबर को तेरहवीं होगी। लेकिन ग्यारह तो आज है।''

"कार्ड लिखे जाने की तारीख पड़ी है?''

"मोरखा उनतीस सितम्बर लिखा है।''

"मोरखा क्या?''

"तारीख।''

"उनतीस सितम्बर और आज है ग्यारह अक्टूबर। चलो, बारह दिन में पहुँच गया। गनीमत है।'' मैंने पोस्टकार्ड उससे ले लिया।

उसने अफसोस जाहिर किया।

"सगी दादी थी तुम्हारी?'' उसने पूछा।

"नहीं।'' मैंने उत्तर दिया।

खदीजा तब तक चाय ले आई थी। एक प्लेट में बिस्कुट भी थे। मैंने चाय ले ली।

"पता क्या लिखा है? पढ़ना जरा।'' मैंने कार्ड फिर रियाज की तरफ बढ़ा दिया।

वह कुछ ज्यादा ही देर तक उलझा रहा। तब बोला, "जगह का नाम तो साफ समझ में नहीं आ रहा। तहसील हसनगंज, जिला उन्नाव लिखा है।''

मैंने पोस्टकार्ड उससे लेकर जेब में डाल लिया और चुपचाप चाय पीने लगा।

"जाओगे क्या?'' रियाज ने पूछा।

"दसवाँ तो हो गया। तेरहवीं आज है। सो, पहुँच तो सकता नहीं।''

"फिर भी...।''

"कह नहीं सकता। घर जाकर देखूँगा।'' चाय समाप्त करके प्याला मैंने मेज पर रख दिया और उठकर खड़ा हो गया।

मनोहर लाल मेरे बाबा के चचाजाद भाई थे, लेकिन उम्र में उनसे काफी छोटे थे। लगभग मेरे पिता की उम्र के होंगे। और पिता, यदि आज जीवित होते तो अस्सी-बयासी साल के होते। इसके मायने इतनी ही उम्र उनकी भी होगी। दादी भी पचहत्तर से क्या कम रही होंगी। पिछले तीस-बत्तीस सालों से मैं गाँव नहीं गया था। इसके बावजूद, मुझे आश्चर्य हुआ कि मन्हर बाबा को–उनका यही नाम घर में प्रचलित था, मेरा ध्यान कैसे बना रहा। जहाँ तक मेरी जानकारी थी, गाँव में मेरे अपने परिवार का, यानी मेरे सगे बाबा के वंशजों में से कोई नहीं था। बाबा की मृत्यु तो तभी हो गई थी, जब मैं तीन-चार वर्ष का था। उनका जो हुलिया मुझे याद था, पता नहीं यह उनका हुलिया था या फिर मैंने माँ द्वारा उनके बारे में बताई गई बातों के आधार पर इसे गढ़ा था–वह कानों को पूरी तरह ढकने वाले बड़े-बड़े बालों, जिन्हें उन दिनों 'पट्टा' कहा जाता था तथा रोबीली मूँछोंवाले एक ऐसे व्यक्ति का

था, जो चौपाल में पड़े तख्त पर, मनसद का सहारा लिए, अधलेटा, फरशी पीता रहता था। माँ बताती थीं कि इन्हीं मन्हर बाबा ने, जिनकी पत्नी की मृत्यु का कार्ड आज मुझे मिला है, मुझे इस तरह ट्रेन किया था कि मुझे जमीन पर खड़ा करके वह सीटी बजाते तो मैं पेशाब करने लगता। माँ के अनुसार मेरे बाबा अक्सर मन्हर बाबा से सीटी बजवाकर मेरा यह कमाल देखते थे। खैर, मेरे बाबा को मरे तो एक लम्बा अरसा गुजर ही चुका था–मेरे पिता, चाचा, ताऊ आदि को भी इस दुनिया से उठे बरसों बीत चुके थे। मेरी दोनों बुआ और फूफा भी अब इस संसार में नहीं थे। मेरे ताऊ के लड़के भर्तृहरि का भी देहांत हो चुका था। इस तरह पूरी दो पीढ़ी मेरे देखते-देखते समाप्त हो चुकी थीं और तीसरी पीढ़ी पर भी दाँत लग चुका था।

वैसे दो-ढ़ाई पीढ़ी बीतने में बहुत ज्यादा समय नहीं लगता, लेकिन इस बीच गाँव से हम लोगों का दाना-पानी पूरी तरह उठ गया था। मेरे चाचा और पिता तो अपनी जवानी में ही गाँव छोड़कर नौकरी करने शहर चले आए थे। ताऊ जरूर अन्त तक वहाँ बने रहकर खेती-बाड़ी देखते रहे। उनकी मृत्यु के बाद उनका बेटा, जो किशोरावस्था में ही गाँव छोड़कर मेरे पिता के पास पढ़ने चला आया था और फिर यहीं नौकरी करने और विवाह होने के बाद अलग मकान लेकर रहने लगा था, शहर में रहकर ही बँटाई आदि पर खेती का काम करवाता रहा और उसके पश्चात् तो फिर...भगवान जाने। हाँ, इतना मुझे मालूम था कि गाँव में हमारे मकान में कोई रह नहीं रहा था। मन्हर बाबा वाला मकान हमारे मकान से सटा हुआ था, बल्कि एक तरह से दोनों एक ही मकान थे, क्योंकि उनके बीच वाली दीवार में दरवाजा फूटा था। और जैसा कि उनके इस पत्र से जाहिर था, वह अभी भी गाँव में रह रहे थे। उनके साथ और कौन था, दादी के अलावा, जो अभी मरी थीं, इसकी जानकारी मुझे नहीं थी, बल्कि मैं तो एक तरह से मन्हर बाबा के अस्तित्व को भी भूल चुका था।

घर पहुँचते-पहँुचते मैं खासा नास्टैलजिक मूड में आ चुका था। मुझे अपना बचपन याद आ रहा था, जब प्राय: हर वर्ष मैं अपनी माँ के साथ गाँव जाया करता था। उन दिनों रेलवे स्टेशन से गाँव तक का जो रास्ता था, उसकी दूरी सात-आठ मील से कम नहीं थी। घर से स्टेशन पर गाड़ी आती थी, हम लोगों को लेने। नहीं तो स्टेशन के पास ही कहीं बैलगाड़ी और घोड़े जो घोड़े कम टट्टू ज्यादा होते थे, किराए पर मिलते थे।

एक बार मैं अपने पिता के साथ टट्टू पर बैठकर गया था। उस समय मेरी आयु चार-पाँच वर्ष रही होगी। पिता ने मुझे अपने आगे टट्टू पर बिठा लिया था और कभी-कभी मेरे जिद करने पर मुझे उसकी लगाम भी पकड़ा देते। बैलगाड़ी पर सफर करने में भी मुझे खासा आनन्द आता। रास्ते में जगह-जगह मोर और सारस जैसे पक्षी देखने को मिलते। नीलगायों के झुंड के झुंड दिख जाते। हिरनों की याद भी मुझे है। वे हमें देखते ही कुलाँचे भरते हुए भाग जाते। एक बार हमें रास्ते में रात भी हो गई थी। पता नहीं गाड़ी लेट थी या क्या बात थी, जो भी रहा हो, स्टेशन से हम किराए की गाड़ी लेकर चले तो थोड़ी ही देर में अँधेरा हो गया। बैल चलने में आना-कानी करने लगे। सम्भवत: बारिश के दिन थे, क्योंकि जगह-

जगह पानी भरा हुआ था। बैलगाड़ी वाला नखरे करने लगा। अन्तत: उसके कहने पर पिता ने एक आदमी और किया किराए पर, जो लालटेन लेकर बैलों के आगे चलता। तभी बैल आगे बढ़ते। इस तरह कुछ देर चला। कुछ दूर जाकर बैलगाड़ीवाले ने आगे जाने से बिलकुल मना कर दिया। विवश होकर हमें रास्ते के किसी गाँव में रात काटनी पड़ी। किसका घर था, यह तो अब मुझे याद नहीं, लेकिन इतना याद है कि लम्बा-सा एक कमरा था, जिसमें पुआल बिछाकर चादर आदि डाल दिए गए थे। उसी पर हम सब लेटे थे। मेरी माँ और शायद चाची भी थीं। जहाँ तक मुझे ध्यान है, हम अपने ताऊ की लड़की की शादी में जा रहे थे। माँ अपने साथ पूरियाँ बाँधे थीं, नमक, मिर्च और उबले आलुओं के साथ हमने उन्हें खाया था। उस खाने का स्वाद आज भी मुझे याद है। सुबह हम गाँव पहुँचे तो वहाँ लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस समय हम लोग कहाँ से आ गए, क्योंकि गाड़ी उस समय कोई थी नहीं। पिता ने सारी बात बताई तो मन्हर बाबा ने गाड़ीवाले को मारते-मारते छोड़ा।

सारे नाते-रिश्तेदार मिलाकर कोई तीस-चालीस लोग उस अवसर पर जमा हुए थे। बारात में रंडी भी आई थी, जो गैसबत्ती के उजाले में देर तक दरवाजे पर नाची थी। पूरा गाँव ही उसका नाच देखने के लिए जमा हो गया था। तीन-चार दिन पहले से घर में हलवाई बैठा था। मन्हर बाबा उसके इन्चार्ज थे। पाँच मेल की मिठाई और नमकीन बनी थी। बच्चों को हलवाई के पास जाने की सख्त मनाही थी, लेकिन मैं हर आध घंटे बाद घूम-घूमकर वहाँ पहुँच जाता। मन्हर बाबा चुपके से मुझे मिठाई खाने को दे देते। साथ में यह कहते जाते, 'किसी को बताना नहीं।' और मैं सिर हिलाकर हामी भर देता कि नहीं बताऊँगा।

मन्हर बाबा ही मुझे सबसे अच्छे लगते। हमारे घर में घोड़ा पला था, किराए वाला टट्टू नहीं असली कलारासी घोड़ा। मन्हर बाबा हमें उस पर बिठाकर घुमाते। तालाबों में लगे कोका-बेली और कमल के फूल तोड़कर देते। आम की फसल के दिनों में मुझे तथा अन्य बच्चों को बैलगाड़ी में बिठाकर बाग ले जाते। वहाँ से उस पर ढेरों आम लादकर लाते। बाग में महुआ के भी तीन-चार पेड़ थे। उनके नीचे महुआ इस तरह बिछे रहते जैसे किसी ने झल्ली में भरकर उन्हें छितरा दिया हो। जामुन के पेड़ से तो एक बार मैं गिर भी पड़ा था। गनीमत थी कि पेड़ एक तालाब के किनारे था और मैं उसकी गीली मिट्टी में ही गिरा, नहीं तो निश्चित रूप से हाथ-पाँव टूट गए होते।

हमारे घर के सामने ही एक बड़ा-सा तालाब था। रंगी नाम का एक कहार बाँस की खपच्चियों से मिट्टी के घड़े उलटकर बाँधे उनकी सहायता में उसमें सिंघाड़े की बेल लगाता और जब सिंघाड़े बड़े हो जाते तो उन्हें उसी तरह पानी में घुसकर तोड़ता। मैं घंटों उसे ऐसा करते देखता रहता। गन्ना भी होता था यहाँ। गाँव के बाहर खलिहानों के पास कोल्हू लगाकर उन्हें पेरा जाता और रस को बड़े-बड़े कड़ाहों में उबालकर गुड़ बनाया जाता। गुड़ बनने की यह प्रक्रिया देखना भी मुझे बहुत प्रिय था। इसी प्रकार खेतों से फूट, ककड़ी आदि तोड़ने में भी काफी आनन्द आता। चने की फसल में लोग समूह बनाकर खेतों में चने का

साग खाने जाते तो मैं उनके साथ हो लेता। कोई त्योहार होता था, जिसमें नीलकंठ के दर्शन किए जाते थे। मन्हर बाबा मुझे भी अपने साथ ले जाते और हम दूर-दूर तक जंगल में नीलकंठ को खोजते फिरते।

जाड़ों में रोज हमारे दरवाजे अलाव जलता, जहाँ गाँव के सभी बूढ़े-बुजुर्ग जमा होकर देर तक दुनिया जहान की बातें करते। मन्हर बाबा वाली दादी भी मुझे बहुत अच्छी लगतीं। वह मेरी माँ की ही उम्र की थीं और उन्हीं की तरह गोरी और सुन्दर भी, बल्कि माँ से कुछ ज्यादा ही सुन्दर थीं। वह मेरा विशेष खयाल रखतीं। दूध, दही, मक्खन आदि खाने को देतीं। माँ कभी मेरी किसी बात पर नाराज होकर मुझे पीट देतीं तो मैं तनतनाता हुआ इन्हीं दादी के पास भागता और वह मुझे गोद में उठाकर प्यार करतीं, मेरे आँसू पोंछतीं और मुझे अमरस, बताशा, रेवड़ी आदि खाने को देतीं। इस प्रकार गाँव की एक दुनिया थी, जो अपने आप में काफी खूबसूरत थी, लेकिन पिछले लम्बे अरसे से शहर में रहते हुए मैं उसके रोमांच को तो पूरी तरह भूल ही चुका था, वहाँ रहने वाले जो लोगों के अस्तित्व से भी पूरी तरह बेखबर हो चुका था।

मैं रियाज के घर से लौट रहा तो वह सब मुझे याद आ रहा था। मन-ही-मन कुछ ग्लानि भी हो रही थी कि गाँव की उस मिट्टी को, जिसमें मैं बचपन में खेला-कूदा और उन लोगों को, जिनसे बचपन की मेरी कितनी ही यादें वाबस्ता थीं, मैं अपनी जिन्दगी में पूरी तरह खारिज कर चुका था। मन्हर बाबा का यह पत्र न आता तो मुझे यह भी पता न चलता कि वह जीवित हैं। उनका बड़ेवाला बेटा, जिसका नाम लल्लन था और जो मेरी ही उम्र का था तथा मेरे साथ खेला करता था, आज कहाँ है, मुझे पता नहीं था।

इतना मुझे मालूम था कि वह एच.बी.टी.आई. से इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर अमेरिका चला गया था, लेकिन अब वह कहाँ है, यह मेरी जानकारी में नहीं था। छोटेवाले के बारे में तो कुछ भी जानकारी मेरे पास नहीं थी। यह भी मालूम नहीं था कि वह जिन्दा भी है या नहीं। मन्हर बाबा की एक लड़की भी थी, जिसे घर में सब बिट्टी कहते थे। मुझसे वह पाँच-छह साल बड़ी तथा अपनी माँ की तरह ही सुन्दर थी। उसका विवाह पूरब में कहीं किसी शहर में हुआ था। उसका पति बहुत शराबी था। ससुराल में वह काफी दुखी थी। उसके बारे में भी मुझे कुछ मालूम नहीं था।

मैं घर में घुसा तो पत्नी ने मेरी ओर देखा, "किसके मरने का कार्ड है?'' उसने पूछा।

"मेरी एक दादी थीं।'' मैंने कहा, "गाँव में, जहाँ हम लोगों का पैतृक घर है।''

"तुम लोगों का पैतृक घर भी है कहीं?'' उसने आश्चर्य व्यक्त किया, "आज तक तो कभी तुमने जिक्र किया नहीं।''

"कभी ऐसा सन्दर्भ ही नहीं आया?'' मैंने कहा।

"क्या उम्र थी दादी की?"

"ठीक तो नहीं कह सकता। रही होंगी सत्तर-पचहत्तर साल की।"

पत्नी चुप हो गई। थोड़ी देर बाद बोली, "बस, यही लिखा है?"

"दसवाँ-तेरहीं के बारे में लिखा है कि कब है।"

"कब है?"

"दसवाँ हो गया। तेरहीं आज है।"

"आज?"

"हाँ।"

"तो क्या करोगे?"

"सोचता हूँ, हो आऊँ एक-दो दिन के लिए। पिछले तीस-पैंतीस सालों से नहीं गया हूँ। इसी बहाने देख-सुन आऊँगा।"

"मेरे लिए तो गाँव में एक दिन भी रहना मुश्किल है।"

"तुम्हारी बात मैं नहीं कर रहा। अपने लिए कह रहा हूँ।"

पत्नी ने राहत की साँस ली, "कब जाओगे?" उसने पूछा।

"कल पता करूँगा, ट्रेन से जाने पर तो उन दिनों सात-आठ मील पैदल का रास्ता था या फिर बैलगाड़ी। नहीं तो टट्टू लेकिन अब तो सब कहीं बसें चलने लगी हैं। हसनगंज का एक आदमी है मेरे दफ्तर में। उससे पूछूँगा।"

"हसनगंज क्या?"

"तहसील है मेरे गाँव की। वहाँ से थोड़ी ही दूर होगा।"

पत्नी के आगे बात नहीं की।

बस तब खड़खड़ा और अन्तत: एक-डेढ़ किलोमीटर की पैदल यात्रा करके मैं गाँव पहुँचा तो मन्हर बाबा मकान के सामने, छप्पर के नीचे, तख्त पर अकेले बैठे थे। मैंने चबूतरे पर

चढ़कर उनके पैर छुए तो उन्होंने मुझे घूरकर देखा, तब बगल में रखा अपना चश्मा नाक पर चढ़ाया, लेकिन पहचाना फिर भी नहीं।

"कौन है? हमने पहचाना नहीं।'' उन्होंने कहा।

"मैं हूँ बसन्तू।'' मैंने उत्तर दिया।

वह तुरन्त उठकर खड़े हो गए और मुझे सीने से लगाकर देर तक मेरी पीठ सहलाते रहे, "आओ, आओ, बैठो।'' उन्होंने कहा।

मैं तख्त पर बैठ गया। बैठे-बैठे ही मैंने इधर-उधर निगाह दौड़ाई। मेरे ख्याल से घर में काफी भीड़-भाड़ होनी चाहिए थी, लेकिन नहीं बिलकुल सन्नाटा था।

"बहुत अफसोस हुआ मुझे।'' मैंने कहा, "क्या...हुआ क्या था दादी को?''

"बूढ़ी तो थी ही।'' बाबा ने कहा, "सभी तरह के मर्ज थे। एक हो तो कोई बताए।'' वह कुछ देर खामोश रहे, तब बोले, "तुम आ गए तो जी खुश हो गया। कहने को तो हुआ कि मेरा भी कोई है। तुम लोग तो गाँव को जैसे भूल ही गए।''

मैंने उनके ऊपर निगाह डाली। जिस कसरती बदन की छवि मेरे दिमाग में थी, वह पता नहीं कहाँ बिला गया था। उसकी जगह एक कृशकाय व्यक्ति बैठा था। पेट अन्दर धँसा हुआ, दुबला चेहरा जो सिर मुँड़ा होने के कारण कुछ और दुबला लग रहा था। पसलियाँ इस तरह उभरी हुई कि साफ गिनी जा सकें।

"खत मुझे देर से मिला,'' मैंने सफाई दी, "तेरहीं के दूसरे दिन।'' एक दिन मैंने अपनी तरफ से बढ़ा दिया, हालाँकि इसकी जरूरत नहीं थी।

उन्होंने मेरी बात पर गौर नहीं किया। उठकर अन्दर चले गए और थोड़ी ही देर में एक गिलास में पानी और कटोरी में नुक्ती के दो लड्डू लेकर लौट आए।

"लो।'' उन्होंने कटोरी तख्त पर रख दी। गिलास भी।

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उनसे क्या बात करूँ। तभी उन्होंने कहा, "घर में सब खैरियत तो है?''

"हाँ।'' मैंने उत्तर दिया।

"बच्चे कितने हैं, तुम्हारे?''

"तीन," मैंने कहा, "दो लड़के, एक लड़की।"

"बड़ा कौन है, लड़का कि लड़की?"

"लड़की," मैंने उत्तर दिया, "पिछले साल बी.ए. पास किया है।"

"और, लड़के क्या कर रहे हैं?"

"एक ने इस साल पी.एम.टी. में क्वालीफाई किया है। दूसरा अभी नाइन्थ में है।"

"पी.एम.टी. तो डॉक्टरी वाला इम्तहान हुआ न?"

"जी।"

"यह तो खुशी की बात है। खानदान में एक आदमी इस लायक तो हुआ।"

वह एक क्षण चुप रहे, तब बोले, "ऐसा करना कि सब बच्चों के नाम और पैदाइश की तारीख एक कागज पर लिखकर मुझे दे देना।"

"जी अच्छा।" मैंने कहा। एक बार मन में आया उनसे पूछूँ कि वह क्या करेंगे नाम और तारीख का, लेकिन फिर मैं चुप रह गया।

"अरे, तुमने तो कुछ खाया ही नहीं। लो न।" उन्होंने कहा और कटोरी मेरी ओर थोड़ा सरका दी।

मैंने एक लड्डू उठा लिया, "आप भी लीजिए न।" मैंने कहा।

"तुम खाओ।" उन्होंने कहा।

मैंने लड्डू तोड़कर एक टुकड़ा मुँह में रखा। बाकी हाथ में लिये रहा। गाँव का जो हुलिया मेरे दिमाग में नक्श था, वह बिलकुल बदल चुका था। सामने दो-तीन पक्की ईंटों के मकान नजर आ रहे थे, जिनमें से एक के सामने ट्रैक्टर खड़ा था। जहाँ खड़खड़ेवाले ने उतारा था, वहाँ से यहाँ तक आते हुए रास्ते में एक मकान के सामने जीप भी दिखी थी। दो-एक ट्यूबवेल भी नजर आए थे। जीपवाले मकान के दरवाजे पर बिजली का लट्टू भी लगा देखा था, हालाँकि बिजली यहाँ, बाबा के घर की तरफ, नहीं पहुँची थी।

लड्डू चुभलाते हुए मैंने एक बार घर के अन्दर की आहट लेने की कोशिश की, लेकिन मैं किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। "लल्लन लौट गए क्या?" मैंने अन्ततः पूछा।

"लल्लन आए ही कहाँ।'' उन्होंने कहा और फिर अन्दर चले गए।

इस बार उन्हें कुछ ज्यादा ही देर लगी तो मैं भी अन्दर चला गया। वह ओसारे में बैठे स्टोव जला रहे थे।

"अरे, यह क्या कर रहे हैं आप?'' मैंने उन्हें टोका।

"कुछ नहीं। तुम बैठो न।'' उन्होंने कहा और पीतल के एक भगोने में पानी भरकर स्टोव पर चढ़ा लिया। सम्भवत: चाय के लिए।

मैं वहीं खड़ा रहा तो वह उठकर मेरे लिए एक मचिया ले आए।

"लो बैठो।'' उन्होंने कहा।

मैं बैठ गया। घर की हालत से लग नहीं रहा था कि उनके अलावा और कोई वहाँ हो। क्या एक ही दिन में सब लोग लौट गए?

"लल्लन आए क्यों नहीं? खबर तो दी होगी आपने।'' मैंने पूछा।

"खबर क्यों नहीं दी। आदमी भेजकर केबुल करवाया। अब पता सही न हो तो मैं नहीं कह सकता।''

"पता क्या आपके पास नोट नहीं है?''

"मेरे पास जो पता है, वह काफी पुराना हो गया। हो सकता है कि इस बीच कहीं और चला गया हो।''

"पत्र कब से नहीं आया?''

"डेढ़-दो साल तो हो ही गए होंगे।''

मुझे आश्चर्य हआ।

"बीवी-बच्चे?'' मैंने पूछा।

"उसी के साथ हैं।''

"शादी कहाँ की?''

"वहीं किसी अंग्रेज लड़की से कर ली है। लिखा था जर्मनी की कहाँ की है। दो बच्चे हैं। एक लड़का, एक लड़की।''

"कभी आया नहीं बीवी-बच्चों को लेकर?''

वह हँसे। "यहाँ आएगा! गाँव में? अंग्रेज बीवी को लेकर?'' वह सहसा फिर गम्भीर हो गए। बोले, "दिल्ली आया था एक बार। किसी होटल में ठहरा था। बीवी भी साथ थी। वहाँ से मुझे चिट्ठी लिखी कि बड़ा व्यस्त प्रोग्राम है, यहाँ आकर मिल जाओ।''

"गए थे आप?''

"मेरा मन तो नहीं था जाने का, लेकिन तुम्हारी दादी जिद करने लगीं तो मैं चला गया।''

"दादी भी गई थीं?''

"लो। वह न जातीं भला? अपने जाने के लिए ही तो वह जिद पकड़े थीं।''

"कैसी लगी बहू आपको?''

"भेंट ही कहाँ हुई! वह तब तक कहीं और चला गया था।''

चाय का पानी खौल चुका था। उन्होंने उसमें चार्य की पत्ती, दूध, चीनी आदि डालकर एक बार फिर खौलाया, तब कपों में छानकर एक कप मेरी ओर बढ़ा दिया। दूसरा स्वयं ले लिया।

"और वह छोटा वाला, महेन्दर नाम है न उसका?''

"हाँ।''

"वह कहाँ है?''

"बम्बई में।''

"वह आया था?''

"कहाँ आया!''

"करता क्या है वहाँ?''

"कहता है फिल्मों में काम करता हूँ। कोई सीरियल बना रहा है कि उसमें काम कर रहा है, ठीक से पता नहीं मुझको।''

"वह क्यों नहीं आया?''

"लिखा है, शूटिंग चल रही है। आ नहीं सकता।''

मुझे कुछ अजीब-सा लगा। दो बेटे और दोनों ही माँ की अर्थी को कन्धा देने नहीं आए। चलो, कन्धा न सही। दसवाँ-तेरहीं में तो आते। लेकिन वह भी नहीं।

"बिट्टी बुआ आजकल कहाँ हैं? वह आई थीं?''

मन्हर बाबा के चेहरे पर कुछ अजीब तरह का भाव उभरा। जैसे अचानक बहुत उदास हो गए हों वह।

बिट्टी को मरे तो सालों हो गए।'' उन्होंने कहा।

मुझे धक्का सा लगा।

"बिट्टी बुआ नहीं रहीं! वह तो मुझसे मुश्किल से चार साल बड़ी रही होंगी। उन्हें क्या हुआ था?''

"राम जाने।'' उन्होंने एक ठंडी साँस ली, "ससुराल वालों ने बताया, खाना बनाते वक्त कपड़ों में आग लग गई। हम लोग पहुँचे, तब तक तो लाश भी ठिकाने लग चुकी थी।''

"बच्चे?''

"एक लड़की थी। तीन-चार साल की। कुछ दिनों बाद वह भी गुजर गई।''

मैं चुप रहा।

"और कोई नहीं आया?'' मैंने थोड़ी देर बाद पूछा।

"कौन आएगा? किसे फुर्सत है! और फिर गाँव की बात। शहर होता तो लोग एक-आध दिन की छुट्टी लेकर आ भी जाते। तुम आ गए, मेरे लिए यही बहुत है। तुम्हें देख लिया, जी जुड़ा गया।'' वह एक क्षण खामोश रहे, तब चाय के खाली कप उठाते हुए बोले, "कितने बरस बाद आए होगे तुम, कुछ शुमार है?''

"तीस-बत्तीस साल तो हो ही गए होंगे।'' मैंने कहा।

"तुम्हें याद तो होगा ही कि कितना भरा-पूरा घर था यह। बिट्टी के ब्याह पर तो तुम आए नहीं थे शायद। तुम्हारे वालिद भी तब तक गुजर चुके थे, लेकिन शंकर की छोटी लड़की की शादी की याद शायद तुम्हें हो, लेकिन उस वक्त तुम काफी छोटे रहे होगे।''

'शंकर' मेरे ताऊ का नाम था।

"पाँच-छह साल का था।'' मैंने कहा।

"तब तुम्हें क्या याद होगा!''

"याद क्यों नहीं। इसी घर में तो हलवाई बैठा था। आप ही के जिम्मे तो सारा प्रबंध था। मैं चोरी-चोरी आपके पास आकर मिठाई खा जाता था। रंडी आई थी बारात में। घंटों नाची थी दरवाजे पर। बाहर चौपाल में ही तो सब लोग सोते थे। बड़ी मुश्किल से अँटते थे।''

"शादी-ब्याह, तीज-त्योहार पर दोनों घर मिलाकर चालीस-पचास से कम आदमी नहीं जुटते थे। नौकर-चाकर अलग।'' वह जैसे पुरानी यादों में खो गए।

खामोशी कुछ अटपटी लगने लगी तो मैंने ही उसे भंग किया, "दूसरे घर में कोई रहता है?''

"कौन रहेगा?'' उन्होंने कहा, "भर्थरी थे तो फसल पर आते-जाते थे। तुम लोगों के हिस्से के सारे खेतों-बागों के वही तो अकेले मालिक थे। तुम्हारे पिता ने तो शुरू से ही इस तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। चाचा के बाल-बच्चे थे ही नहीं। सो, भर्थरी ही ताला डाले रहते थे मकान में, मगर मरने से पहले ही उन्होंने सारी खेती-बारी बेच दी थी। बगिया हम लोगों के साझे में थी, सो बची रह गई, लेकिन उनका लड़का आकर उसे भी बेच गया।''

"मकान अभी भी बन्द है?''

"मकान! मकान कहाँ रहा अब? सब खंडहर हो गया। भर्थरी का लड़का, क्या नाम है उसका? हाँ, धुन्नू। वह उसे भी बेचना चाहता था, मगर वह बिका नहीं। हाँ खिड़की, दरवाजे, धन्नी वगैरह बिक गईं। सो जिसने खरीदीं वह उखाड़ ले गया। तुम गाँव में दाखिल हुए होंगे तो शुरू में ही एक पक्का मकान दिखा होगा। बड़ा-सा हवेलीनुमा। गाँव के सरपंच हैं एक, यादव। उन्हीं का है। उन्होंने ही खरीदा था। तीन-चार इंच से कम मोटे पल्ले न रहे होंगे सदर दरवाजे के और चौखट तो मैं समझता हूँ आठ-नौ इंच मोटी रही होगी। फूल-पत्ती मोर-मुरैला सब खुदे थे उसमें। आध-आध किलो के तो पीतल के कड़े लगे रहे होंगे। कहीं बाहर से मँगवाए थे तुम्हारे बाबा ने। उन्होंने ही यह पल्ले लगवाए थे। उससे पहले खाली दर बना था। यादव सरपंच ने अपनी हवेली के सदर दरवाजे में वही पल्ले तो लगवाए हैं। रंग-रोगन होकर बिलकुल नए लगते हैं।''

फिर खामोशी। तभी मैंने पूछा, "एक दरवाजा था दोनों घरों के बीच?''

"हाँ, अभी भी है।'' वह उठकर खड़े हो गए और मुझे साथ लेकर बगलवाली दालान की ओर बढ़ गए।

जमीन में गड़ी हुई चक्की देखते ही मुझे याद आ गया, "यही दरवाजा है न?'' मैंने क्या।

"हाँ,'' उन्होंने साँकल हटाकर दरवाजा खोल दिया, "आओ।'' उन्होंने कहा तो मैं उनके पीछे-पीछे दरवाजे के पार निकल आया।

पूरा मकान खँडहर हो गया था। चौपाल की टूटी हुई दीवारें देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। लखौड़ी ईंट की, डेढ़ फिट से कम चौड़ी न रही होगी, तीन मेहराबों में से एक मेहराब अभी बची हुई थी। चिकनी मिट्टी के प्लास्टर के ऊपर उभरी हुई फूल-पत्तियों वाली डिजाइन भी साबुत थी। पूरे घर में बस यही दीवार अपनी टूटी-फूटी खस्ता हालत में इस बात की गवाही दे रही थी कि कभी यहाँ कोई मकान भी था, अन्यथा पूरा घर मिट्टी के ढूहों में तब्दील हो चुका था, जिस पर झाड़-झँखाड़ उग आया था। मवेशियों के चारा खाने के लिए बनी नाँदों में से भी एक काफी कुछ साबुत बची हुई थी। एक कुत्ता उसमें लेटा सो रहा था। हमें देखते ही वह दुम दबाकर भागा।

"घोड़ा भी तो यहीं-कहीं बाँधा जाता था।'' मैंने कहा तो मन्हर बाबा मुझे दूसरी ओर ले आए।

"यह जगह है।'' उन्होंने कहा।

मैंने देखा, वहाँ अब कुछ नहीं था, सिवाय लकड़ी की दो-एक थूनियों के, जिनमें घोड़े के पैर बाँधकर उसकी मालिश, खरहरा आदि किया जाता था। कुआँ भी अपनी जगह था। लखौड़ी ईंट की उसकी जगत भी अभी पूरी तरह टूटी नहीं थी। मैंने उसमें झाँककर देखा। खासा पानी था उसमें।

"कितना गहरा होगा यह?'' मैंने कहा।

"थाह थोड़े है कोई।'' बाबा ने कहा।

"पानी कैसा है?''

"पानी...ठीक ही है। बस पत्तियाँ-वत्तियाँ गिरकर सड़ती रहती हैं। कैसी भी चीज हो, इस्तेमाल न होने से खराब तो हो ही जाती है।''

रात उन्होंने अपने हाथ से खाना बनाया। मैंने बहुत कोशिश की उनकी मदद करने की,

लेकिन वह राजी नहीं हुए।

खाना खाकर हम देर तक बातें करते रहे। गाँव के अधिकांश बड़े-बुजुर्ग, जिनके बारे में मैं जानता था, अब तक मर-खप चुके थे। हाँ, मेरी उम्र के लोग अभी भी थे। उनमें से कुछ बहुत सम्पन्न थे।

"खेती में आजकल बड़ा पैसा है,'' मन्हर बाबा ने कहा, "बस मेहनत माँगती है खेती। सो पहले भी था, बल्कि पहले से अब कम ही मेहनत पड़ती है। हल-बैल का चक्कर अब रहा नहीं। उसकी जगह ट्रैक्टर हैं। उसी से जोताई-बोआई-कटाई सब काम हो जाता है। थ्रेशर है, ट्यूबवेल है। हर काम के लिए तो मशीन है। बस, देखने वाला एक आदमी चाहिए। पहले यह होता था कि चार जने घर में हैं तो दो बाहर नौकरी कर रहे हैं, दो घर में खेती-बारी सँभाल रहे हैं।'' वह एक क्षण रुके, तब बोले, "तुमको मालूम नहीं होगा, मैंने सन् सैंतीस में मोहान से उर्दू मिडिल पास करके कानपुर से हाईस्कूल किया था। उन दिनों हाईस्कूल नहीं कहा जाता था। 'इन्ट्रेन्स' कहा जाता था। कानपुर में ही करेन्सी में नौकरी भी लग गई थी मेरी, लेकिन इसी बीच खेती-बारी की वजह से सालभर बाद ही छोड़कर चला आया। दोनों घरों की शामिल खेती थी उन दिनों। तुम्हारे ताऊ से अकेले सँभाले नहीं सँभलती थी। तुम्हारे बाबा और वालिद बूढ़े हो रहे थे। तुम्हारे पिता और चाचा बाहर रहते थे। तभी तुम्हारे बाबा ने मेरे पिता से कहा तो उन्होंने मुझे वापस बुला लिया और मैं लगी-लगाई नौकरी पर लात मारकर चला आया।

"तब की बात और थी। तब आदमी अपने लिए नहीं जीता था, परिवार के लिए जीता था। घर का मुखिया इस तरह होता था जैसे बरगद का पेड़। लड़के, बच्चे, भाई-बन्द सब उसकी शाखें समझो। भले कहीं जाकर कोई अपनी जड़ें जमा ले, मूल वृक्ष से नाता नहीं टूटता था। आखिर उस जमाने में भी लोग बाहर जाते ही थे। तुम्हारे चाचा और पिता गए ही, लेकिन गाँव से नाता टूटा कहीं? सैकड़ों कोस चला जाए आदमी, मगर रहता था वहीं का जहाँ परिवार के बड़े-बुजुर्ग की ड्योढ़ी होती थी। लोग पूछते थे कहाँ के रहने वाले हो, तो आदमी शान से बताता था, फलाँ गाँव, फलाँ तहसील, फलाँ जिला है मेरा। तीज-त्योहार, शादी-ब्याह सब जमा होते थे। एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटते थे।

"आज क्या है? आँधी में पत्ता उड़ता है जैसे उस तरह लोग उड़े चले जा रहे हैं। पता नहीं कैसी अन्धी दौड़ है कि अपनी जड़ों को आदमी भूलता जा रहा है। पहले कहते थे कि लड़का बाप का नाम रोशन करेगा, लेकिन आज? नाम रोशन करने की कौन कहे, बाप के नाम की जरूरत ही नहीं रही! लल्लन वहाँ अमेरिका में रहते हैं तो कौन जानता होगा कि किसके लड़के हैं। और यहीं कौन जानता है कि इनका लड़का कहाँ है। आदमी आए जाए तभी तो लोग जानेंगे।''

वह फिर कुछ क्षणों के लिए रुके, तब बोले, "एक बम्बई में पड़े हैं। कहावत कही गई है, बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह। फिल्म बना रहे हैं वहाँ। गाँव में लोगों

को पता चला तो सबने मुझसे कहा कि लड़का फिल्म लाइन में चला गया है तो अब तो तुम्हारे ठाठ ही ठाठ होंगे। सो, हमने सोचा, लाओ एक बार जा के ठाठ देख आएँ।''

"आप गए थे बम्बई?''

"हाँ, गए थे ना, बड़ी मुश्किल से पता ढूँढ़े मिला। हम समझते थे, कोई बड़ा-सा बँगला होगा, लेकिन वहाँ थी एक कोठरिया। 'चाल' या जाने क्या कहते हैं उसे। यहाँ कोई उसमें घोड़ा, गधा भी न बाँधे। वहाँ उसमें तीन-तीन लोग रह रहे थे। रसोई-वसोई नदारद। बाहर ढाबे से चाय आ रही है। खाना भी बाहर से। मैंने यह हाल देखा तो कहा, चलो, घर लौट चलो, खेती-बारी में हाथ बँटाओ चलकर, तो बोले, संघर्ष कर रहा हूँ। मैंने कहा, करो भाई संघर्ष! अब बताओ, किसके लिए संघर्ष कर रहे हैं? देश के लिए? समाज के लिए? परिवार के लिए? कि अपने लिए? सो भाई, इस संघर्ष की क्या जरूरत पड़ गई तुमको? घर में खाने के लाले हैं क्या?''

"अब क्या हाल हैं? अब तो पाँव जमा लिए होंगे?''

"कौन जाने।'' उन्होंने ठंडी साँस ली।

"रुपया-उपया कभी भेजता है घर?''

"रुपया भेजता है? रुपया डुबो रहा है। आधी से ज्यादा खेती उनके इसी संघर्ष में बिला गई। जब देखो, तब फरमान आता रहता था, रुपया भेजो, रुपया भेजो। शुरू में मैं भेजता रहा, लेकिन कहाँ तक भेजता? सो, यहाँ आकर लड़ने लगे। अपना हिस्सा माँगने लगे। मुझको कानून पढ़ाने लगे कि बाबा की जायदाद में पोते का भी हक होता है। मैंने कहा, जितना हक तुम्हारा बनता हो, ले लो और जाओ। सो, मैंने उनके हिस्से की जमीन उनको दे दी। औने-पौने में बेचकर चले गए।'' वह एक क्षण रुके, तब बोले, "यह तड़क-भड़क वाली जिन्दगी का मोह पता नहीं आदमी को कहाँ पहुँचाएगा। मुझको क्या? एक चिन्ता थी कि कहीं पहले मर गया तो बूढ़ा क्या करेंगी। सो, बूढ़ा के जाने से वह चिन्ता थी मिट गई। अब मुझे अपने मरने की चिन्ता नहीं है। ज्यादा से ज्यादा यही तो होगा कि मरने के बाद लाश दो-चार दिन घर में पड़ी सड़ती रहेगी, लेकिन कब तक? मिट्टी गन्धाएगी तो अड़ोस-पड़ोसवाले ठिकाने लगाएँगे ही। और नहीं लगाएँगे तो क्या करना। मरने के बाद आदमी को चील-कौए खाएँ कि आग-पानी के हवाले किया जाए शरीर को क्या फर्क पड़ता है।'' वह फिर चुप हो गए, तब बोले, "सोओ अच्छा। तुम भी क्या सोच रहे होगे कि इतने दिनों बाद गाँव आए और यह अपना रोना लेकर बैठ गए।''

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। मुझे अच्छा लग रहा है।'' मैंने उन्हें आश्वस्त करना चाहा, लेकिन उन्होंने बात समाप्त कर दी।

पहली बस सुबह दस बजे जाती थी, मगर उन्होंने उससे जाने नहीं दिया। दूसरी बस अपराह्न चार बजे थी। उसी से लौटने की बात तय हुई।

सुबह चाय-नाश्ते के बाद वह मुझे गाँव घुमाने ले गए। इस उम्र से भी वह खासा चल-फिर लेते थे। लगभग सभी लोगों से वह मुझे मिला लाए। यादव सरपंच के घर भी ले गए। सभी से वह एक ही बात कहते, "मेरा पोता है। बसन्तू नाम है। बचपन तो यहीं गाँव में बीता है इसका। हाँ, देखा नहीं होगा तुमने? जरूर देखा होगा? सरकारी नौकरी में है। बहुत बड़ा अफसर लगा है।''

लोगों ने सम्मानपूर्वक बिठाया। चाय-पानी के लिए पूछा। जहाँ तक बन पड़ा, मैंने मना किया। कहीं-कहीं, जैसे सरपंच के वहाँ, बाबा ने भी कहा पी लो, तो मैंने पी ली। उसके यहाँ बैठे भी हम लोग अधिक देर। बाबा ने आँखों ही आँखों से इशारा करके वह चौखट और पल्ले भी दिखाए, जो धुन्नू सरपंच को बेच गए थे और अब उसके दरवाजे की शोभा थे।

वहाँ से लौटकर हमने भोजन किया। तब कुछ देर विश्राम करने के बाद मैं अपना थैला आदि सहेजने लगा। तभी मुझे अपने बच्चों के नाम और जन्मतिथि लिखकर बाबा को देने वाली बात याद आई तो मैंने उनसे कागज माँगा, "आपने कहा था बच्चों के नाम वगैरह लिखकर देने को।'' मैंने कहा।

"हाँ।'' वह कुछ सोचने से लगे। तब, बजाय कागज मुझे देने के अलमारी में रखे अपने बस्ते से डोरी में लिपटी लाल रंग की एक छोटी-सी बहीनुमा कॉपी निकालकर मेरी ओर बढ़ाते हुए बोले, "तुम्हीं इसे रख लो। मेरा क्या ठीक! पका आम हूँ। कब टपक पड़ँूँ, कौन जाने। इसी में लिखने के लिए मैंने कहा था।''

"क्या है यह?'' मैंने पूछा।

"शजरा है हमारे खानदान का। पाँच पीढ़ियों तक के लोगों का ब्यौरा नोट है इसमें।'' उन्होंने कहा और कॉपी खोलकर मुझे दिखाने लगे।

"उर्दू में है क्या यह?''

"हाँ,'' उन्होंने कहा। तब पूछा, "उर्दू नहीं जानते क्या तुम?''

"न।'' मैंने उत्तर दिया।

"तब तो...मेरा खत पढ़ने में भी बड़ी दिक्कत पड़ी होगी तुमको।''

"मेरा एक सहयोगी है, उससे पढ़ा लिया था।''

वह कुछ असमंजस में पड़ गए।

"दीजिए न। किसी से पढ़वाकर इसकी नकल तैयार करवा लूँगा मैं।'' मैंने कहा।

वह उसकी डोरी लपेटने लगे। तभी मैंने पूछा, "मेरा नाम भी है क्या इसमें?''

"क्यों नहीं होगा? तुम खानदान के बाहर हो क्या? हाँ, तुम्हारे बच्चों का नाम नहीं है, सो तुम लिख लेना।'' और वह मेरे नामवाला पृष्ठ निकालकर मुझे दिखाने लगे।

"यह ब्रैकेट में तारीखें कैसी हैं?'' मैंने पूछा।

"जन्म और मृत्यु की होंगी।''

"बाबू की भी होंगी।'' बाबू मैं अपने पिता को कहता था।

"होंगी न।'' उन्होंने कहा और मेरे नाम के ठीक ऊपर लिखे मेरे पिता के नाम के आगे ब्रैकेट में लिखी तिथियों की ओर इशारा करते हुए बोले, "यह है न?''

मुझे आश्चर्य हुआ। मेरे अपने पास यह तारीखें नहीं थीं। जन्म की तो मुझे मालूम ही नहीं थी। मृत्यु की तारीख जरूर मैंने किसी डायरी में नोट करके रखी थी, लेकिन वह भी कब की खो चुकी थी।

मुझे रात कही गई उनकी बरगद वाली बात याद आई। वास्तव में पुराने जमाने में आदमी की जड़ें हुआ करती थीं। एक लगाव होता था अपने घर-परिवार से। आज तो बस एक अन्धी दौड़ है। स्थायित्व कहाँ है?

मैंने कॉपी अपने थैले में रख ली। झुककर उनके पाँव छुए तो उन्होंने अपना हाथ मेरे सिर पर रख दिया।

काफी दूर तक वह मुझे छोड़ने आए। आखिर मैंने बहुत कहा, तभी वह एक स्थान पर रुक गए। मैंने दोबारा उनके पैर छुए और कच्चे गलियारे पर आगे बढ़ गया।

कुछ दूर जाकर मैंने पीछे मुड़कर देखा। वह अभी भी कमर पर हाथ रखे, अपने स्थान पर खड़े मेरी ओर देख रहे थे।

अकेली

मन्नू भंडारी

सोमा बुआ बुढ़िया हैं।

सोमा बुआ परित्यक्ता हैं।

सोमा बुआ अकेली हैं।

सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी अपनी जवानी चली गई। पति को पुत्र-वियोग का ऐसा सदमा लगा कि वे पत्नी, घर-बार तजकर तीरथवासी हुए और परिवार में कोई ऐसा सदस्य नहीं था जो उनके एकाकीपन को दूर करता। पिछले बीस वर्षों से उनके जीवन की इस एकरसता में किसी प्रकार का कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे, पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आँखें नहीं बिछाईं। जब तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छन्द धारा को कुंठित कर देता। उस समय उनका घूमना-फिरना, मिलना-जुलना बन्द हो जाता और संन्यासीजी महाराज से यह भी नहीं होता कि दो मीठे बोल-बोलकर सोमा बुआ को एक ऐसा सम्बल ही पकड़ा दें, जिसका आसरा लेकर वह उनके वियोग के ग्यारह महीने काट दें। इस स्थिति

में बुआ को अपनी जिन्दगी पास-पड़ोसवालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जातीं और फिर छाती फाड़कर काम करतीं, मानो वे दूसरे के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हों।

आजकल सोमा बुआ के पति आए हुए हैं और अभी-अभी कुछ कहा-सुनी होकर चुकी है। बुआ आँगन में बैठी धूप खा रही हैं, पास रखी कटोरी से तेल लेकर हाथों में मल रही हैं और बड़बड़ा रही हैं। इस एक महीने में अन्य अवयवों के शिथिल हो जाने के कारण उनकी जीभ ही सबसे अधिक सजीव और सक्रिय हो उठती है। तभी हाथ में एक फटी साड़ी और पापड़ लेकर ऊपर से राधा भाभी उतरीं।

"क्या हो गया बुआ, क्यों बड़बड़ा रही हो? फिर संन्यासीजी महाराज ने कुछ कह दिया क्या?''

"अरे, मैं कहीं चली जाऊँ सो ही इन्हें नहीं सुहाता। कल चौकवाले किशोरीलाल के बेटे का मुंडन था, सारी बिरादरी का न्यौता था। मैं तो जानती थी कि ये पैसे का गरूर है कि मुंडन पर सारी बिरादरी को न्यौता है, पर काम उन नई-नवेली बहुओं से सँभलेगा नहीं, सो जल्दी ही चली गई। हुआ भी वही।'' और सरककर बुआ ने राधा के हाथ से पापड़ लेकर सुखाने शुरू कर दिए। "एक काम गत से नहीं हो रहा था। अब घर में कोई बड़ा-बूढ़ा हो तो बतावे, या कभी किया हो तो जानें। गीतवाली औरतें मुंडन पर बन्ना-बन्नी गा रही थीं, मेरा तो हँसते-हँसते पेट फूल गया।'' और उसकी याद से ही कुछ देर पहले का दुख और आक्रोश धुल गया। अपने सहज स्वाभाविक रूप में वे कहने लगीं, "भट्टी पर देखो तो अजब तमाशा–समोसे कच्चे ही उतार दिए और इतने बना दिए कि दो बार खिला दो और गुलाब जामुन इतने कम कि एक पंगत में भी पूरे न पड़ें। उसी समय खोया मँगाकर नए गुलाब जामुन बनाए। दोनों बहुएँ और किशोरीलाल तो बेचारे इतना जस मान रहे थे कि क्या बताऊँ? कहने लगे, 'अम्मा! तुम न होतीं तो आज भद्द उड़ जाती। अम्मा! तुमने लाज रख ली!' मैंने तो कह दिया कि अरे, अपने ही काम नहीं आवेंगे तो कोई बाहर से तो आवेगा नहीं। यह तो आजकल इनका रोटी-पानी का काम रहता है, नहीं तो मैं सवेरे से ही चली जाती!''

"तो संन्यासी महाराज क्यों बिगड़ पड़े? उन्हें तुम्हारा आना-जाना अच्छा नहीं लगता बुआ!''

"यों तो मैं कहीं आऊँ-जाऊँ सो ही इन्हें नहीं सुहाता, और फिर कल किशोरी के यहाँ से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूँ कि घरवालों का कैसा बुलावा? वे लोग तो मुझे अपनी माँ से कम नहीं समझते, नहीं तो कौन भला यों भट्टी और भंडार घर सौंप दे? पर उन्हें अब कौन समझावे। कहने लगे, तू जबर्दस्ती दूसरों के घर में टाँग अड़ाती फिरती है।'' और एकाएक उन्हें उस क्रोध-भरी वाणी और कटुवचनों का स्मरण हो आया, जिनकी बौछार कुछ देर पहले ही उन पर होकर चुकी थी। याद आते ही फिर उनके आँसू बह चले।

"अरे, रोती क्या हो बुआ? कहना-सुनना तो चलता ही रहता है। संन्यासीजी महाराज एक महीने को तो आकर रहते हैं, सुन लिया करो, और क्या?''

"सुनने को तो सुनती ही हूँ, पर मन तो दुखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं, सो तू ही बता राधा, ये तो साल में ग्यारह महीने हरिद्वार रहते हैं। इन्हें तो नाते-रिश्तेवालों से कुछ लेना-देना नहीं पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं भी सबसे तोड़ताड़ कर बैठ जाऊँ तो कैसे चले, मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अन्त समय में भी साथ रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ तो वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता...'' और बुआ फूट-फूटकर रो पड़ीं।

राधा ने आश्वासन देते हुए कहा–"रोओ नहीं बुआ, अरे वे तो इसलिए नाराज हुए कि बिना बुलाए तुम चली गईं।''

"बेचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गए तो मैं भी मान करके बैठ जाती? फिर घरवालों का कैसा बुलाना? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ। कोई प्रेम नहीं रखे तो दस बुलावे पर नहीं जाऊँ और प्रेम रखे तो बिना बुलाए भी सिर के बल जाऊँ। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता तो क्या मैं बुलावे के भरोसे बैठी रहती? मेरे लिए जैसा हरखू वैसा किशोरीलाल! आज हरखू नहीं है, इसी से दूसरों को देख-देखकर मन भरमाती रहती हूँ!'' और वे हिचकियाँ लेने लगीं।

सूखे पापड़ों को बटोरते-बटोरते स्वर को भरसक कोमल बनाकर राधा ने कहा, "तुम भी बुआ बात को कहाँ-से-कहाँ ले गईं! लो, अब चुप भी होओ, पापड़ भूनकर लाती हूँ, खाकर बताना, कैसा है?'' और वह साड़ी समेटकर ऊपर चढ़ गई।

कोई सप्ताह-भर बाद बुआ बड़े प्रसन्न मन से आईं और संन्यासीजी से बोली, "सुनते हो, देवरजी के ससुरालवालों की किसी लड़की का सम्बन्ध भागीरथजी के यहाँ हुआ है। वे सब लोग यहीं आकर ब्याह कर रहे हैं। देवरजी के बाद तो उन लोगों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा, फिर भी हैं तो समधी ही। वे तो तुमको भी बुलाए बिना नहीं मानेंगे। समधी को आखिर कैसे छोड़ सकते हैं?'' और बुआ पुलकित होकर हँस पड़ीं। संन्यासीजी की मौन उपेक्षा से उनके मन को ठेस तो पहुँची, फिर भी वे प्रसन्न थीं। इधर-उधर जाकर वे इस विवाह की प्रगति की खबरें लातीं! आखिर एक दिन वे यह भी सुन आईं कि उनके समधी यहाँ आ गए। जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही हैं। सारी बिरादरी को दावत दी जाएगी–खूब रौनक होनेवाली है। दोनों ही पैसेवाले ठहरे।

"क्या जाने हमारे घर तो बुलावा आएगा या नहीं? देवरजी को मरे पच्चीस बरस हो गए, उसके बाद से तो कोई सम्बन्ध ही नहीं रखा। रखे भी कौन? यह काम तो मरदों का होता है,

मैं तो मर्दवाली होकर भी बेमर्द की हूँ।'' और एक ठंडी साँस उनके दिल से निकल गई।

"अरे, वाह बुआ! तुम्हारा नाम कैसे नहीं हो सकता। तुम तो समधिन ठहरीं। सम्बन्ध में न रहे, कोई रिश्ता थोड़े ही टूट जाता है!'' दाल पीसती हुई घर की बड़ी बहू बोली।

"है, बुआ, नाम है। मैं तो सारी लिस्ट देखकर आई हूँ।'' विधवा ननद बोली। बैठे-ही-बैठे एकदम आगे सरककर बुआ ने बड़े उत्साह से पूछा–"तू अपनी आँखों से देखकर आई है नाम? नाम तो होना ही चाहिए। पर मैंने सोचा कि क्या जाने, आजकल के फैशन में पुराने सम्बन्धियों को बुलाना हो, न हो।'' और बुआ बिना दो पल भी रुके वहाँ से चल पड़ीं। अपने घर जाकर सीधे राधा भाभी के कमरे में चढ़ीं–"क्यों री राधा, तू तो जानती है कि नए फैशन में लड़की की शादी में क्या दिया जावे है? समधियों का मामला ठहरा, सो भी पैसेवाले। खाली हाथ जाऊँगी तो अच्छा नहीं लगेगा। मैं तो पुराने जमाने की ठहरी, तू ही बता दे, क्या दूँ? अब कुछ बनाने का समय तो रहा नहीं, दो दिन बाकी हैं, सो कुछ बना-बनाया ही खरीद लाना।''

"क्या देना चाहती हो अम्मा–जेवर, कपड़ा, शृंगारदान या कोई और चाँदी की चीजें?''

"मैं तो कुछ भी नहीं समझूँ री। जो कुछ पास है, तुझे लाकर दे देती हूँ, जो तू ठीक समझे ले आना। बस, भद्द नहीं उड़नी चाहिए! अच्छा, देखूँ पहले कि रुपए कितने हैं?'' और वे डगमगाते कदमों से नीचे आईं। दो-तीन कपड़ों की गठरियाँ हटाकर एक छोटा-सा बक्स निकाला। उसका ताला खोला। इधर-उधर करके एक छोटी-सी डिबिया निकाली। बड़े जतन से उसे खोला–उसमें सात रुपए, कुछ रेजगारी पड़ी थी और एक अँगूठी। बुआ का अनुमान था कि रुपए कुछ ज्यादा होंगे, पर जब सात ही रुपए निकले तो सोच में पड़ गईं। रईस समधियों के घर में इतने से रुपयों से तो बिन्दी भी नहीं लगेगी। उनकी नजर अँगूठी पर गई। यह उनके मृत-पुत्र की एकमात्र निशानी उनके पास रह गई थी। बड़े-बड़े आर्थिक संकटों के समय भी वे उस अँगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थीं। आज भी एक बार उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया, फिर भी उन्होंने पाँच रुपए और एक अँगूठी आँचल में बाँध ली। बक्स को बन्द किया और फिर ऊपर को चलीं, पर इस बार उनके मन का उत्साह कुछ ठंडा पड़ गया था और पैरों की गति शिथिल! राधा के पास जाकर बोलीं–"रुपए तो नहीं निकले बहू। आएँ भी कहाँ से, मेरे कौन कमानेवाला बैठा है। उस कोठरी का किराया आता है, उसमें तो दो समय की रोटी निकल जाती है जैसे-तैसे!'' और वे रो पड़ीं। राधा ने कहा, "क्या करूँ बुआ, आजकल मेरा भी हाथ तंग है, नहीं तो मैं ही दे देती। अरे, पर तुम देने के चक्कर में पड़ती ही क्यों हो? आजकल तो देने-लेने का रिवाज ही उठ गया।''

"नहीं रे राधा! समधियों का मामला ठहरा! पच्चीस बरस हो गए तो भी वे नहीं भूले, और मैं खाली हाथ जाऊँ? नहीं-नहीं, इससे तो न जाऊँ सो ही अच्छा!''

"तो जाओ ही मत। चलो छुट्टी हुई, इतने लोगों में किसे पता लगेगा कि आईं या नहीं।''

राधा ने सारी समस्या का सीधा-सा हल बताते हुए कहा।

"बड़ा बुरा मानेंगे। सारे शहर के लोग जावेंगे और मैं समधिन होकर नहीं जाऊँगी तो यही समझेंगे कि देवरजी मरे तो सम्बन्ध भी तोड़ लिया। नहीं नहीं, तू यह अँगूठी बेच ही दे।" और उन्होंने आँचल की गाँठ खोलकर एक पुराने जमाने की अँगूठी राधा के हाथ पर रख दी। फिर बड़ी मिन्नत के स्वर में बोलीं, "तू तो बाजार जाती है राधा, इसे बेच देना और जो कुछ ठीक समझे खरीद लेना। बस, शोभा रह जावे इतना खयाल रखना।"

गली में बुआ ने चूड़ीवाले की आवाज सुनी तो एकाएक ही उनकी नजर अपने हाथ की भद्दी-मटमैली चूड़ियों पर जाकर टिक गई। कल समधियों के यहाँ जाना है, जेवर नहीं तो कम-से-कम काँच की चूड़ी तो अच्छी पहन ले। पर एक अत्यन्त लाज ने उनके कदमों को रोक दिया। कोई देख लेगा तो? लेकिन दूसरे क्षण ही अपनी इस कमजोरी पर विजय पाती-सी वे पीछे के दरवाजे पर पहुँच गईं और एक रुपया कलदार खर्च करके लाल-हरी चूड़ियों के बन्द पहन लिए। पर सारे दिन हाथों को साड़ी के आँचल से ढके-ढके फिरीं।

शाम को राधा भाभी ने बुआ को चाँदी की एक सिन्दूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज का कपड़ा लाकर दे दिया। सबकुछ देख पाकर बुआ बड़ी प्रसन्न हुईं और यह सोच-सोचकर कि जब वे ये सब दे देंगी तो उनकी समधिन पुरानी बातों की दुहाई दे-देकर उनकी मिलनसारिता की कितनी प्रशंसा करेगी, उनका मन पुलकित होने लगा। अँगूठी बेचने का गम भी जाता रहा। पासवाले बनिए के यहाँ से एक आने का पीला रंग लाकर रात में उन्होंने साड़ी रँगी। शादी में सफेद साड़ी पहनकर जाना क्या अच्छा लगेगा? रात में सोईं तो मन कल की ओर दौड़ रहा था।

दूसरे दिन नौ बजते-बजते खाने का काम समाप्त कर डाला। अपनी रँगी हुई साड़ी देखी तो कुछ जँची नहीं। फिर ऊपर राधा के पास पहुँची, "क्यों राधा, तू तो रँगी साड़ी पहनती है तो बड़ी आब रहती है, चमक रहती है, इसमें तो चमक आई नहीं?"

"तुमने कलफ जो नहीं लगाया अम्मा, थोड़ा-सा माँड़ दे देतीं तो अच्छा रहता। अभी दे लो, ठीक हो जाएगी। बुलावा कब का है?"

"अरे, नए फैशनवालों की मत पूछो, ऐन मौकों पर बुलावा आता है। पाँच बजे का मुहूरत है, दिन में कभी भी आ जावेगा।"

राधा भाभी मन-ही-मन मुस्कुरा उठी।

बुआ ने साड़ी में माँड लगाकर सुखा दिया। फिर एक नई थाली निकाली, अपनी जवानी के दिनों में बुना हुआ क्रोशिए का एक छोटा-सा मेजपोश निकाला। थाली में साड़ी, सिन्दूरदानी, एक नारियल और थोड़े-से बताशे सजाए, फिर जाकर राधा को दिखाया।

संन्यासी महाराज सवेरे से इस आयोजन को देख रहे थे और उन्होंने कल से लेकर आज तक कोई पच्चीस बार चेतावनी दे दी थी कि यदि कोई बुलाने न आए तो चली मत जाना, नहीं तो ठीक नहीं होगा। हर बार बुआ ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा, "मुझे क्या बावली ही समझ रखा है जो बिना बुलाए चली जाऊँगी? अरे वह पड़ोसवालों की नन्दा अपनी आँखों से बुलावे की लिस्ट में नाम देखकर आई है। और बुलाएँगे क्यों नहीं? शहरवालों को बुलाएँगे और समधियों को नहीं बुलाएँगे क्या?''

तीन बजे के करीब बुआ को अनमने भाव से छत पर इधर-उधर घूमते देख राधा भाभी ने आवाज लगाई–"गईं नहीं बुआ?''

एकाएक चौंकते हुए बुआ ने पूछा–"कितने बज गए राधा?...क्या कहा, तीन? सरदी में तो दिन का पता ही नहीं लगता है। बजे तीन ही हैं और धूप सारी छत पर से ऐसे सिमट गई मानो शाम हो गई हो।'' फिर एकाएक जैसे खयाल आया कि यह तो भाभी के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ तो जरा ठंडे स्वर में बोलीं, "मुहूरत तो पाँच बजे का है, जाऊँगी तो चार तक जाऊँगी, अभी तो तीन ही बजे हैं।'' बड़ी सावधानी से उन्होंने स्वर में लापरवाही का पुट दिया! बुआ छत पर से गली में नजर फैलाए खड़ी थीं, उनके पीछे ही रस्सी पर धोती फैली हुई थी, जिसमें कलफ लगा था और अबरक छिड़का हुआ था। अबरक के बिखरे हुए कण रह-रहकर धूप में चमक जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे किसी को भी गली में घुसता देख बुआ का चेहरा चमक उठता था।

सात बजे के धुँधलके में राधा ने ऊपर से देखा तो छत की दीवार से सटी, गली की ओर मँुह किए एक छाया-मूर्ति दिखाई दी। उसका मन भर आया। बिना कुछ पूछे इतना ही कहा, "बुआ! सर्दी में खड़ी-खड़ी यहाँ क्या कर रही हो? आज खाना नहीं बनेगा क्या, सात तो बज गए।''

जैसे एकाएक नींद में से जागते हुए बुआ ने पूछा, "क्या कहा, सात बज गए।'' फिर जैसे अपने से ही बोलते हुए पूछा, "पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पाँच बजे का था।'' और फिर एकाएक ही सारी स्थिति को समझते हुए, स्वर को भरसक संयत बनाकर बोलीं, "अरे, खाने का क्या है अभी बना लूँगी। दो जनों का तो खाना है, क्या खाना और क्या पकाना।''

फिर उन्होंने सूखी साड़ी को उतारा। नीचे जाकर अच्छी तरह उसकी तह की, धीरे-धीरे हाथों से चूड़ियाँ खोलीं, थाली में सजाया हुआ सारा सामान उठाया और सारी चीजें बड़े जतन से अपने एकमात्र सन्दूक में रख दीं।

और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अँगीठी जलाने लगीं।

ज्वार

संजीव

माँ बताती थीं कि हम फरीदपुर के 'सोनारदीघी' गाँव से आए हैं, जो अब पाकिस्तान में है। सन् 71 में 'बांग्लादेश' बन जाने के बाद भी वे इसे 'पाकिस्तान' ही कहती रहीं। उस पार से आए कई बंगाली 'ओ पार बांगला, ए पार बांगला' (उस पार का बंगाल, इस पार का बंगाल) कहकर दोनों को जोड़े रहते, माँ ही ऐसा न कर सकीं। जाने कौन-सी ग्रंथि थी! ऐसा भी नहीं कि 'उस पार' के लिए उन्होंने अपने खिड़की-दरवाजे पूरी तरह से बंद कर लिए थे। 'इस पार' आ जाने के बाद भी काफी दिनों तक उनकी जड़ें तड़पती रहीं वहाँ के खाद-पानी के लिए–वे लहलहाते धान के खेत, नारियल के लम्बे-ऊँचे पेड़, आम-जामुन के स्वाद, चौड़ी-चौड़ी हिलकोरें लेती नदियाँ, नदियों के पालने में झूलती नावें, रात में नावों से उड़-उड़ कर आते भटियाली गीत–

मॅन माझी तोर बइठाले रे,

आमी आर बाइते पारलॉम ना;

बाइते बाइते जीवॅन गेलो,

कूलेर देखा पाइलाम ना।

(हे मन के माझी, अपनी डाँड़ सँभालो, मुझसे अब और नहीं खेया जाता। खेते-खेते जीवन बीता, लेकिन कहीं किनारा नहीं दिखा...।)

छुलक-छुलक पानी की आवाज मानो ताल देती और गीत की टेर दिगंत तक फैलती जाती!

माँ अक्सर उन 'टोंगा' (मचानों) का जिक्र करतीं, जिन पर पानी से बचने के लिए पूरा परिवार बैठा होता। आम-जामुन के साथ-साथ कभी-कभी 'सिलेट करवे' के कमला नीबू की याद करतीं जिनके सामने दार्जिलिंग और नागपुर के संतरे उन्हें फीके लगते। मछलियाँ तो मछलियाँ, कच्चू डाँटा (अरबी की डंठल), मोचाई (केले के फूल), ओल (सूरन) की ऐसी उम्दा सब्जी बनातीं कि हमें पूछना पड़ता, "माँ तुमने इतनी बढ़िया तरकारी बनाना कहाँ से सीखा?''

"वहीं से, वहाँ की औरतों के बारे में कहावत है कि जूते का तलवा भी राँध दें तो खाने वाले उँगलियाँ चाटते रह जाएँ।''

"सारा कुछ अच्छा ही अच्छा था तो आप लोग चले क्यों आए वहाँ से?'' हम पूछते। माँ हर बार इस प्रश्न पर मौन साध लेतीं–

मैं कभी इसके पहले 'सोनारदीघी' आई नहीं लेकिन माँ ने इतनी बार इन चीजों का जिक्र किया था कि मन के किसी अन्त:पुर में एक सोनारदीघी बस गया है जहाँ सुविधानुसार मैं कभी नारियल, सुपारी के पेड़ों को एक ओर कर देती कभी दूसरी ओर। कभी नदी को बगल में ले आती, कभी दूर कर देती। कभी सारा परिवेश ही कच्चू के बड़े-बड़े पत्तों से भर जाता, और कभी आम-जामुन के पेड़ों से...। आज सोनारदीघी आते हुए मेरे कल्पना-लोक में बार-बार खलल पड़ रहा है। नदी भी है, पेड़-पल्लव भी हैं, मगर कुछ अलग-से। लुंगियाँ पहने पुरुष, धोती एक भी नहीं। अलबत्ता औरतें साड़ी में ही हैं। वह स्कूल जो अभी भी है, मगर पक्का बन गया है–माँ ने यहीं ककहरा सीखा होगा। दूसरा स्कूल भी तो हो सकता है? ज्यादा टोक-टाक ठीक नहीं।

सन् 47 में पार्टीशन के समय सिर्फ माँ, नानी और नाना ही बॉर्डर पार कर पाए थे। दंगाइयों ने मझली मौसी का अपहरण कर लिया था, एक मामा मार डाले गए थे, बाकी छोटी मौसी और बड़के मामा वगैरह जैसे-तैसे जान बचाकर लौट गए थे सोनारदीघी। स्थिति सामान्य होने पर वे मिलने आए। तब तक हम बर्द्धमान में बस गए थे। मेरा जन्म बांग्लादेश बन जाने के बाद हुआ था। पाँच साल की हुई तभी अणिमा दी को देखा था। छोटकी मौसी अपनी इस सात साल की बेटी को लेकर अपने इस परिवार से मिलने आई थीं। आज अणिमा दी को छोड़कर उस परिवार में कोई नहीं बचा। वे अपनी ससुराल से वापस सोनारदीघी आ गई थीं। पत्रों से इतना भर ही मालूम हुआ था। ये भी दस साल पहले की बातें। अब तो सालों से पत्रों का सिलसिला भी टूटा हुआ है।

क्या पता, कितने हिन्दू बचे हैं यहाँ। सुना था, बाबरी मस्जिद तोड़े जाने के बाद बहुत से मंदिर तोड़ डाले गए थे। अभी तक इस रास्ते में एक भी मंदिर नहीं मिला। खालिदा जिया के शासनकाल में मौलवाद फिर से लौट आया है। कैसे रहती होंगी अणिमा दी?

क्या खूब विडम्बना है? हमें भी यहाँ पश्चिम बंगाल में 'ईस्ट बंगाल' का माना जाता है–'बंगाल।' मोहन बागान और ईस्ट बंगाल की फुटबाल प्रतियोगिता में 'घोटी-बॉटी' (कलश-कटोरे) या 'ईस्ट-वेस्ट' का फर्क पूरी तरह से प्रेसीपिटेट कर जाता है। लोग हमारी जाति तक पर शक करते हैं। बेचारी अणिमा दी अपनी ही जन्म-भूमि, अपने ही वतन में विजातियों, विधर्मियों के बीच निर्वासन भोगने को अभिशप्त हैं। हम इत्ता-सा बर्दाश्त नहीं कर पाते, 'बंगाल' कहते ही तिलमिला उठते हैं। कैसे सहती होगी दीदी इसे आठों पहर?

मैं एक मुहाजिब जैनुल को जानती हूँ, उसका बाप बिहार से बांग्लादेश गया था, जो तब पूर्वी पाकिस्तान हुआ करता था। मुक्ति संग्राम के बाद फिर उसे भागकर पश्चिमी पाकिस्तान जाना पड़ा। उनकी वफादारी पर भारत में भी शक किया गया, बांग्लादेश में भी और पाकिस्तान में भी...! उसने धर्म को एक मुकम्मिल और भरोसेमंद आइडेंटिटी एवं सुरक्षा कवच समझा, पर ऐसा हो नहीं पाया। इन्सानी मसले सियासत और मजहब वाले तय करते हैं, वही तय करते हैं हमारी तकदीरें...हमसे पूछा तक नहीं जाता। इथियोपिया, सोमालिया, तुर्की, मध्य एशिया, कैरेबियन कंट्रीज–कहाँ नहीं! यहाँ भी तो वही...! समाजशास्त्री कहेंगे, सभ्यताओं और संस्कृतियों का यह एक सामान्य-सा अन्त:प्रवाह है। मगर आबादियों के इस विस्थापन में हुई बर्बादियों की दास्तान कौन सुनना चाहेगा? एक बार जब टूटता है तो कितना कुछ टूट और छूट जाता है! जुड़ता क्या है...गाँठ पर पनपा जीवन का नया अध्याय! ओह! इस मनहूस जैनुल की याद भी अभी ही आनी थी! मेरे साथ का पुलिस का जवान सुहेल साइकिल पर चल रहा था और मैं रिक्शे पर थी। गाँव में प्रवेश करते ही एक चाले (झोंपड़ी) में चाय की दुकान पर कुछ लोग अड्डा जमाए हुए थे। मैंने पूछा, "दा, एई ग्रामे नीहार सिंघॅ थाहेन कुथाय?'' (भाई, इस गाँव में नीहार सिंह कहाँ रहते हैं?)

जवाब में कई सवालिया आँखें मुझ पर उठ गईं। मुझसे क्या भूल हुई? अपने तईं तो मैंने पूरी सावधानी बरत रखी थी। जीन्स छोड़ कर साड़ी पहन रखी थी मैंने, भाषा भी...न न, भूल हुई 'एई' की जगह 'हेई' कहना चाहिए था। मैं कट कर रह गई पर अब तो जो होना था, हो चुका। अड्डे वालों में आपस में कानाफूसी हुई, फिर एक साँवला-सा प्रौढ़ बोला, "की नाम कोइलेन, नीहार सींघॅ?'' (क्या नाम बोलीं, नीहार सिंह?)

"आज्ञें हैं।''

(जी हाँ।)

"नीहार सिंघा बोइल्ला काऊ रे तो जानी ना...।''

(नीहार नाम के किसी आदमी को तो जानता नहीं।)

"सिंघॅ सोब पलाई गेछे।'' (सारे सिंह भाग गए हैं।) एक सम्मिलित ठहाके का श्लेष मुझे तेजाब-सा भिगो गया।

"आपनार बाड़ी कुथाय?'' (आपका घर कहाँ है?)

चुगली खाती मेरी भाषा विश्वसनीय नहीं थी, सो अब मुझे आंचलिक भाषा का दामन छोड़कर सीधे मानक बांग्ला पर उतरना पड़ा। मैंने बांग्ला में बताया, "मैं बर्द्धमान, पश्चिम बंगाल से आई हूँ। बँटवारे के समय यहीं से गए थे हमारे पूर्वज। कभी इस गाँव में एक उज्ज्वल सिंह हुआ करते थे। मैं उन्हीं की नातिन हूँ। नीहार सिंह मेरे मौसेरे बहनोई हुए और अणिमा दी मौसेरी बहन। इधर आई थी तो सोचा अपना पुश्तैनी घर देख लूँ और परिवार के लोगों से मिलती चलूँ।''

अब गाँव के कुछ और लोग भी जुटने लगे थे। वे आपस में बतियाकर मुझे घूर रहे थे। उनकी नजरों में मैं संदिग्ध थी या निषिद्ध।

उस प्रौढ़ ने एक किशोर को पुकारा, "ताहिर! जरा इन्हें सलाहुद्दीन शेख के घर पहुँचा आओ तो!''

सलाहुद्दीन शेख! यह क्या बात हुई। मुझे अपनी पसलियों में एक मनहूस किस्म के खौफ की चुभन महसूस हुई।

कच्ची सड़क पर एक मध्ययुगीन बैलगाड़ी चली आ रही थी। बारिश से बचने के लिए उस पर बाँस की चटाई का चंदोवा तना था। कुछ लड़के क्रिकेट खेल रहे थे। दूर-दूर पर वही पुआल के छप्पर वाले घर, कहीं-कहीं दो मंजिलें भी और टीन की छत भी। जहाँ-तहाँ केले के स्तम्भ थे, कहीं-कहीं बँसवारियाँ भी। सड़क के दोनों ओर नारियल के पेड़ थे, कुछ साबुत, कुछ टूटे हुए या ठूँठ। शायद बार-बार की आने वाली झड़-झंझा (तूफान) का प्रकोप था। खेतों में इस मौसम में उपजने वाली अन्न की बालियाँ लहरा रही थीं, कहीं-कहीं झींगा (तरोई) और दूसरी सब्जियाँ भी। थाने का सिपाही अपनी साइकिल घसीटते हुए ताहिर से बात कर रहा था। भाषा कहीं-कहीं अबूझ हो जाती। इतना भर पता चला कि वह यहाँ मजूरी करने आया है। आज काम नहीं मिला, सो बेकार है। पता नहीं, कब तक काम मिलेगा। माँ-बाप कौन थे, कहाँ का मूल निवासी है, उसे कुछ पता नहीं।

मुझे ढाका और दूसरे शहरों के हजारों लावारिस बच्चों के बारे में बताया गया था कि उनमें से अधिसंख्य वे बच्चे थे जो बांग्लादेश युद्ध के दौरान बाहरी फौजियों के बलात्कार से जन्मे थे। उन अभागों को किसी ने नहीं अपनाया, अपने ही ढंग से वे जैसे-तैसे पले-बढ़े, जवान हुए। फिर उनके बच्चे हुए। लावारिसों की दूसरी खेप। भयंकर गरीबी, ऊपर से

महँगाई की मार। दिल्ली, मुंबई, दुबई और लंदन तक फैल गई यह अमर बेलि।

सिपाही ने मेरी ओर इशारा कर ताहिर से कुछ कहा। ताहिर झेंपते हुए मेरे साथ-साथ चलने लगा, "मुझको भी साथ ले चलिए न दीदी, सभी तरह के काम कर सकता हूँ।''

"लेकिन मैं भला कैसे लिवा ले जा सकती हूँ तुम्हें?''

"क्यों सलाहुद्दीन के लड़कों को ले जाने आई हैं। मैं तो उनसे भी गरीब हूँ। उनके तो माँ-बाप भी हैं, जमीन भी है, नाव भी; मेरा तो कुछ भी नहीं।''

मैं अवाक् रह गई, "तुम्हें किसने बताया कि मैं सलाहुद्दीन के या किसी और के बच्चों को ले जाने आई हूँ। मैं तो उन्हें जानती भी नहीं। मैं तो नीहार सिंह का पता करने जा रही हूँ, जो मेरे मौसेरे बहनोई हैं।''

"ओह!'' ताहिर निराश हो गया, फिर बोला, "लेकिन मैं यहाँ छह महीने से हूँ, नीहार सिंह या किसी हिन्दू परिवार का नाम नहीं सुना। खैर, देखिए, पूछिए शायद पता लग ही जाए। बस्ती तो यही है।''

मैं एक-एक घर को देखती हूँ, ये घर होगा, नहीं वो, नहीं, ताहिर तो आगे बढ़ गया, शायद आगे...। माँ किसी नदी का जिक्र करती थीं, जिसका पानी, ज्वार के समय मचान के नीचे तक फैल जाता। न अभी तक कोई मचान मिला, न नदी की झलक। एक घर के पास ताहिर आकर रुक गया, सिपाही ने साइकिल खड़ी कर दी, "यही है।''

फूँस की छाजन। एक कोने में एक बकरा बँधा था, दूसरे कोने में एक गाय, सामने मुर्गियाँ और उनके छोटे-छोटे चूजे चिक-चिक करते टहल रहे थे। बच्चे सिर पर टोपी लगाए मदरसे में पढ़ने जा रहे थे। टिपिकल मुसलमानी घर।

"शेख मोशाय कहाँ हैं, देखिए आपसे मिलने आई हैं।'' सिपाही ने आवाज दी। उस घर से एक औरत निकली, फिर देखते-देखते दूसरे घरों से अन्य औरतें। कुछ मर्द भी। सभी आँखें फाड़-फाड़ कर मुझे देखने लगे।

"सलाहुद्दीन तो ढाका गए हैं, उनकी बहू है।'' एक औरत ने बताया।

"उन्हें ही बता दीजिए।'' सिपाही सुहेल ने कहा।

"नया आदमी देख रही हूँ।'' आँखों पर हाथ की ओट बनाकर एक बूढ़ी ने मेरे चेहरे में झाँका। मैं झेंप गई।

"हिन्दू प्रेस रिपोर्टर हैं। बर्द्धमान से आई हैं।''

"यहाँ...?''

"यहाँ अपने बहनोई किसी नीहार सिंह को ढूँढ़ने आई हैं। कहती हैं, इनके पूर्वज इसी गाँव से गए थे।''

बूढ़ी थोड़ी गम्भीर हुई, "थाने का परमिशन है?''

"हाँ, तभी तो मैं साथ-साथ आया हूँ।''

"बूड़ी, ओ अंजुमन बूड़ी, देखो तो भारत से कौन आया है तुमसे मिलने।''

"अंजुमन बूड़ी!'' शब्दों को मैंने चुभलाया। याद आया बर्द्धमान आई थीं तब भी अणिमा दी का भी पुकारने का नाम 'बूड़ी' ही था। तो क्या अणिमा सचमुच ही 'अंजुमन' बन गई और नीहार सलाहुद्दीन?

अन्दर से तेज-तेज चलकर कोई स्त्री आई और चौखट के फ्रेम में फ्रीज हो गई जैसे हुलास के वेग पर असमंजस की लगाम लग गई हो। हाँ, वही गंदुमी गोल चेहरा, चेहरे में जड़ी वही बड़ी-बड़ी बिल्लौरी आँखें!

मैं अपने को और रोक न सकी। मैंने दौड़कर अणिमा दी को बाँहों में भरकर भींच लिया। "दादी! दीदी! मेरी दीदी। कितने दिन बाद देख रही हूँ अपनी अणिमा दी को। पहचाना मुझे, मैं तुम्हारी शिखा हूँ—गुड्डी।''

"छोड़ो मुझे। मैं किसी शिखा, किसी गुड्डी को नहीं जानती।''

मुझे गहरा धक्का लगा। तो क्या मैं किसी मुर्दे को पकड़े हुए थी? हाथों के बंद ढीले पड़े। काफी औरतें जमा हो गई थीं। मेरी स्थिति हास्यास्पद होती जा रही थी। मैं सफाई पर उतर आई, "याद है दीदी, जब आप बर्द्धमान आई थीं, मैं इत्ती-सी थी।'' मैंने हाथ से पाँच साल के बच्चे का कद बताया, "मैं पाँच साल की थी, आप सात साल की। मुझे गोद में लेकर घूमा करती थीं। उठा नहीं पाती थीं पूरी तरह। एक बार लेकर गिर पड़ी थीं, इसके चलते आपको मार भी खानी पड़ी थी। यह रहा वह दाग भौंहों पर।''

अणिमा दी फटी-फटी आँखों से मुझे घूरे जा रही थीं।

"आपने मुझे कई बार बुलाया था, मरने से पहले मिल लो...याद है? खेल-खेल में आपने मेरी शादी में मुझे झुमका देने की बात कही थी।''

अणिमा दी काठ की पुतली-सी निर्विकार खड़ी थीं। मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करूँ? तमाशा तो बन ही गई थी मैं। शर्म और अपमान की एक ठंडी लहर शिराओं में रेंग

रही थी। इतनी बाधाएँ पार कर, इतनी दूर चलकर तो आज उन्हें पाना नसीब हुआ, और आज भी वे न बोलीं तो कब बोलेंगी?

सिपाही ने ऊबते हुए पूछा, "और कितनी देर लगेगी?"

"छोड़ो! उसे जब कुछ याद ही नहीं आ रहा है तो आगे क्या पूछोगी।" पहले वाली प्रौढ़ा ने कहा, "जो बीत गई सो बीत गई। हाँ! ननिहाल आई हो तो दो कौर भात और मछली तो पेट में डालना ही होगा।"

"लेकिन मौसी मैं तो...।"

"कोई लेकिन-वेकिन नहीं। हाँ, अगर मुसलमान के हाथ से खाने से तुम्हारा धरम भ्रष्ट हो जाए तो और बात है!"

"नहीं मौसी ऐसी कोई बात नहीं। मैं बस जरा नहाना चाहती थी। सारी देह चिपचिपा रही है।"

"ये लो, बगल में ही तो नदी है। सभी लड़कियाँ जा रही हैं। दो डुबकी मार आओ न! अंजुमन बूड़ी लिवा जाओ इसे भी...लेकिन ज्वार का कोई भरोसा नहीं, होशियार रहना।"

उस दल में कोई दस-एक युवतियाँ और बच्चियाँ थीं, बूढ़ी एक भी नहीं, सो वे खुलकर बोल-बतिया रही थीं।

"अच्छा दीदी, आपके बर्द्धमान से कलकत्ता कितनी दूर है?" एक ने पूछा।

"ट्रेन से डेढ़ घंटा लगता है।"

"बहोत बड़ा शहर है न, जमीन के अन्दर रेल चलती है?"

"हाँ।"

"आप कभी बैठी हैं?"

"हाँ। कई बार।"

"बड़ा मजा आता होगा। है न?"

"हाँ।"

"अयोध्या कहाँ है?'' एक ठिगनी-सी गम्भीर दिख रही लड़की का सवाल।

"हमारे यहाँ से पन्द्रह घंटे लगते हैं।''

शुक्र था उसके आगे उसने कुछ नहीं पूछा। डर और नफरत के बिन्दु की ओर इशारा-भर किया, उसे छुआ नहीं?

"आप तो हवाई-जहाज पर भी चढ़ती होंगी?'' तीसरा सवाल।

"हाँ।''

"मुसलमानों को भी चढ़ने देते हैं?''

"क्यों नहीं?''

"अच्छा वहाँ रवि ठाकुर का शान्ति निकेतन है जहाँ लड़के-लड़कियाँ प्रेम कर सकते हैं?''

"क्यों गंगा-पद्दा (पद्मा) के तट पर रहनेवालों को प्रेम करने से किसी ने रोका है क्या?''

सारी लड़कियाँ हँस पड़ीं। मैंने कनखियों से अणिमा दी को देखा जो खुद में खोई कटी-कटी सी चल रही थीं, उनके चेहरे पर एक मुस्कान तक न पसीजी। "दीदी आप कैसी प्रेस रिपोर्टर हैं, एक कैमरा लाई होतीं तो हम सबका फोटो हो जाता।''

"वाकई भूल हो गई।'' मैंने बहाना बनाया; मैं उन्हें कैसे बताती कि कैमरा, टेप और मोबाइल तीनों रखवा लिए गए थे थाने में।

गाँव से निकल आए थे हम। हम बार-बार पीछे मुड़कर देख रही थीं।

"क्या देख रही हैं दीदी?''

"माँ ने कभी बताया था कि हमारे घर के पीछे एक तालाब हुआ करता था। सामने कोई मचान हुआ करता था जिस पर ज्वार के समय पूरा परिवार बैठा रहता और रात को नावों की लालटेन की लाल रोशनी लहरों पर मचलती हुई आती। गाँव में आम, जामुन और नारियल के ढेरों पेड़ थे, नीचे कच्चू के पत्ते जमीन को ढके रहते।''

"तब से कितनी ही बार बाढ़ें, कितनी ही बार झड़ (तूफान) आए, न जाने कितनी बार सोनारदीघी उजड़ा और बसा।''

ठीक ही कहती है युवती, इतिहास और भूगोल के मलबे में सब कुछ दब-दबा गया जब

मेरा अपना ही मुझे पहचानने से इनकार कर रहा है। लेकिन इस 'नॉस्टल्जिया' का क्या करूँ मैं?

टीले के नीचे हरे-भरे खेत थे, फिर नदी। मैं बूँद-बूँद पी रही थी सारा कुछ!

"आपके पास बदलने के लिए तो कुछ नहीं है?'' एक युवती को जैसे अभी-अभी याद आया।

"आप लोग...?''

"हमारा क्या है, गमछा पहन लिया या ऐसे ही...।''

"गमछा भी कहाँ है?''

"किसी का खींच लूँगी।''

लड़कियाँ खिलखिला पड़ीं। अणिमा दी के चेहरे पर क्षणांश-भर के लिए कोई मुस्कुराहट उभरी, फिर जब्त हो गई।

रेत में दबे सीप और झिनुक के टुकड़े चमक रहे थे–नीली-सी कौंध! इन्हीं में कुछ-एक मेरे पुरखों की अस्थियाँ भी शामिल हों। शायद अतीत के उस पार से जल रहा है उनका फॉसफोरस!

"जल्दी करो दीदी। ज्वार आने से पहले लौट चलना है।'' उस ठिगनी-सी युवती ने कहा और नदी में उतर गई। अणिमा दी घाट पर एड़ियाँ रगड़ रही थीं जैसे उन्हें कोई जल्दबाजी न हो।

सागर की तरह फैली हुई थी नदी। जहाँ-तहाँ हिलकोरें ले रही थीं नावें; इक्के-दुक्के स्टीमर भी। मटियाला पानी छुल्ल-छुल्ल ताल दे रहा था पर इस ताल पर साथ देने वाला कोई भटियाली गीत न था। कोई कातर-सा स्वर रह-रहकर उभर रहा था। यह कोरा वहम था मेरा या हकीकत? कहीं मेरे अन्दर की पीर उछलकर बाहर तो नहीं आ गई थी?

न! नहीं! तट पर किसी घड़ियाल ने बकरी को पकड़ लिया था। वही मिमिया रही थी कातर स्वर में। लड़कियाँ छप-छप करती हुई उधर भागीं। मेरे और अणिमा दी को छोड़कर वहाँ अभी कोई न था। खुद के खयालों में डूबी अणिमा दी धीरे से पानी में उतरीं, जैसे एक सागर दूसरे सागर में उतर रहा हो। यही मौका था मेरे लिए। डुबकी लगाकर उठी ही थीं कि मैंने उन्हें बाँहों में जकड़ लिया, "किसे छल रही हो दीदी, मुझे या खुद को?''

वह देह एक बार काँपी, फिर स्थिर हो गई, "छोड़ दो मुझे, नदी में ऐसा मजाक नहीं

करते।''

"नहीं छोड़ूँगी, पहले सच-सच बतलाओ। तुम्हें मेरे सिर की कसम, झूठ बोली तो इसी नदी में डूब मरूँ मैं।''

दीदी की आँखें छलक आईं, "याद है। सब कुछ याद है गुड्डी। तुम्हें क्या मालूम कि हम पर क्या-क्या गुजरी! घड़ियाल के जबड़े में फँसी बकरी की मिमियाहट हर कोई सुन सकता है, हमारी कोई नहीं।'' दीदी एक पल को रुकीं, खुद को सहेजा, फिर बोलीं, "जान बचाती या धर्म? हमने जान चुनी। कितना लड़ते, किस-किस से लड़ते हम? अब तुम अलग हो, हम अलग। तुम हिन्दू हो, हम मुसलमान। तुम हिन्दुस्तान, हम पाकिस्तान।''

आश्चर्य! अणिमा से अंजुमन बनी मेरी मौसेरी बहन भी 'बांग्लादेश' को बांग्लादेश न कहकर 'पाकिस्तान' बता रही थीं, ठीक माँ की तरह।

"दीदी''—मेरे अन्दर बहुत-से सवाल घुमड़ रहे थे लेकिन उन्होंने होंठों पर उँगली रख दी, "ना, कुछ मत पूछो, कुछ मत—खुदा के लिए अब इस बात का जिक्र भी मत करना। लौट जाना और कभी मत आना। बड़ी मुश्किल से सँभाला है खुद को गुड्डी।''

"ठीक है दीदी, जैसा तुम कहती हो, वैसा ही करूँगी। चली जाऊँगी, कभी डिस्टर्ब नहीं करूँगी तुम्हें। आँसुओं की तरह पी जाऊँगी सब कुछ...लेकिन एक बार, सिर्फ एक बार बाँहों में भींच लो कलेजे से लगाकर मुझे, चूम लो कस कर मन-प्राण आत्मा से मुझे। डरो नहीं पानी की इस दीवार में पर्दे की ओट है, ईश्वर के सिवा कोई नहीं देख रहा हमें।''

"जिद न कर मेरी बहना, मेरी प्यारी गुड्डी, इस तरह तो हम दोनों ही डूब जाएँगे।''

"डूब जाएँ तो डूब जाएँ। मेरे लिए यही पल पहला है, यही आखिरी भी...।''

परस्पर आलिंगन में बँधी हम दोनों बहनें पानी के पालने पर झूलने लगीं। अद्भुत उल्लास पर्व था मेरे लिए वह। लगा, सारा ही परिवेश आम, जामुन, बाँस, केले और नारियल के पेड़ों से सघन हो गया। ऊपर पेड़ थे, नीचे कच्चू के पत्तों का टटका हरियालापन। देवता प्रसन्न थे, पृथ्वी महीयसी हो उठी थी। दूर से कोई मद्धिम-सी टेर कानों में बज रही थी, कोई भटियाली गीत—दुख और सुख से परे किसी अनजाने लोक से तिरकर आता हुआ। कच्चू के चौड़े चकले, पत्तों पर हीरे की कनी-सी दो बूँदें नाच रही थीं। नाचते-नाचते वे एक हो गईं...

जाल डाल कर हमें बचाया गया था। सारा सोनारदीघी हमें देखने को उमड़ पड़ा था।

"तुम दोनों को ज्वार आने का आभास तक नहीं हुआ?'' एक सवाल।

"चीखते-चिल्लाते हमारा गला फट गया, तुम्हें एक भी चेतावनी सुनाई न दी?'' दूसरा सवाल।

सवाल-दर-सवाल।

दोनों बहनें अपराधी की तरह सिर झुकाए बैठी थीं। जवाब हमारे पास एक न था।

केशर-कस्तूरी

शिवमूर्ति

"पापा, आपके ए.सी. साहब आए हैं।" बेबी ने कमरे में घुसते हुए सूचित किया।

मैं चौंक गया। पूछा–"कहाँ हैं?"

"बाहर सड़क पर। जीप में ही बैठे हैं?"

"अरे सुनो जी। जरा शीशा-कंघी देना तो। और पैजामा भी।"

मैंने कलम और रजिस्टर फेंकते हुए आवाज लगाई और उलटकर बिस्तर से नीचे उतर आया। अरे, मेरी चप्पलें कौन ले गया, यहाँ से?

सोचा था, आज पूरे दिन लगकर कहानी पूरी कर डालूँगा। बहुत दिनों से इसका लिखना टलता आ रहा है। सबेरे ही बच्चों को बुलाकर सचेत कर दिया था, कोई मिलने आए तो कह देना, पापा नहीं हैं।

"लेकिन पापा। आज ही के लिए तो आपने वादा किया था मेरे कपड़े लाने का।" केशर ने याद दिलाया था।

"अब कपड़े दूसरे दिन बेटा।''

"लेकिन कल ही तो मेरी सहेली की शादी है। सिलने तक का समय नहीं है। आप महीने भर से टालते आ रहे हैं।''

"कुछ भी हो, आज मेरा लिखने का मूड बन चुका है। आज तो किसी सूरत में नहीं। नहाने तक के लिए नहीं उठना है। दरअसल मूड की बात है न। एक बार मूड उखड़ा तो महीने भर की छुट्टी हो जाएगी।...कान खोलकर सुन लें सब लोग। आज मैं घर में नहीं हूँ। किसी सूरत में नहीं।''

और घंटा भर भी नहीं बीता था कि यह आफत। पूरा दिन चौपट हो जाएगा। जल्दी-जल्दी पैजामा डालकर बाहर आया। सामने ही सड़क है। लेकिन यहाँ तो कोई जीप दिखती नहीं। सामने से आती केशर ने कहा, "पापा। आप बाहर क्यों निकल आए? मैंने तो आपके साहब से कह दिया कि पापा कहीं गए हैं।''

"अरे। ऐसा क्यों कह दिया? किधर गए?''

"बोले, डाकबंगले चल रहा हूँ। लौटे तो भेज देना।''

अभी अर्दली नहीं आया था। लौटकर बेबी से कहा, "दौड़कर ड्राइवर को बुला लाओ।''

पत्नी से कहा, "तीन-चार कप चाय तैयार करके थर्मस में रखो। थोड़ा बिस्कुट वगैरह भी।''

कपड़े बदलते हुए मैं सोचने लगा–इतने सबेरे-सबेरे क्यों आ टपके जनाब? बिना किसी पूर्व सूचना के।

"लेकिन पापा,'' केशर ने थर्मस धोते हुए कहा, "जब मैंने कह दिया कि पापा घर में नहीं हैं तो परेशान होने की क्या जरूरत है? मान लीजिए कि आप वापस लौटे ही नहीं। चुपचाप बैठकर कहानी पूरी कीजिए। फिर पता नहीं, कब मूड बने?''

"तुम नहीं समझोगी बेटी। यह नौकरी है। ऐसे में अगर मैं घर में बैठा भी रहूँ तो क्या लिखने में मन लग सकता है?''

डाकबंगले पर भी कोई जीप नहीं थी। चौकीदार ने बताया कि यहाँ तो कोई आया ही नहीं। दफ्तर गया। वहाँ भी नहीं थे। फिर घर लौटा। केशर को बुलाकर पूछा, "तुमने कैसे जाना कि आनेवाले हमारे ए.सी. थे।''

"पापा!'' केशर सोफे पर बैठते हुए बोली, "मैं ही हूँ आपकी ए. सी. साहब। मेरे काम के

लिए आप घर में नहीं हैं और अपने साहब का हुकुम बजाने के लिए...हम लोग आप पर मुकदमा चलाएँगे।''

मुझे बहुत तेज गुस्सा आया। ऐसा मजाक! मेरी सगी बेटी होती तो हो सकता है, मैं हाथ भी उठा देता। पत्नी पर बरस पड़ा, "तुमने भी नहीं बताया। मैं कहाँ-कहाँ भटकता फिरा।''

"मुझे भी तो नहीं पता था।'' पत्नी ने मुस्कारते हुए कहा, "अब चलिए, लिखिए बैठकर।''

"अब क्या लिखूँगा, खाक।''

केशर हँसते हुए चाय का कप ले आई।

"मुझे माफ कर दीजिए पापा। लेकिन जब उठ गए तो मार्केटिंग ही कर आइए।'' केशर के सामने देर तक गुस्सा टिक भी तो नहीं सकता। रोते हुए को भी हँसा देती है। जब से आई है, उसकी चुहल और हँसी से उजाला छाया रहता है। इतने गहरे मजाक की बात सोचना, उसी के वश की बात थी। सचमुच, कल ही उसकी पक्की सहेली की शादी है और मैं एक दिन पहले भी उसके लिए कपड़े लाने में टाल-मटोल कर रहा था। सरासर अन्याय। और क्या ही नायाब तरीका निकाला उसने इस अन्याय को व्यक्त करने का।

केशर मेरे साढ़ू भाई की लड़की है। पत्नी की बीमारी में देखभाल के लिए पिछले साल आई थी। आने के थोड़े दिन बाद ही वह कॉलोनी की हमजोली लड़कियों से लेकर आंटियों तक में समान रूप से लोकप्रिय हो गई। हर एक के लिए उसके पास कोई-न-कोई स्पेशल देहाती नुस्खा था। बालों को लम्बा और चमकीला बनाने का नुस्खा, बिवाई ठीक करने का नुस्खा, समलबाई से छुटकारा पाने का नुस्खा, कॉलोनी का हर घर अब उसका अपना घर है। हर घर का कोई-न-कोई काम उसके अभाव में रुका रहता है।...जब भी ऑफिस से थोड़ा पहले या दोपहर में लौटता हूँ ड्राइंगरूम को कॉलोनी की लड़कियों से भरा पाता हूँ। कभी गाना हो रहा है, कभी नाचना। सैकड़ों गीत, लोकगीत याद हैं, उसे। जो चाहे, जितना चाहे सीखे।

हँसोड़ इतनी कि पत्नी कभी-कभी उसकी हँसी से आतंकित हो उठती है। उदास होने या बिसूरने की बात पर भी हँसी। कभी-कभी तो हँसी के लिए पत्नी की मार खाने के दौरान भी मुँह में दुपट्टा ठूँसकर हँसती रहती है। हँसी ढुलकती देह! हारकर पत्नी भी डाँटना-मारना छोड़ हँसने लगती है।

हँसमुख और व्यावहारिक होने के साथ-साथ केशर के हिस्से में अपूर्व सुन्दरता भी आई है। घर से लेकर पास-पड़ोस तक की बच्चियों पर उसकी सुन्दरता का जादू छाया हुआ है। लड़कियाँ उसके बाल, दाँत, आँख, होंठ और हँसी की तुलना अलग-अलग अभिनेत्रियों से करती हैं।

केशर में सेवा-भावना भी गजब की है। जब से इस घर में आई है, पत्नी ने आराम-ही-आराम किया है। आने के साथ बहुत कम समय में ही उसने इस घर का गणित समझ लिया और पत्नी को सारी जिम्मेदारियों और उलझनों से मुक्त कर दिया। अब स्कूल जानेवाले बच्चे अपनी ड्रेस और टिफिन के लिए केशर के नाम की गुहार लगाते हैं। महरी और धोबिन अपना हिसाब केशर से लिखवाती हैं। मुझे कब क्या पहनना है? कौन-सा कपड़ा धुला है, कौन-सा लांड्री गया है, इसका निर्णय और जानकारी और माध्यम केशर हो गई है। नमक-चीनी से लेकर कपड़े-लत्ते तक के चुनाव पर उसकी मरजी चलती है। पूरे घर पर इस समय उसी का 'राज' चल रहा है। छह महीने की सेवा से पत्नी पूरी तौर पर स्वस्थ हो गई और केशर के वापस जाने की बात आई तो उदास हो गई कि मेरे लिए बहुत दुख छोड़कर जाएगी यह। इसके जाने के बाद कौन सँभालेगा इस घर को। लेकिन केशर ने एक बार फिर अपने ढंग से पत्नी को सारे दुखों से उबार लिया। उसने पत्नी से कहा, "मुझे सिलाई-कढ़ाई के स्कूल में भर्ती करा दीजिए मौसी। साल भर की गुलामी का पट्टा पक्का हो जाएगा।" केशर ने पहले से पता कर लिया था कि कॉलोनी के पीछे ही कोई महिला यह ट्रेनिंग स्कूल चलाती थी। नया बैच भर्ती हो रहा था। केशर ने भी दाखिला ले लिया।

इस बीच पत्नी के हाथ-पैर दबाकर, मेहँदी-महावर लगाकर, वह उनसे कभी डोलची तो कभी सैंडल, कभी पायल तो कभी बिछिया, कभी साड़ी तो कभी शाल प्राप्त करती रही। पत्नी कहती है कि कोई चीज माँगने से पहले केशर अपनी बात अपने व्यवहार से पूरी तरह मोह लेती है। माहौल बना लेती है। जादू जला देती है। दस पैसे की चीज माँगने से पहले माहौल ऐसा बनाएगी कि आदमी दस रुपए की चीज भी खुशी-खुशी देने को तैयार हो जाए। लड़के के जन्मदिन तथा रक्षाबंधन के त्योहार पर नेग के तौर पर मुझको भी घड़ी, सिलाई मशीन और एक लोहे का सन्दूक मय ताले के लिए वचनबद्ध कर चुकी है।...

केशर की ट्रेनिंग अब लगभग पूरी हो गई है। एक-डेढ़ महीने में उसका गौना होने वाला है। तिथि निर्धारित होते ही इसे वापस गाँव भेज देना है। ऐसे में गुड्डी की शादी के अवसर पर उसने अपने लिए एक अतिरिक्त साड़ी-ब्लाउज का जुगाड़ लगा लिया।

गुड्डी पड़ोस में रहने वाले ए.डी.एम. की लड़की है। उसकी शादी किसी आई.ए.एस. लड़के से हो रही है। शहर की शादियों में अब गारी गाने का रिवाज फैशन से बाहर हो गया है। लेकिन केशर ने गुड्डी की मम्मी को राजी कर लिया है। उस शादी में वह 'मॉर्डन' गारी गाएगी। देखती है, कैसे नहीं पसन्द आती लोगों को। गुड्डी जान छिड़कती है केशर पर। खुद आकर पत्नी से चिरौरी कर गई है कि शादी के दिनों में केशर को उसी के पास रहने दिया जाय।

"अब बैठे-बैठे क्या बिसूर रहे हैं?" पत्नी ने आकर कहा, "जाइए, ला दीजिए न उसकी साड़ी-कपड़े।",

"हाँ-हाँ, जाता हूँ।" मैंने चाय का खाली कप उन्हें पकड़ाया, "केशर बेटे। चलो, तुम भी

तैयार हो जाओ। अपनी पसन्द से ले लेना।''

आहा! तैयार होकर निकली केशर तो आँखें जुड़ा गईं। यह रूप!

मेरी अपनी लड़कियाँ इतनी सुन्दर होतीं तो शादी के लिए कम-से-कम पापड़ बेलने पड़ते। इस सोच के साथ ही एक कचोट भी मन में उभरी। केशर के बप्पा ने इसकी शादी दर्जा आठ पास करते ही कर दी, एक हाई स्कूल में पड़ने वाले लड़के के साथ। यह शादी भी वे तीन साल पहले कर रहे थे, जिस साल केशर ने दर्जा पाँच पास किया था। लेकिन हम लोगों के मना करने और केशर को आगे पढ़ाने के लिए दवाब डालने के कारण तीन साल के लिए टाल दिए थे। लेकिन दर्जा आठ से आगे पढ़ाने के लिए वे किसी तरह राजी नहीं हुए। इस मामले में उनका तर्क था कि तीन मील दूर के स्कूल में सयानी लड़की को अकेले पढ़ने भेजना निरापद नहीं है। गाँव में जातीय विद्वेष दिनोदिन इतना प्रबल हो रहा है कि कभी भी कुछ अघटनीय घट सकता है। शादी के बारे में भी उनका अपना मौलिक तर्क था। उनके अनुसार, बाल-विवाह प्रथा में मात्र इतना अन्तर आया था कि पहले जहाँ शदियाँ सात-आठ साल की उमर में हो जाती थीं, अब पन्द्रह-सोलह साल की उमर में हो रही हैं। जिस लड़के का बाप बहुत टालता है, उसकी शादी भी हाई स्कूल पास करते-करते हो जाती है। ऐसे में बेटी को कुँवारी रखने पर बाद में लड़के कहाँ मिलेंगे? और कुँवारी रखने का उद्देश्य भी क्या है? लड़की के भाग्य में होगा तो वही लड़का पढ़-लिखकर कहीं हिल्ले से लग जाएगा। नहीं तो अच्छा घर-वर देखकर कर रहे हैं। डेढ़ एकड़ खेती है। बड़ा भाई कानपुर में कमाता है। मँझला खेती-बाड़ी देखता है। सास-ससुर जिन्दा हैं। गाय-भैंस हैं। शाम तक दो रोटी मिलेगी। और क्या चाहिए?

अपनी औकात देखते हुए केशर के बप्पा का तर्क ठीक ही था। उनकी भी माली हालत ऐसी थी कि सालभर खींच-खाँचकर रोटी चल जाती थी। मोटा खाना मोटा पहनना। लेकिन इधर मैंने सुना कि लड़के ने पढ़ाई छोड़ दी। इंटर में फेल होने के बाद पिछले दिनों चंडीगढ़ भाग गया। किसी कारखाने में काम कर रहा है। यह सुनकर मैं थोड़ा चिंतित हो गया हूँ। पहले जब केशर ने शहर नहीं देखा था यहाँ के खान-पान, रहन-सहन से अवगत नहीं थी तो दूसरी बात थी लेकिन एक बार सुख-सुविधा की सारी चीजें देख-भोग लेने के बाद उस देहात में बेरोजगार पति के साथ दिन काटना पड़ेगा इतनी सुन्दर सुघड़ बेटी को तो उसके मन पर क्या बीतेगी? मैंने पत्नी से इसकी चर्चा की। बताया कि खोजने पर शहर में छोटी-मोटी नौकरी करने वाले लड़के मिल सकते हैं। उनमें से किसी के साथ केशर का पुनर्विवाह...। कोई भी लड़का केशर को पाकर धन्य हो जाएगा।

"क्या-क्या सोचते रहते हैं आप?'' पत्नी ने एकबारगी घुड़क दिया, "उस लड़के में क्या खोट है? यही न कम कमाता है। केवल इतनी बात पर कोई लड़की अपने बियाहे आदमी को छोड़ देगी? अभी तो वे दोनों एक-दूसरे से मिल भी नहीं पाए हैं। केशर सुनेगी तो क्या सोचेगी? हम लोगों की शादी हुई तब तक आप स्कूल जाना भी नहीं शुरू किए थे। मेरे गौने के बाद भी बहुत दिनों तक बेकार मारे-मारे घूमे थे। उस समय के आपके घर की माली

हालत तो केशर के ससुराल से भी गई-गुजरी थी। तब कोई मुझसे दूसरी शादी के लिए कहता तो मुझे अच्छा लगता?''

"अच्छा तो जरूर लगता।'' मैंने मुस्कुराकर कहा था।

"हटिए। फालतू खीस निकालते हैं।'' पत्नी ने बिदककर कहा, "अभी उसकी छोटी बहनों की शादी होनी है। आप उसे यहाँ से ब्याह देंगे तो वहाँ बिरादरी के आगे इसके बप्पा क्या मुँह दिखाँएगे? उस वर को छोड़ने का कौन-सा कारण बताएँगे? बेरोजगारी या कम कमाई तो वहाँ कोई कारण माना नहीं जाएगा। बिरादरी में सब नौकरी ही तो कर नहीं रहे हैं। आप जैसे दो-चार लोग भले पढ़-लिखकर ढंग से लग गए हैं। बाकी तो जैसे भी हो, वहीं गुजर-बसर कर रहे हैं।...फिर कोई नौकरी-चाकरी वाला लड़का मिल भी जाए तो इसके बप्पा फिर से शादी में होने वाला दस-पाँच हजार का खर्च कहाँ से और क्यों करेंगे? इतना पैसा जुटाएँगे तो वे सयानी होती दूसरी लड़की के हाथ पीले करने की सोचेंगे। आपको भी कई लड़कियों को निपटाना है। जिस दिन शुरू करोगे, समझ में आ जाएगा।''

शायद उसे भय था केशर के सम्भावित पुनर्विवाह में होने वाले खर्च को मैं भावुकता में आकर जिम्मे लेने का निर्णय न ले लूँ, इसलिए अपनी लड़कियों की शादी की समस्या याद दिलाकर वह सामने से हटकर किचन में व्यस्त हो गई और मुद्दे से मेरा ध्यान बँटाने के लिए बेबी को मेरे पास सवाल पूछने के लिए भेज दिया था।

गौने के लिए गाँव भेजते समय पत्नी ने केशर को यथासम्भव पर्याप्त सामान दिया। कई सामान केशर समय-समय पर पहले ही हासिल कर चुकी थी। सिलाई मशीन, घड़ी और ससुराल ले जाने के लिए लोहे का बड़ा बक्सा मैंने खुद खरीद दिया था। छोटे-मोटे प्रयोग की कई चीजें कॉलोनी की उसकी सहेलियों ने दीं। विदाई के समय घंटे भर तो उसे अपनी सहेलियों से गले मिलने और रोने में लगा था। जीप चली तो सबके गले रुँधे थे। उसकी सहेलियाँ, मेरी लड़कियाँ, पत्नी सब सिसक रहे थे। विदा करके अन्दर आया तो घर काटने को दौड़ता था। आज मेरा आँगन सूना करके उड़ गई मेरी मैना। उसके खिलंदड़ेपन और खिलखिलाहट की प्रतिध्वनियाँ बहुत दिनों तक मन में गूँजती रही थीं। लेकिन कुछ ऐसा संयोग रहा कि उसके गौने में नहीं जा सका। पत्नी और बच्चे ही गए। पत्नी ने लौटकर बताया कि विदाई के समय आपके 'आखर' के साथ बहुत दूर तक, बहुत देर तक रोती चली गई थी आपकी लाड़ली बेटी।

जाते समय मेरे घर से ही वह ढेर सारे लिफाफे, अन्तर्देशीय खरीदकर ले गई थी। अक्सर पत्नी के नाम, लड़कियों के नाम और पड़ोस की सहेलियों के नाम उसके पत्र आते रहते थे, जिससे पता चलता था कि वह अपनी ससुराल में है। अपने बारे में वह कम ही लिखती थी। उसकी रुचि दूसरों का कुशल समाचार जानने में अधिक थी।

केशर से भेंट का मौका मिला था डेढ़ साल बाद। मेरे एक सहकर्मी मित्र अपनी लड़की की

शादी के लिए एक लड़का देखने मेरे साढ़ू भाई के गाँव जा रहे थे। मेरी पत्नी ने ही उन्हें इस लड़के के बारे में बताया था। मित्र ने इस आधार पर मुझे भी साथ ले लिया कि परिचय का बारीक सूत्र भी बातचीत को निर्णायक बनाने में सहायक होगा।

हम लोग पहुँचे तो दरवाजे पर पहले केशर ही मिली। देखते ही मुदित हो गई। हम लोगों का बैग हाथ से ले लिया। बैठने के लिए चारपाई ले आई। फिर लगी कॉलोनी के एक-एक आदमी, यहाँ तक कि गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली तक का हाल पूछने। मैं आदमियों से सम्बन्धित बहुत सारी जानकारियों से ही अनभिज्ञ था, कुत्ते-बिल्लियों की तो बात ही क्या। बहुत सारी जानकारी देने में असमर्थ रहा।

तब तक उसकी माँ आ गई। लगी डाँटने कि पानी-दाना देने की याद नहीं है। दुनिया-जहान का किस्सा लेकर बैठ गई।

केशर पानी लाने चली गई और मैं खोजने लगा कि वह पहले वाली केशर कहाँ है? आवाज की खनक तो बरकरार है, लेकिन वह चपलता, चंचलता! दैहिक आभा क्षीण है। मुख मलीन! कैशोर्य की अकाल मृत्यु हो रही है। मँड़ई के एक कोने में पत्नी द्वारा दी गई प्लास्टिक की डोलची पड़ी थी। उसका टँगना कई बार धागे से सिला गया था। एक तरफ शैम्पू की एक खाली शीशी पड़ी थी। केशर नंगे पाँव इधर-उधर डोल रही थी।

शाम को मेरे मित्र केशर के बप्पा को लेकर लड़के के बाप से बात करने चले गए। केशर खाना बनाने लगी। मैं चारपाई पर लेटे-लेटे केशर की माँ से हालचाल पूछने लगा।

पता चला कि अभी दस दिन पहले केशर अपनी ससुराल से आई है। उसके घर अलगौझा हो गया है। बँटवारे में आधा एकड़ खेत, एक बैल, सत्ताइस सौ रुपए का कर्ज और बूढ़ी सास मिली है। लगता है, केशर के दोनों जेठों के मन में पहले से ही बेईमानी थी। अलगौझा से पहले बड़े जेठ ने अपनी दोनों लड़कियों की शादी कर दी। मँझले ने गया-जगन्नाथ जी का दर्शन करके बिरादरी को इफराती भोज दिया। फिर इन तीनों के खर्च से हुए कर्ज को तीन तिहाए बाँटकर अलग कर दिया। बड़े जेठ बीस साल से कानपुर में 'परमामिंट' नौकरी करते हैं। वहीं निजी मकान बना लिया है। लेकिन गाँव आए, कर्ज लेकर शादी की और हिस्से में कर्ज बाँट गए। अपनी कमाई की एक कौड़ी का हिसाब नहीं दिया। एक-एक बैल दोनों छोटे भाइयों को दिया और खुद भैंस लेकर कानपुर चले गए। मँझले भाई के मन में भी पहले से ही मैल था। केशर के आदमी को किताब-कॉपी खरीदने के लिए पैसा नहीं देते थे। पढ़ाई के समय जान-बूझकर खेती के काम में बझाए रहते थे। इधर खेत के बँटवारे में भी बेईमानी कर लिए। माँ-बाप तक के बँटवारे में बेईमानी हुई है। बाप अभी तगड़ा है, हल-कुदाल चला देता है। उसे मँझले भाई ने अपने हिस्से में ले लिया और माँ जो दमे की मरीज और जर्जर है, छोट भाई के हिस्से में पड़ी है। छोटे भाई ने लाख चिरौरी किया कि वह परदेश रहता है, बाप को उसके हिस्से में आने दिया जाए। जोताई-बोआई करेगा, लेकिन सुनवाई नहीं हुई। सास गाय-गौरू चराने लायक भी नहीं है। दस कदम चलती है तो पहर भर हाँफती है। बड़ी

मजबूरी हो तो किसी तरह रोटी सेंकती है।

केशर का आदमी चंडीगढ़ में मकान पुताई का काम कर रहा था। पच्चीस-तीस रुपए रोज मिल जाते थे। लेकिन दो महीना पहले सीढ़ी से गिर गया। पीठ के बल! रीढ़ की हड्डी में ईंट से चोट लग गई। महीना भर चारपाई पर पड़ा रहा। दवाई में बड़ा पैसा लगा। डॉक्टर ने भारी काम करने से मना कर दिया। और इसी बीच भाइयों ने बँटवारा कर लिया। केशर का आदमी पहले बड़े सुधवा स्वभाव का था। लेकिन इधर बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। कर्जे की चिन्ता है। बात-बात पर लड़ने लगता है। एक बट्टी साबुन खरीदना भी उसे फालतू का खर्च लगता है। कहता है, "साहब-सूबा के घर रहने क्यों गई? खर्चा करने की बीमारी साथ लेकर आई हो। केशर के मौसिया, केशर की देह में सोच का परवेश हो गया है। देह देखिए, कितनी गल गई है।"

मन में आया, उन्हें बताऊँ कि एक बार मेरे मन में केशर के पुनर्विवाह की बात आई थी। लेकिन उसकी चर्चा करने का कोई तुक नहीं था। मैं गहरे अवसाद में डूब गया।

सबेरे नींद खुली तो अँधेरा हल्का हो रहा था। केशर दुआर पर झाड़ू दे रही थी। दिशा-मैदान से निवृत्त होकर लौटा तो वह चूल्हे के लिए लकड़ी ले जा रही थी। मेरे दातून करते-करते उसने छोटी बहन को लोटा देकर जल्दी से दूध लाने भेज दिया और चूल्हा सुलगाने लगी। उसकी जल्दबाजी से पता चल गया कि उसे मेरी शीघ्र वापसी की जानकारी है और वह चाय-नाश्ता कराने के बाद ही मुझे जाने देगी। कल से केशर से स्थिर होकर बात करने का अवसर ही नहीं मिला। अब वह अन्दर आँगन में कुछ कर रही थी। बर्तन खनक रहे थे। मैं अन्दर चला गया। वह चाय देने के लिए गिलास धो रही थी। मैंने कहा, "क्यों, सबेरे-सबेरे इतने काम में लगी है मेरी बेटी? मैं चलूँगा अब।"

"इतनी जल्दी क्यों है पापा? चाय बन रही है। पीजिए, फिर नाश्ता कीजिए। आज रुकिए, कल जाइएगा।"

"नहीं बेटा। जाना तो जरूरी है। अभी निकल गया तो पहली बस मिल जाएगी।"

केशर आँचल से हाथ पोंछते हुए खड़ी हो गई। हँसते हुए बोली, "बिना चाय पिए तो आप दुबारा बाथरूम भी नहीं जा पाएँगे, पापा। आपका सारा दिन बरबाद हो जाएगा।"

"अच्छा केवल चाय पिलाओ और जल्दी।"

फिर मैंने जेब से सौ रुपए का नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ाया, "यह रखो! मिठाई खाने के लिए।"

लेकिन स्वभाव के विपरीत उसके हाथ नहीं उठे। आँखें नीची हो गईं। पता नहीं, कैसे मैं

सोच रहा था कि वह पहले की तरह कहेगी, "सौ रुपए में आजकल क्या होता है पापा? साबुन, शैम्पू, तेल-कंघी, सैंडल और पता नहीं, क्या-क्या, पूरी एक-सौ-एक चीजें लेनी हैं।''

"क्या बात है बेटी? और कोई चीज चाहिए तो बोलो।''

उसकी आँखों से भरभराकर आँसू निकले और टप-टप जमीन पर गिरने लगे। सिर झुक गया और दाहिने पैर का अँगूठा आँगन के कच्चे फर्श को कुरेदने लगा।

"अरे-अरे। रोती क्यों है पगली? बोल न, क्या तकलीफ है। नि:संकोच बोल, तेरा पापा इतना कंजूस नहीं है।''

मैंने उसकी ठुड्डी पकड़कर चेहरा ऊपर उठा दिया, "बोल न मेरी पुतरी।''

केशर ने आँचल से पूरा चेहरा ढँक लिया और सिसकते हुए बोली, "उनको कोई चपरासी-ओपरासी की नौकरी दिला दीजिए पापा।'' और हिचक-हिचककर रोने लगी। मैं सन्न रह गया। एकाएक कुछ बोल नहीं सका। इस बीच वह गिलास लेकर, आँखें पोंछती, तेजी से चूल्हे के पास चली गई।

चाय का गिलास पकड़ाते हुए उसकी आँखें गीली और झुकी हुई थीं। मैंने कहा, "तुम उनकी मार्कशीट और सर्टीफिकेट भेज देना। मैं कुछ-न-कुछ जरूर करूँगा।''

और सौ रुपए का नोट जबरन उसकी मुट्ठी में दबा दिया था। विदा करते समय उसने अपनी माँ के पीछे सटकर खड़े-खड़े हाथ जोड़कर नमस्ते किया था। उसकी आँखों में आशा की ज्योति टिमटिमा रही थी।

दो दिन के साथ में मेरे मित्र भी केशर के वर्तमान से कमोबेश परिचित हो गए हैं। इसलिए उन्होंने एम.ए. करके कम्पटीशन की तैयारी करने वाले तथा दहेज में पचीसों हजार रुपए पाने का सपना पालने वाले उस लड़के को विचारार्थ लड़कों की अपनी सूची से निकाल देना ही बेहतर समझा। उनके अनुसार, छोटी नौकरी करने वाले लड़के से लड़की ब्याहना डिप्टी कलेक्टरी का सपना सँजोए बेरोजगार लड़के की तुलना में ज्यादा व्यावहारिक था।

एक महीने बाद केशर का पत्र मिला। साथ में, दामाद का सर्टीफिकेट और मार्कशीट। हाई स्कूल में तृतीय श्रेणी थी। इंटर में दो विषयों में फेल। लेकिन 'फोर्थ-क्लास' में तो लग सकता है। मेरे विभाग में भी पाँच-छह जगहें सम्भावित थीं। मैंने पता लगाया। पता चला कि वे सभी उच्चाधिकारियों के केंडिडेट्स के लिए अलिखित रूप से रिजर्व हो चुकी हैं। उम्मीदवार किसी अधिकारी के घर चार साल से बर्तन मल रहे थे, किसी के घर छह साल से। मैं ढीला पड़ गया। केशर को लिख दिया कि प्रयास कर रहा हूँ। घबराना नहीं।

महीने भर बाद फिर उसका पत्र आया। मेरे जिले में सीजनल अमीनों की भर्ती हो रही थी, रिक्तियाँ काफी थीं। कुछ अधिकारी परिचित भी थे लेकिन अफवाह यह फैली थी कि कुछ दलाल छूटे हुए हैं। ले-देकर 'सेट' कर रहे हैं। इंटरव्यू वगैरह धोखा है। बहरहाल, मैंने लड़के को बुलाकर इंटरव्यू दिला दिया। लेकिन जैसा कि पहले से ही आशंका थी, उसका चुनाव नहीं हो सका। तीन-चार दिन रुककर लड़का लौट गया। मन दुखी हो गया।

सीजनल वाटरमैन का एक पद तो मेरे अपने ऑफिस में भी था, जिसकी नियुक्ति मुझे ही करनी थी। लेकिन इतने नजदीकी रिश्तेदार को अपने ही कार्यालय में वाटरमैन लगाना किसी दृष्टि से उचित नहीं लग रहा था।

पाँच-छह महीने बीतने के बाद एक दिन फिर केशर का पत्र आया। उसने पत्नी से गुड्डी का पता माँगा था। उसे पता था कि गुड्डी की शादी आई.ए.एस. लड़के से हुई है। जिसके हाथ में सैकड़ों नौकरियाँ रहती हैं। शायद गुड्डी से वह अपने पति के लिए नौकरी दिलाने की विनती करना चाहती थी। लेकिन गुड्डी के पापा का ट्रांसफर उसी साल देहरादून के लिए हो गया था। अब पता नहीं कहाँ हैं? वही बता सकते थे उनके बेटी-दामाद इस समय कहाँ पोस्टेड हैं? केशर के इस पत्र का उत्तर उसे नहीं दिया जा सका। लेकिन मेरे हृदय-पटल पर एक बार फिर उसका आँचल से मुँह-ढँककर फफकना कौंध गया। सचमुच केशर के लिए कुछ-न-कुछ करना है। मैं कई दिनों बेचैन रहा। फिर एक-दो जगह बात चलाई लेकिन निष्फल और समय के साथ वह सम्वेदना फिर कुंद पड़ती चली गई।

पहली बार केशर मेरे घर आई, तब सिर्फ दस-ग्यारह साल की थी। इसी साल उसने दर्जा पाँच पास किया था और इतनी कम उम्र में गाँव पर पूरे घर का खाना बना लेती थी। पत्नी को डिलिवरी होने वाली थी। और उनकी सहायता के लिए किसी स्त्री का होना आवश्यक था। केशर की गर्मी की छुट्टियाँ थीं।

किसी और के उपलब्ध न होने के कारण पत्नी के केशर को बुला लिया था। वह पहली बार गाँव से बाहर निकली थी। शहर की चीजें आँखें फाड़कर देखती। चलते हुए टेबुलफैन के सामने खड़ी हो, मुँह खोलकर हवा को पेट में भरने और जीभ को ठंडा करने का प्रयास करते हुए आनंदित होती थी। बिजली से पानी गरम हो जाना, बिना धुआँ-धक्कड़ के गैस के चूल्हे पर खाना पक जाना, सीटी मारने, भाप उगलने वाला कुकर, बिना मेहनत के टोंटी घुमाते ही बाल्टी भर देने वाला नल। सब उसे अजगुत-अजगुत लगते और चार-पाँच दिन में ही उसने घर के बच्चों को एक करिश्मा दिखाया। तेजी से चलते टेबुलफैन के ब्लेड के ज्वाइंट पर वह उँगली दबाती और चलता हुआ पंखा रुक जाता। बच्चों को बताती कि मंतर के जोर से उसने पंखे की बिजली को बाँध दिया है। बच्चे हैरत से देखते। पहली बार उसे सेंडिल और मोजे मिले तो उन्हें पहनकर पैर पटकते हुए सारे दिन कॉलोनी में घूमती फिरी। स्कूल खुले तो यूनिफार्म पहनकर स्कूल जाते बच्चों को देखती रह जाती। गाँव के अभाव, नियंत्रण और आर्थिक संयम में पला बचपन यहाँ की स्वतंत्रता और सहज उपलब्धि देखकर आह्लादित था। जल्दी ही जादू-मंतर, गँवई विश्वास और मान्यताओं का हौवा खड़ा करके बच्चों के

दिल-दिमाग पर उसने कब्जा कर लिया। मेरी बच्चियों के कान तो छिदे थे लेकिन नाक नहीं छिदवाई गई थी। एक दिन सबने जिद की कि वे नाक भी छिदवाएँगे। बाद में पता चला, केशर ने सबको यह कहकर डरा दिया था कि जिस लड़की का नाक-कान दोनों नहीं छिदा होगा, वह अगर मर गई तो उसके नाक-कान यमराज के दूत खम्भे में बाँधकर लोहे की लाल छड़ से छेदेंगे।

अपनी बुद्धि-कौशल से वह हमजोलियों की तमाम चीजें शर्त में जीत रही थी, हर बात पर शर्त। घंटी बजाने वाला आगंतुक ड्राइवर है या अर्दली? आज शाम बिजली गुल होगी कि नहीं? इन बातों पर वह उन्हीं चीजों की शर्त लगाती जो उसके पास नहीं होती थीं। और शर्त भी एकतरफा। जैसे, यदि बिजली गुल हुई तो वह हारने वाले की पेन ले लेगी। लेकिन नहीं गुल हुई तो? वह नहीं लेगी, बस। यह नहीं कि अपनी पेन दे देगी। क्योंकि, उसके पास पेन है ही नहीं। और जो चीजें उसके पास आ जातीं, उन्हें वह शर्त से बाहर करती जाती। इस तरह मात्र डेढ़-दो महीने की अल्प अवधि में उसने जाने कितनी गुड़िया, पेन, पेंसिल, रबर, कटर, कॉपी, कलरबक्स, हेयरपिन, क्लिप वगैरह बटोर लिए थे और एक बार जो चीज उसकी हो गई, उसके खोने या दूसरे हाथ में पड़ने का तो सवाल ही नहीं था।

पत्नी कहती, "पूरी 'गिरथिन' (गृहस्थिन) होगी यह लड़की। चुन-चुनकर अपना घर भरेगी। जहाँ से जो पाएगी, हड़पेगी।''

"हड़पेगी क्या खाक,'' मैं उसे चिढ़ाता, "इसकी शादी में टूटी चारपाई और बूढ़ी गाय दी जाएगी दहेज में।''

"मैं आपकी जीप ले जाऊँगी मौसाजी।'' वह कहती।

सबसे ज्यादा सम्मान वह जीप ड्राइवर को देती थी। सबेरे उसके आते ही चाय ले जाकर उसे देती, फिर पूछती, "चाचा, आज हमें जीप मा घुमइबा?''

"हाँ बिटिया, काहे नहीं घुमाएँगे। तुम जब-जब चाय पिलाओगी, हम घुमाएँगे।''

केशर नाम का चुनाव भी उसने खुद किया। पहले उसका नाम था–केश कुमारी। पुकारने के लिए संक्षिप्त नाम 'केशा' प्रयोग में आता था। एक दिन किसी आगंतुक ने उससे नाम पूछा और 'केशा' के बजाय 'केशर' सुन लिया। तारीफ कर दी। "वाह कितना सुन्दर नाम है–केशर-कस्तूरी, रूप और गन्ध दोनों एक साथ। किसने रखा इतना अर्थवान नाम इस बाल सुन्दरी का?'' आगंतुक ने उसका मुखड़ा दोनों हथेलियों में थामकर पूछा।

तत्काल 'केशा' ने 'केशर' को पकड़ लिया। खड़ी बोली तो पन्द्रह-बीस दिन में ही बोलने लगी थी।

कॉलोनी में रहते हुए अल्प समय में वह अधिकारियों के छोटे-बड़े ओहदे, उनके अधिकारों और सुविधाओं से अपनी बाल-बुद्धि के अनुरूप अवगत हो गई। एक बार एक ट्रेनी डिप्टी कलेक्टर लड़की घर पर मिलने आई। केशर को पता चला तो वह अविश्वास के साथ बड़ी देर तक पर्दे की आड़ से उसे ताकती रही। फिर जैसे अपना संदेह मिटाने के लिए पास जाकर नमस्ते किया और पूछा, "आप 'डिप्टी साहेब' हैं?"

"जी हाँ। और आप कौन साहब हैं?"

"हम केशर हैं।" और शरमाकर भाग गई थी।

उसी दिन शाम को उसने मुझसे कहा था, "मौसाजी, हमारे बप्पा से कहिए, हमें और आगे पढ़ा दें।"

"क्यों? क्या बप्पा ने पढ़ाई बन्द करवा दिया है?"

"हाँ, कहते हैं, अब बियाह होगा।"

"नहीं, नहीं। तुम पढ़ने जरूर जाओगी। हम तुम्हारे बप्पा से कह देंगे।"

केशर की इस प्रबल इच्छा-शक्ति और मेरी मध्यस्थता का ही परिणाम था कि उसका विवाह टल गया और शिक्षा काल तीन वर्ष के लिए बढ़ गया।

मेरे घर से लौटते हुए, शर्तों में जीती हुई अपनी तमाम चीजों के साथ केशर अपने साथ दर्जा छह की किताबें-कॉपियाँ तथा पीठ पर लटकाने वाला किरमिच का एक नीला बैग भी ले गई थी।

और आज फिर केशर से मुलाकात होगी–दो साल बाद।

मित्र के आग्रह पर मुझे फिर केशर के मायके जाना पड़ रहा है। वह लड़का, जिसे वे दो साल पहले देखकर मन-ही-मन खारिज कर चुके थे, इस साल अपर सबार्डिनेट सर्विसेज के लिए चुन लिया गया था। मित्र को पता चला तो आतुर हो गए। बिना एक दिन की भी देर किए, वे मुझे साथ लेकर चल दिए। इस बार यह रिश्ता वे किसी भी कीमत पर पक्का कर लेना चाहते थे।

केशर की माँ से पता चला कि केशर अपनी ससुराल में है। उसका पति पास के एक भट्ठे पर इसी दशहरे से मुंशीगिरी करता है। केशर को लड़की पैदा हुई थी जो दो महीने की होकर पिछले हफ्ते गुजर गई थी। उसके बप्पा अगले दिन उसकी विदाई कराने जा रहे थे। उन्होंने मुझसे भी साथ चलने का आग्रह किया। केशर को देखने की इच्छा थी लेकिन उसके सामने पड़ने में थोड़ी झिझक लग रही थी। कुछ अपराध-बोध आड़े आ रहा था। लेकिन

शाम को पता चला कि दहेज की रकम घटवाने के लिए मित्र को लड़के के बाप के दरवाजे पर अभी एक दिन और जमना पड़ेगा तो मैं भी केशर की ससुराल जाने को तैयार हो गया। हम दोनों दो साइकिलों पर चले। पता नहीं क्यों, मन बार-बार पीछे लौट रहा था। नहर-डहर और घुमाव वाले ऊँचे-नीचे रास्ते पर आगे-पीछे चलते हुए मैंने अपने आप को गुनगुनाते हुए पाया। बहुत पहले किसी नारीकंठ से सुने हुए गीत की एक ही पंक्ति बार-बार।

...भइया आए बहिनी बोलवन, सुनु सखिया।

(सुनती है सखी। बहन की विदाई कराने भइया आ गए हैं।)

इस पंक्ति में ऐसा कुछ नहीं लगता जो उदास करे। लेकिन जाने क्यों, जब-जब मैंने इसे गुनगुनाया है, मेरी आँखें भर आई हैं।...राह बार-बार धुँधला रही है।

हम लोग पहुँचे तो घंटा भर दिन शेष था। पुराने खपरैल घर का पिछला हिस्सा केशर को बँटवारे में मिला था। इसलिए पिछवाड़े पश्चिम तरफ 'मोहार' (द्वार) फोड़ा गया था। सबसे आगे एक मटमैला हड्डहा बैल जाड़े से रोंए फुलाए खड़ा था। उसके बाद पुआल का ऊँचा ढेर। ढेर की आड़ लेकर धूप सेंकती बैठी थी केशर की बूढ़ी, अशक्त और लगभग अन्धी सास। बगल में एक चारपाई खड़ी थी। जमीन पर बिछे पुआल के एक सिरे पर डेढ़-दो हाथ लम्बी, तेल और मैल से चीकट एक काली कथरी सूख रही थी। कथरी से बूढ़ी तक ढाई-तीन गज लम्बे क्षेत्र में मक्खियाँ भिनक रही थीं। सायं-सायं करके हाँफती बूढ़ी, रह-रहकर खाँसती और बलगम का एक लोंदा बगल में लुढ़का देती। हर लोंदे पर मक्खियों का काला गोला जमा था।

आसपास रेह फुलाई थी, जिसमें मिले धान के दानों को एक गिलहरी ढूँढ़-ढूँढ़कर फोड़ रही थी और रह-रहकर चटचटा देती थी। हम लोगों को देखकर वह नीम के पेड़ पर चढ़ गई।

हम लोगों ने साइकिल खड़ी करके बूढ़ी को अभिवादन किया और पास खड़ी चारपाई बिछाकर बैठ गए। मक्खियाँ एक बार जोर से भनभनाईं, फिर अपनी-अपनी जगह जम गईं। सामने ओसारे में कुछ अर्धनग्न बच्चे भागने कूदने वाला कोई खेल खेलते हुए ठंड से लड़ रहे थे। मात्र गंदी बनियान पहने। एक सबसे छोटा बच्चा आँसू, नाक और राल चुआता बैठा हुचक-हुचककर रो रहा था।

बूढ़ी हम लोगों को पहचान न सकी तो पूछा, "कहाँ घर पड़े?''

केशर के बप्पा ने बताया तो बूढ़ी संकोच में पड़ गई। घुटने तक मुड़ी धोती को खींचकर पैर ढाँपने लगी। घर-परिवार का हालचाल पूछा। फिर नातिन की याद करके रोने लगी।

खेलते बच्चों ने आकर घेर लिया। मैंने देखा, बूढ़ी वही स्वेटर पहने थी, जिसे चार साल पहले पत्नी ने केशर को दिया था।

तब तक केशर पड़ोस से कलछुल में आग लेकर लौटी।

हम लोगों को पहचाना तो घूँघट उठा दिया। आग ओसारे के चूल्हे में रखकर मेरे पैरों से लिपट गई। फिर तो जो कारन करके और हिचक-हिचककर रोना शुरू किया उसने कि उसकी 'पिहिक' से कलेजा दहलने लगा।...

"अरे या मोरे पापा। हमरी सुधिया भुलाया मोरे पापा।''

झर-झर झरते आँसू से मोजा भीगने लगा। विलाप की कातरता ने अड़ोस-पड़ोस की औरतों को खींच लिया। भीड़ बढ़ने लगी। लगा, जैसे विलाप करती केशर ताना मार रही थी कि मेरे बप्पा तो गरीब थे, असमर्थ थे। लेकिन आपको तो ऊपर वाले ने समर्थ बना दिया था। आप तो मेरे लिए कुछ कर सकते थे। जितने दिन मौका मिला, आपकी सगी लड़की से बढ़कर मैंने आपकी सेवा की थी। देना नहीं था तो 'माँग-माँग' किस मुँह से कहा था। एक बार मुँह खोलकर माँग लिया तो केशर के घर का रास्ता ही भूल गए।

मेरी आँखें धारोधार बहने लगीं। सचमुच, इस बेटी के लिए लगकर कुछ किया जा सकता था जो नहीं किया गया। बल्कि अपने साथ रखकर, आराम और साधन सम्पन्नता की दुनिया से परिचय कराकर इसके दुख को और दूना कर दिया मैंने। यह वह केशर नहीं थी जो पहले थी। यह तो उसका कंकाल मात्र थी। इस कनकनाती ठंड में मात्र नायलान की घिसी मटमैली साड़ी और सूती ब्लाउज में काँपती।

मैं बेचैन हो गया। किन शब्दों में धीरज बँधाकर चुप कराऊँ।

"मेरी पुतरी रे। केशर बेटी रे। चुप हो जा रे।'' मेरे बाद उसने बाप के पैर पकड़ लिए।

इकट्ठा औरतों ने मुझसे मेरा परिचय पूछा। फिर बतलाया कि बहू अक्सर आपको याद करती है।...आपने ही उसे सिलाई मशीन दी है? आप ही के पास रहकर सिलाई भी सीखी है न?

संयत होकर केशर ने परिवार के, अड़ोस-पड़ोस के एक-एक सदस्य की कुशल क्षेम पूछी। फिर एक मउनी में लाई-गुड़ और लोटे में पानी लाई। लड़कों के झुंड को उसने एक मद्धिम झिड़की से भगा दिया। हम लोग लाई चबाने लगे।

दो छोटी-छोटी लड़कियों ने फिर आकर घेरा और मउनी में रखे गुड़ को एकटक घूरने लगीं।

केशर के बप्पा ने उन्हें थोड़ा-थोड़ा लाई-गुड़ देते हुए बताया, "केशर की जेठानी की लड़कियाँ हैं।''

लइया-गुड़ को एक ही झोंक में मुँह के हवाले करके दोनों ने फिर मउनी पर नजर टिका दी। और खटिया की पाटी पकड़कर कूदने-झूमने लगीं।

बूढ़ी के पास पुआल पर बैठी केशर ने बुलाया, "ए गुड़िया इधर आओ।'' फिर उठकर दोनों को बाँहों के घेरे में पीछे ले गई और समझाने लगी।

"वहाँ नहीं खड़े होते बिटिया। जानती हो, कौन हैं?''

"हाँ। माई कहत रही, नाना हैं।'' बड़ी ने कहा।

"नाहीं बिटिया। उ साहेब हैं। आओ, हम तुम्हें घर से दूसरे मउनी में लाई-गुड़ देते हैं।'' और दोनों को लेकर अन्दर चली गई।

अँधेरा होने लगा था। केशर ने ओसारे में अलाव जला दिया। बूढ़ी के साथ हम दोनों अलाव तापने लगे। वह बैल को चारा देने और चूल्हे-पानी में लग गई। हम लोग बूढ़ी से हाल-चाल लेने लगे। बूढ़ी ने हाँफ-हाँफकर जो कुछ बताया, उसका सार यह था कि उनकी पतोहू बड़ी मरदाना औरत है। बेटा तो जब से भट्ठे पर रहने लगा है, हफ्ते-हफ्ते पर एक दिन के लिए घर आता है। खेती-बारी का भारी मेहनत वाला काम भी नहीं कर पाता। पतोहू अकेले दम पर घर-गृहस्थी का सारा काज सँभालती है। इसी जंजाल के चलते छीमी जैसी बिटिया निमोनिया से मर गई। इसी की सेवा में जिन्दा हूँ भइया, नहीं तो इस जाड़े में उठ जाती। दिन भर घर के 'भरम जाल' से जूझने के बाद आधी-आधी रात तक सिलाई में आँख फोड़ती है। गाँव देश में इतना काम ही कहाँ मिलता है। जो चार-छह रुपए का काम कभी मिला भी तो उसमें आधा उधार। किसी तरह नोन-तेल भर का निकालती है तो देखकर जेठ-जेठानी की आँखें फूटती हैं। जेठ अक्सर लड़ता है। झूठ-मूठ कलंक लगाता है कि सिलाई तो बहाना है, दुनिया भर के लुच्चे शोहदे, छोटे-बड़ों के लौंडे-लपाड़े अँधेरा होते ही दुआर पर मँडराने लगते हैं। इसका आदमी तो भट्ठे पर जाकर आँख की ओट हो जाता है। मैं खानदान की पगड़ी उछलते नहीं देख सकता। किस-किससे रार मोल लेता फिरूँ। बहुत-बहुत सिलाई-कढ़ाई वाली देखा है। ई धन्धा करना है तो बाजार में जाकर दुकान खोले। जेठानी अलग रहा चलते कुफार बोलती है। चन्दर जैसी लड़की इन लोगों की नजर में बबूल का काठ हो गई है। इसका आदमी पहले एकदम गऊ था लेकिन कुफार सुनते अब वह भी कभी-कभार सनक जाता है। किसी-किसी दिन आधी रात में आकर दरवाजा खोलवाता है।

हम लोग चुपचाप सुनते रहे।

थोड़ी देर बाद केशर के बप्पा ने कहा, "हम लोग केशर की विदाई कराने आए हैं बूढ़ी। जगह बदल जाएगी तो बिटिया के मन में पैठी, बेटी की मौत की गाँठ कुछ फटेगी।''

बूढ़ी चुप हो गई। कुछ देर चुप ही रही। फिर बोली, "अपनी बिटिया से ही कहिए। वही मालकिन है घर की।''

थोड़ी देर बाद केशर ने खाना लगा दिया। खाने में उसने आज मटर की पूरियाँ बनाई थीं तो इसे अभी तक याद है मेरी पसन्द।

केशर के बप्पा ने खाते-खाते बात चलाई, "हम लोग तुम्हारी विदाई कराने आए हैं बेटी। नातिन की मौत सुनने के बाद तुम्हारी माँ अक्सर रोती रहती है।''

केशर तुरन्त कुछ नहीं बोली। चुपचाप पूरियाँ सेंकती रही। थोड़ी देर बाद उसके बप्पा के फिर अपनी बात दोहराई।

"मेरा चलना अब कैसे हो पाएगा बप्पा? बूढ़ा बैल, बूढ़ी सास। इन्हें दाना-पानी कौन देगा?''

"क्यों। तुम्हारी कोई ननद नहीं आ जाएगी कुछ दिनों के लिए। तीन-तीन हैं। कहो तो हम एकाध हफ्ते बाद फिर आएँ। वहाँ चलोगी, डीड-पानी बदलेगा तो मन कुछ उछाहिल होगा। दुख का जाला कुछ कट जाएगा।''

"दुख तो काटने से ही कटेगा। बप्पा।'' केशर चूल्हे की आग तेज करते हुए बोली, "भागने से तो और पिछुआएगा।'' चेहरे पर आग की लाल लपट पड़ रही थी। वह समाधिस्थ-सी लग रही थी। यह केशर थी। एक निश्चिन्त निर्द्वंद्व खिलखिलाती बेटी की भूमिका से कितनी जल्दी दुख भुजती पुरखिन की भूमिका में उतरना पड़ा था। मैं विषादग्रस्त हो गया। आखिर बोल ही पड़ा, "तुम्हारे लिए मैं भी कुछ नहीं कर सका बेटी। इसका मुझे बहुत अफसोस है।''

"अरे नहीं पापा।'' केशर ने ताजी सिंकी पूड़ी मेरी थाली में डालते हुए कहा, "मेरी सोच में अपनी देह न गलाइएगा। जितने दिन आपकी बारी-फुलवारी में खेलना-खाना बदा था, खेले-खाए। अब मेरा हिस्सा मुझे 'अलगिया' मिल गया है। तो जैसा भी है, उसे भोगना होगा, खेना होगा। माँ-बाप जनम के साथी होते हैं पापा। 'करम-रेख' तो सभी की न्यारी है। जब जनक जैसे बाप जो राजा भी थे और 'बरम्ह-ग्यानी' भी, जिनकी इतनी औकात थी कि सौ बेटी दामादों को घर-जमाई रखकर उमर भर खिला सकते थे–तीन लोक के मालिक से बेटी ब्याहकर भी उमर भर उसे सुखी देखने को तरस गए तो हम गरीब लोगों की क्या औकात?''

यह केशर नहीं, केशर के रूप में मूर्त हिन्दुस्तानी नारी का हजारों-हजार पीढ़ियों से

विरासत में मिला अनुभव और यथार्थ को उसके ठोस व्यावहारिक रूप में पकड़ लेने की उसकी अन्तश्चेतना बोल रही थी। इस हकीकी दर्शन को सहसा किसी किताबी तर्क से काटने का दुस्साहस सम्भव नहीं था।

थोड़ी देर कोई कुछ नहीं बोला।

अन्तत: उसके बप्पा ने अपनी आशंका से उसे सावधान कर देना चाहा, "सुना है, तुम्हारे जेठ-जेठानी उल्टे-सीधे कलंक लगाते हैं। तुम तो खुद ही समझदार हो बिटिया। जाने-अनजाने ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिए कि...''

पूड़ी बनाते केशर के हाथ पल भर को रुक गए। उसने सीधे-सीधे बप्पा की आँखों में ताका, "यह क्या कहते हैं बप्पा?''

फिर बिलकुल ही कोई कुछ नहीं बोला।

यात्रा की थकान थी। नींद जल्दी आ गई। लेकिन उतनी ही जल्दी उचट भी गई। कोई रोता है कि गाता है? चारों तरफ सघन अन्धकार। भयावह सन्नाटा। और बीच में उभरता यह दर्द भरा पतला नारी स्वर। मैं दबे पाँव मँड़हे से ओसारे में गया। आवाज केशर की थी। अन्दर की कोठरी से आ रही थी। बलिया प्रवास के दौरान सुना, करुण-कवि धीरज का गीत–सीता का दर्द।

...सीताजी को गर्भावस्था में पुन: बनवास हो गया है। लक्ष्मण उन्हें धोखे से जंगल में छोड़ आए हैं। राजा जनक को खबर मिलती है तो अधीर हो जाते हैं। तुरन्त रथ लेकर मंत्री जी को भेजते हैं–जाकर जनकपुर लिवा लाइए। कहना तुम्हारे माँ-बाप का रोते-रोते बुरा हाल है।

लेकिन सीताजी मंत्री जी को समझा-बुझाकर वापस भेज देती है।

मत रोवे माई, मत रोवे बपई,

मत रोवे भइया, हजारी जी-ई-ई,

अपने करमवा माँ 'जरनि' लिखाई लाए,

का करिहै बाप महतारी जी-ई-ई।

अब मंत्री कैसे समझाएँ कि बात केवल बेटी के दुख-दर्द की ही नहीं है। इससे बाप की प्रतिष्ठा भी जुड़ी है। दुख-अभाव के चलते या कैसे भी अगर बेटी का पैर कहीं ऊँच-नीच पड़ गया, कोई ऐसी-वैसी बात हो गई, जिससे बाप की मूँछ नीची होती हो तो...?

क्या कहते हैं मंत्रीजी। इसके माने बप्पा हमें अभी तक समझ ही नहीं सके। बप्पा से जाकर कहिएगा–

मोछिया तोहार बप्पा 'हेठ' न होइहै

पगड़ी केहू ना उतारी, जी-ई-ई

टुटही मँड़इया मा जिनगी बितउबै,

नाही जाबै आन की दुलारी जी-ई-ई।

भीतर जलती लालटेन के प्रकाश की पतली रेखा किवाड़ों की फाँक से बाहर आ रही है। मैं अन्दर झाँकने का प्रयास करता हूँ। एक हाथ में कैंची पकड़े, सिलाई मशीन को आगे रखे बैठी है केशर। चेहरा सामने है, आँखें आँसुओं से भीगी। पलकें बन्द। मशीन में एक अधसिला कपड़ा लगा है।

मैं दबे पाँव वापस लौटता हूँ। निविड़ अन्धकार में मेरी आँखें देख रही हैं–सिलाई मशीन के सामने बैठी गाते-गाते रोती केशर।...शर्त जीतकर छोटी-छोटी चीजें बटोरती केशर।...छत्राकार घाघरा फैलाकर नाचती केशर।...खिलखिलाती केशर।...और बाप के कन्धे को थपथपाकर आश्वस्त करती केशर, कि–

नाहीं जाबै आन की दुआरी हो बपई। नाहीं जाबै...

ताऊजी

नवीन जोशी

ताऊजी जब इस घर में आए थे तो उनके हाथ-पैरों में काफी जान थी, हालाँकि साठ से ऊपर के हो चुके थे। मलेशिया के ऊँचे पाजामे पर मिलिट्री की लम्बी कमीज और उस पर काला बास्कट, सिर पर ऊपर को मोड़ी हुई बँदरिया टोपी, एक हाथ में घिंगारु की जाँठी और दूसरे कन्धे पर भारी पोटली के साथ जिस दिन ताऊजी इस गली में 'चिन्तामणी जोशिज्यू' का मकान पूछते हुए, सी.एम. जोशी, सेक्शन ऑफिसर, सिंचाई विभाग की तख्ती लगे दरवाजे से भीतर दाखिल हुए थे, उस दिन वे पूरे घर में एकदम फिट हो गए थे। पूरा घर चहक उठा। सब लोग बैठक में जमा हो गए थे। कन्धे की भारी पोटली को मेज पर रख, छड़ी को दीवार के कोने से टिका, मसनद को किनारे धकेल कर वे दीवान पर पालथी मारकर जम गए थे और बताने लगे थे कि डेढ़ रुपया माँगते रिक्शवाले को किस तरह वे सिर्फ बारह आने में राजी कर लाए थे–"देखो भाई रिक्शेवाले, तुम हमको गँवाड़ी पहाड़ी मत समझना, चालीस बरस शहरों में रहकर सरकारी नौकरी की है मैंने और कभी किसी को एक धेला ज्यादा नहीं दिया।''

ताऊजी के पास बैठने में वह सुख था उस दिन कि चाय बना लाने के लिए माँ और दोनों बेटियों में इशारे का संघर्ष काफी देर चला था और अन्तत: हार मिसेज जोशी को ही माननी पड़ी थी। पूरी गली में बड़ी तेजी से खबर फैली थी कि मिन्नी के घर बड़े मजेदार ताऊजी आए हैं। जब ताऊजी की बड़ी पोटली खुली थी तो भट, गहत, बड़ी–पपटौल की

किस्तें बारी-बारी से गली के पंतजी, शाहजी, चौराहे के पांडेजी, बिष्टजी और पार्क वाले बहुगुणा जी और उप्रेती जी के घर पहुँची थीं। मिन्नी ने अपनी सहेलियों को पहाड़ी चुड़काणी और रसभात का रसास्वादन कराने के लिए खास तौर पर न्यौता था। मिसेज जोशी ने सीधे पल्ले की धोती पहन, आँचल सिर पर रखकर पड़ोसन मिसेज सिंह को बड़े गर्व से बताया था–"मेरे जेठ जी आए हैं। हमारे यहाँ जेठ से बड़ा परदा किया जाता है।" और कद्दू जैसी ककड़ी का एक चीरा उनके हवाले किया था–"रायता बनाइएगा, बहुत स्वादिष्ट होता है।"

ताऊजी आते ही पूरे घर में फिट-फिट लगे थे, लेकिन धीरे-धीरे अनफिट होते गए। बड़ी लड़की मिन्नी ने पाया कि बैठक का कमरा अब पहले की तरह साफ नहीं रहता। दीवान की चादर और सोफे-कुर्सियों की गद्दियाँ ताऊजी पैर रख-रखकर गन्दी कर देते हैं। बीड़ी के बुझे टुकड़े यहाँ-वहाँ कोनों में फेंक देते हैं और गंदे कपड़े खिड़की-दरवाजे के पल्लों में टाँगे रहते हैं। कोई आ जाता है तो बड़ी शरम हो जाती है। छोटी लड़की कान्ता को तो ताऊजी का मलेशिया का सदाबहार पाजामा और मिलिट्री वाली लम्बी कमीजें बहुत भद्दी लगने लगीं। पप्पू को ताऊजी के बोलने के ढंग से शिकायत हो गई–"क्या श-श बोलते रहते हैं। मेरे दोस्त चिढ़ाते हैं कि पहाड़ियों को 'स' बोलना तक नहीं आता।" इस तरह ताऊजी बैठक के लिए अनफिट हो गए। उनका पलंग भीतर के कमरे में–जहाँ पप्पू का पलंग लगा है–लगा दिया गया। ताऊजी ने एक-दो बार प्रतिरोध भी किया–"बेटा मुझे बाहर के कमरे में अच्छा लगता है।" पर थोड़ा सख्ती से उन्हें बताया गया कि बैठक तो सिर्फ आने-जाने वालों के लिए ही होती है। मिन्नी बैठक को झाड़-पोंछकर बन्द कर देती है। फिर भी ताऊजी बैठक में जाने से चूकते नहीं। जब भी कोई आता तो ताऊजी उससे मिलने पहुँच जाते और खुलकर बातें करने लगते–चाहे वह बच्चों के दोस्त ही क्यों न हों। उनका सबसे पहला सवाल होता–"तुम भी पहाड़ के हो?" वह पहाड़ का नहीं होता तो उसे पहाड़ के बारे में बताते और यदि पहाड़ का होता तो उसके रिश्तेदारों के ताने-बाने टटोलते–"कहाँ के हो? गोत्र क्या हुआ। ननिहाल कहाँ हुआ? लड़की-लड़के की शादी कहाँ-कहाँ की है? ससुराल किन के यहाँ हुआ?...हमारे सम्बन्ध तो खांतोली के पंतों से लेकर दीवान खानदान के जोशियों तक ठहरे।"

उनकी बातों का सिलसिला खतम होने को नहीं आता तो किसी न किसी को टोकना पड़ता–"ताऊजी, आप भी कहाँ की बातें करने लगे!" तब ताऊजी हें-हें-हें करते हुए उठ जाते–"बेटा, तुम लोग क्या जानो, कितना ऊँचा खानदान है हमारा।"

एक दिन ताऊजी ने मिन्नी की सहेली को टोक दिया। बहुत देर से दोनों बतिया रही थीं और ताऊजी बीच-बीच में परेशान हो रहे थे–"इसने तो बड़ी देर लगा दी! अब अँधेरे में अकेली अपने घर जाएगी ये? वगैरह-वगैरह। काफी शाम गए जब वह जाने लगी तो ताऊजी ने उसके सामने ही कह दिया–"इतनी बड़ी ढाँट जैसी हो गई है। इनके माँ बाप को फिकर नहीं होती होगी इनकी, जो इतनी देर तक इधर-उधर फिरा करती हैं। पहाड़ में

होती तो दो-तीन बच्चों की माँ बन जाती।''

उस दिन पहली बार ताऊजी के खिलाफ मुखर विद्रोह हुआ। घर में सबकी राय थी कि ताऊजी ने यह बहुत गलत किया। मिन्नी ने तो रोते-रोते उन्हें जाने क्या-क्या कह डाला। लेकिन खुद ताऊजी नहीं समझ पा रहे थे कि उन्होंने ऐसा क्या गलत कर दिया। उसी रात तय हुआ कि ताऊजी को ऊपरी मंजिल पर भेजा जाना चाहिए। नीचे रहेंगे तो हर आगंतुक के सामने पड़ेंगे, मलेशिया का चढ़ा-चढ़ा पाजामा पहनकर बार-बार बैठक में आएँगे। लोग भी कहते होंगे, कैसे रहते हैं इनके ताऊजी।

इस विरोध से उस दिन ताऊजी एकाएक सहम गए थे। उन्हें पहली बार पराएपन का अहसास हुआ था। वे कहना चाहते थे कि मेरे घुटनों में वात है। सीढ़ियाँ चढ़ने में दुखते हैं। मैं नीचे ही रहूँगा। पर कह नहीं सके। मिस्टर जोशी ने ही भाई का पक्ष रखा था–"भाईसाहब को नीचे ही रहने दो। ऊपर-नीचे आने-जाने में तकलीफ होगी।'' लेकिन इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे इस पर बहस करने लगे थे कि ऊपर ताऊजी की चारपाई कहाँ लगेगी। नीचे की मंजिल में बैठक, रसोई, पूजा-कक्ष, भंडारगृह, शौचालय और आँगन के अलावा एक ही शयन-कक्ष था, जिसमें पप्पू के साथ कुछ दिन गुजार चुकने के बाद अब ताऊजी को ऊपर की मंजिल में कहीं खपाना था। ऊपर एक कमरा बड़े लड़के और बहू का है। दूसरा मिस्टर और मिसेज जोशी का। तीसरा कमरा दोनों लड़कियों के कब्जे में है और चौथे छोटे कमरे में विश्वविद्यालय में एम.ए. के छात्र मझले बेटे का एकछत्र साम्राज्य है। मझले बेटे कतई राजी नहीं हुए कि ताऊजी उनके कमरे में आएँ–"मेरे दोस्त आते हैं, पढ़ाई होती है।''

तय हुआ कि ताऊजी की चारपाई छत को जानेवाली सीढ़ी के नीचे बनी कोठीनुमा जगह में लगाई जाएगी, जहाँ फिलहाल घर का फालतू, टूटा-फूटा सामान पड़ा है। लड़कियों की तरफ से थोड़ा ऐतराज हुआ कि उनका कमरा ठीक सामने पड़ता है। इस पर मिस्टर जोशी ने उन्हें डाँट दिया और मिसेज जोशी ने मध्यस्थता करके समझौता करा दिया। लड़कियों को उन्होंने समझाया कि आखिर ताऊजी की चारपाई परदे से आड़ में भी तो की ही जाएगी। इस तरह बैठक के लिए अनफिट हुए ताऊजी निचली मंजिल से भी अनफिट होकर ऊपर आ गए।

ऊपर आकर ताऊजी को अहसास हुआ कि इस घर में किसी गैर जरूरी चीज की तरह–जिसे फेंका भी नहीं जा सकता–उन्हें किसी कोने में खपाने की कोशिश की जा रही है। यह अहसास होते ही वे अचानक और बूढ़े हो गए या कहें कि उन्हें पहली बार बुढ़ापे का अहसास हुआ। आज तक वे अपने भीतर हमेशा एक जिन्दा, जवान आदमी महसूस किया करते थे, जो खूब उछलता, कूदता और बोलता, चिल्लाता था, जिसमें जोश और उत्साह था। लेकिन अब उन्हें लगा कि वह आदमी एकाएक मृतप्राय हो गया है। उसके हाथ-पैर काँपने लगे हैं, शरीर दुखने लगा है, आवाज डूबने लगी है...।

ताऊजी ने जिन्दगी को एक तूफान की तरह जिया था। चौदह-पन्द्रह की उम्र में पहाड़ से भाग आए थे। खलासी से शुरू हुई उनकी नौकरी दफ्तरी के पद पर समाप्त हुई थी। वे आज भी सही-सही यह गिना सकते हैं कि किस तारीख, किस महीने, किस सन् को वे किस साहब से लड़े थे।

किस तारीख, किस महीने, किस सन् को किस साहब के साथ किस गाँव के दौरे पर गए थे और वहाँ साहब से मिलने आए लोगों से किस तरह कितने रुपए कमाए थे। कैसे उन्होंने अपने छोटे भाई को, इसी चिन्तामणी जोशी को जो आज सी.एम. जोशी, सेक्शन आफिसर बना हुआ है, लड़-झगड़कर क्लर्की में लगाया था, जबकि उस समय वह हाईस्कूल भी पास नहीं था। किस तारीख को वे रिटायर हुए थे और उस दिन किस साहब ने उनके बारे में क्या कहा था। आदि-आदि।

जीवन भर उन्होंने किसी की नहीं सुनी। बेहद जिद्दी रहे। हमेशा अपनी ही बात पर डटे रहे। एक बार कह दिया शादी नहीं करूँगा तो सचमुच आजीवन कुँवारे रहे। पिताजी शादी तय करके उन्हें लिवाने आए। जबर्दस्ती पकड़ ले गए घर। पर जिस दिन बारात जानी थी, उसकी पहली रात जब सब सोए थे, चुपचाप भाग आए। रात के अँधेरे में नौ मील का बीहड़ जंगल पार किया, लेकिन शादी नहीं की तो नहीं की। हमेशा 'लड़ाकू और खतरनाक' समझे जाते रहे वे। पर आज उन्हें आज क्या हो गया है, वे समझ नहीं पाते। वे चाहते हैं उसी तेजी से जीना, पर लगता है तेजी उनमें कभी रही नहीं।

छत को जानेवाली सीढ़ी के नीचे की जगह में परदे की आड़ में चारपाई पर लेटे-लेटे वे अक्सर पुराने दिनों को याद कर वह तेजी, वह जोश लौटा लाना चाहते हैं। निश्चय करते हैं कि अपने को इस तरह गैर जरूरी चीज नहीं बनने देंगे। आखिर पैंसठ साल के आदमी की कोई कीमत होनी चाहिए। पर जब कान्ता या मिन्नी या कोई और रुपया पकड़ाकर उन्हें बाजार भेजते हैं–"ताऊजी, पाँच रुपए की खोए की मिठाई ले आइए," तो वे चुपचाप उठकर सीढ़ियाँ उतरने लगते हैं।

हाँ, अब उनके साथ ऐसा भी होने लगा है। पता नहीं यह कब और कैसे शुरू हुआ, पर एक दिन उन्होंने पाया कि इस घर में उनका एक इस्तेमाल होने लगा है। जब भी किसी को बाजार से कोई चीज मँगानी होती है तो सबको एकसाथ ताऊजी याद आते हैं। पहले शायद कहने का ढंग दूसरा था–"ताऊजी सामने वाली दुकान से चाय की पत्ती ला देंगे?" मना वे तब भी नहीं करते थे, लेकिन अब पूछने की जरूरत भी समझी नहीं जाती–"ताऊजी, धोबी के यहाँ से कपड़े ले आइए।" मिस्टर जोशी को शाम के खाने के साथ दही जरूर चाहिए। खाने का वक्त होते ही वे अपने कमरे की खिड़की से दो रुपए का नोट गिराते हुए कहते हैं–"दही ले आओ भई।" मिसेज जोशी रसोई से ही पुकारती हैं–"मिन्नी, कान्ता, पप्पू, अरे अपने पिताजी के लिए दही ले आओ तो।" पर सब अपने में मस्त रहते हैं। कोई जवाब भी नहीं देता तो वे बड़बड़ाने लगती हैं–"क्या करूँ, कोई सुनता ही नहीं। अभी थोड़ी देर में चिल्लाने लगेंगे, दही नहीं मँगाया..." 'तब' दुखते घुटनों के बावजूद ताऊजी उठ जाते हैं

और पीछे से मिसेज जोशी की आवाज सुनाई देती है–"रोज-रोज ताऊजी को ही जाना पड़ता है।'' इसी तरह रोज सुबह दूध और अक्सर शाम को सब्जी लाना भी उनके हिस्से आ गया है।

एक दिन मिस्टर जोशी ने देख लिया ताऊजी को दही लाते। उस दिन बहुत बिगड़े वे बच्चों पर–"शरम नहीं आती सालो, तुम्हारे बाप से बड़ी उमर के हैं वे और तुम...।'' बहुत देर तक बिगड़ते रहे थे मिस्टर जोशी उस दिन। पर दूसरी शाम फिर ताऊजी को ही जाना पड़ा था दही लाने। तब ताऊजी को अपने भाई के लिए भी चिन्ता जागी–यह भी एक दिन मेरी ही तरह गैर-जरूरी चीज हो जाएगा इस घर में। अभी तो कमा रहा है न!

ताऊजी अनेक बार सोच चुके हैं साफ-साफ कहने की कि मैं कोई नौकर नहीं हूँ। उन्हें याद आता है, एक बार साहब ने उनसे कहा था–"भोलादत्त, शाम को हमारी कोठी चले जाया करो। मेम साहब को बाजार से सामान मँगाना होता है।'' उन्होंने खरा-खरा जवाब दे दिया था–"हुजूर, सरकारी नौकर हूँ, मेम साहब का घरेलू नौकर नहीं।'' साहब ने गुस्से में एक झापड़ लगा दिया था तो वे अपना जूता लेकर पिल पड़े थे। उन्हें आज भी हँसी आती है, साला मार खाकर सस्पेंड करना भी भूल गया था। अक्सर कहता था–एक भोलादत्त ही है स्वाभिमानी आदमी। पर आज कहाँ गया उनका स्वाभिमान? आज क्यों नहीं साफ-साफ कह पाते वे?

किस बात का डर है उन्हें? निकाल देंगे घर से? निकाल दें! बुलाया क्यों था! चिट्ठी तो बड़े प्यार से लिखी थी–"ताऊजी, बुढ़ापे में गाँव में क्या करेंगे। यहाँ आकर आराम से रहिए। पिताजी का कहना है कि चिट्ठी पाते ही चले आइए...।'' तो, यही आराम देने के लिए बुलाया था! लेकिन यह सब उनके भीतर से बाहर आ नहीं पाता। बस, कुत्ते को गोद में लेकर पुचकारते हैं–मुझसे तो तू ही अच्छा है यार।

ऐसे में अपने पहाड़ की बहुत याद आती है उन्हें। एक दिन हिम्मत करके अपने भाई से कहा भी था उन्होंने–"पुरखों की थाती ठहरी वहाँ। आखिरी दिन वहीं गुजारता तो...।'' इस पर मिस्टर जोशी ने साफ कह दिया था–"पुरखों की थाती तो जरूर ठहरी, पर एक गिलास पानी देने वाला भी कोई है वहाँ? किसी दिन ठोकर खाके मरे मिलोगे। पता भी नहीं चलेगा। यहाँ क्या तकलीफ है तुम्हें?''

अब वे क्या बताएँ क्या तकलीफ है यहाँ। कोई साथ बैठ जाए, सुख-दुख की चार बातें कर ले। और क्या चाहिए इस उम्र में। यहाँ कौन बैठता है उनके साथ! बैठक में कोई आया भी तो वहाँ जाना नहीं ठहरा। अरे, पहाड़ में तो परधानज्यू तम्बाकू भर लाते। हरज्यू के मन्दिर में शिलंग के नीचे बैठकर सुख-दुख की बातें करने लगते। देबिया और मधुरिया तो अब भी बैठते ही होंगे। बैठे-बैठे पन्ना के गधेरे के बाँजों का पहरा करते। नाश हो पल्ले गाँव की खश्याणियों का, सारे बाँज काट के हमारे थारे का पानी सुखा दिया है। कैसा ग्वाँ-ग्वाँ-ग्वाँ पानी आता था पहले। पिरमा की घरवाली, हरज्यू उसके बच्चों को बचाए रखें, बेचारी

कभी-कभार चाय भी बना लाती। अरे, वहाँ कोई अच्छे फैशन वाले कपड़े देखकर थोड़ी प्यार करता है। दिल होता है आदमी का सुन्दर, दिल। कपड़े एक दिन फट ही जाते हैं। आदमी एक दिन बूढ़ा हो ही जाता है। कहने को शहर कह दिया। पढ़े-लिखे लोग रहते हैं यहाँ। सड़क में कोई आदमी मर रहा है तो मरे। इन्हें तो दफ्तर जाने की देर होती है। अरे, पहाड़ में अपना तो अपना, अनजान बटोही को भी दूर से आवाज देकर पूछ लेते हैं–हँ हो महाराज, कहाँ के हो? कितनी दूर जा रहे हो? इस तेज कड़क घाम में थोड़ी देर छाया में बैठ लो, ठंडा पानी पी लो। लो, ये चार दाने आलूबुखारु लेते जाओ। रास्ते में गला सूख जाता है।...आदमी की दुख-तकलीफ आदमी नहीं पूछेगा तो कौन पूछेगा!

उनका मन एकदम पहाड़ पहुँच जाने को करने लगता है। पर चिन्तामणी भी ठीक कहता है। एक गिलास पानी देने वाला भी कौन है वहाँ? शादी की होती तो...हुँ, खाली बात, शादी वालों को ही कौन-सा सुख मिल रहा है यहाँ!

तीन दिन से ताऊजी का उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया है। घुटनों का दर्द अचानक बहुत बढ़ गया है। परसों जब रोज की तरह सुबह-सुबह नींद खुलीतो उनसे उठा ही नहीं गया। घुटनों ने मुड़ने से ही इनकार कर दिया। किसी तरह टट्टी पेशाब गए। फिर दुर्गा-कवच का पाठ करते हुए नहाया भी। किसी तरह पूजा की कोठरी में भी बैठे रहे, पर मंत्रोच्चार घुटने के दर्द की टीस में रुक-रुक जाता रहा। दूध लेने जाने का वक्त हुआ तो उन्होंने पप्पू को जगाने की बड़ी कोशिश की। पर वह कुनमुनाकर, "ताऊजी आप ले आओ ना'' जैसा कुछ बुदबुदाकर करवट बदलकर सो गया। ताऊजी ने घुटनों के दर्द और चल नहीं पाने की अपनी व्यथा जैसे अपने से ही दोहराई, पप्पू पर उसका कोई असर नहीं हुआ, जब से दूध लाना ताऊजी की 'जिम्मेदारी' बन गया है, तब से मिसेज जोशी भी सुबह इत्मीनान से उठती हैं। ताऊजी कुछ देर असमंजस में खड़े रहे। फिर दर्द को सहने की कोशिश में होंठों को काटते हुए धीरे-धीरे बाहर निकल गए।

लेकिन लौटते हुए आधे रास्ते में हिम्मत चुक गई। रोकते-रोकते भी आँसू निकल आए और वे दूध का डिब्बा सँभालकर बीच गली में ही बैठ गए। पसीने से तर। शाहजी के बेटे ने सहारा देकर उन्हें घर तक पहुँचाया। मिस्टर जोशी बच्चों पर तो बिगड़े ही, ताऊजी से भी नाराज हुए–"तकलीफ है तो बताना चाहिए। क्या जरूरत थी बाहर जाने की। लोग क्या कहेंगे।'' मिसेज जोशी भी बिगड़ीं–"यह तो बाहर बदनामी वाली बात हो गई।''

मिस्टर जोशी दफ्तर जाते समय मझले बेटे से कह गए–"दोपहर में भाई साहब को अस्पताल ले जाना। मैं डॉक्टर को फोन कर दूँगा।''

मिसेज जोशी ने कई बार याद दिलाया–"ताऊजी को अस्पताल दिखा लाओ रे!'' मगर मझले बेटे ने ट्यूटोरियल का बहाना कर बात पप्पू पर टाल दी। पप्पू बड़ी ना-नुकुर के बाद इस शर्त पर राजी हुआ कि वह ताऊजी के साथ रिक्शे पर नहीं बैठेगा। अपनी साइकिल से जाएगा।

ताऊजी के भीतर विस्फोट होना चाह रहा था–सालो, तुम तो तुम, तुम्हारे बाप का भी गू-मूत पोंछा है मैंने। मुझसे दस-बारह साल छोटा है। बचपन में जगह-जगह हगता फिरता था और मैं इन्हीं हाथों से पोंछा करता था। देखो सालो, नाखूनों की जड़ों में अब भी कहीं लगा होगा...और तुम्हें मेरे साथ रिक्शे में बैठने में शरम आ रही है! वे चाहते रहे पर यह विस्फोट नहीं हो पाया। सीले पटाखे की तरह फुस्स होकर रह गया–अरे, इस उम्र में क्या इलाज होगा। अब तो किसी दिन पक्का इलाज ही होना है।

रिक्शे पर अस्पताल जाते हुए वे अपने भीतर के आदमी को जगाने की अन्तिम कोशिश करते रहे। लेकिन उन्हें लगा कि वह सचमुच मर गया है। उन्होंने एक नजर अपने आसपास की तेज रफ्तार दुनिया को देखा और फिर अपने शिथिल हाथ-पैरों को। इस तेज रफ्तार दुनिया में दो पैर उनके भी हुआ करते थे। अब वे धारा से अलग जा पड़े हैं–बिलकुल अलग। उनके भीतर जैसे कोई बार-बार कह रहा है–मर गए हो भोलादत्त, तुम मर गए हो। और वे इनकार में गरदन भी नहीं हिला पाते।

आपा मैया

सारा राय

दिन भर पानी बरसता रहा था। और अब, जब दिन ढल रहा था, आसमान धुलकर एकदम साफ, सुनहरे और नारंगी रंगों में निखर आया था, जैसे मरने से पहले आखिरी बार मरीज के चेहरे पर सेहत चमक उठती है। जगह-जगह जमा बरसाती पानी और कीचड़ से बचती, सड़ती-गलती सब्जियों की बू को नजरअन्दाज करती जब मैं सब्जी मंडी के बाहर निकली तो थकी हुई शाम शहर पर झुक आई थी। मैंने झोले के हत्थे को, जिसके ऊपर से एक लम्बी सुडौल सी लौकी झाँक रही थी, और कसके पकड़ लिया और आँख ऊपर उठाई तो अपने को हुमायूँपुर के उसी मोड़ पर पाया जहाँ आपा मैया ने मकान ले लिया है। सोचा सलाम करती चलूँ। इधर कई दिनों से उनके पास जाना नहीं हुआ। पता नहीं शाहनवाज आया कि नहीं...कोई खबर मिली? मगर नहीं, मैंने कदमों की रफ्तार तेज करते हुए सोचा। मुझे कुछ तो खबर लग ही जाती।

तंग गली के दोनों तरफ मकान थे जिनकी सफेदी पर बरसाती काई किसी खतरनाक खाल की बीमारी की तरह लिपट गई थी। दूर तक यही पुराने से मकान दिखते थे ताबड़तोड़ एक के ऊपर एक उगते हुए, जैसे उन्हें कहीं पहुँचने की जल्दी हो। और उनके आगे, वहाँ जहाँ गली खत्म होती थी, नए आसमान का रंगीन किनारा। सड़क के किनारे लगे नल पर कुछ नंगे बच्चे नहा रहे थे, गंदुमी खाल पर चमकती हुई बूँदें। किसी छत पर लड़के पतंग उड़ा रहे थे। एक और छत पर बाँस डालकर कबूतरों के लिए मचान बना दी

गई थी। एकदम से, हवा के झोंके पर तैरती डूबती आवाज आई, "आ आ आह! आ आ आह!'' और सफेद कबूतरों का फड़फड़ाता हुआ झुंड छत पर उतर आया।

एक दुमंजिले मकान के छज्जे पर एक नौजवान औरत कचरी हुई धोती सूखने को डाल रही थी। कुछ पानी की बूँदें छिटककर गली में गिरीं। इसी तरह से एक साल पानी की बूँदें नीचे से गुजरती रामलीला की चौकी पर पड़ गई थीं। बात इतनी बढ़ी थी कि हिन्दू-मुस्लिम दंगे की नौबत आ गई थी। पास की मस्जिद से अजान हुई, "अल्लाह हो अकबर!'' मैंने चौंककर घड़ी देखी; शाम के सात बज चुके थे। मगरिब की नमाज के लिए अजान थी। मैं गंगा मिमोरियल कॉलेज की चहारदीवारी के किनारे-किनारे चल रही थी; उसी जगह जहाँ काफी आगे तक दीवार ढह गई थी। अन्दर दूर तक फैला हुआ मैदान दिख रहा था– बिलकुल सपाट। और उसके आगे कॉलेज की पीली खँडहर जैसी इमारत। इसी मैदान पर पन्द्रह अगस्त को वह हादसा हुआ था। झंडा फहराया जा रहा था। सभी जमा थे, प्रिंसिपल मि. माइकेल, उस्ताद और शार्गिद। इनके अलावा कुछ बाहर के भी लोग। बम के धमाके से भगदड़ मच गई थी। मिनटों में भीड़ तितर-बितर हो गई थी। मि. माइकेल को काफी चोट आई थी और बाद में अस्पताल में उनका इंतिकाल हो गया था। गुड्डू कहता था मि. माइकेल अच्छे आदमी नहीं थे। लड़कों से दाखिले के वक्त घूस लेते थे और कॉलेज में गुंडों की फौज इकट्ठा कर रखी थी। दो साल में कॉलेज की हालत बद से बदतर हो गई थी। सारे लड़के निठल्ले टहला करते थे। क्लास कभी हुई, कभी नहीं। गुड्डू को सारी बातें मालूम थीं। उसका घर कॉलेज के ठीक सामने था, वह खपरैल की छतवाला। शब्बन और अनीस भी यही कहते थे। मैंने फिर एक उचटती सी नजर खाली मैदान पर डाली जहाँ कीचड़ से लथपथ बत्तखों का गोल कैं-कैं करता चला जा रहा था।

आपा मैया के घर पहुँची तो वह नमाज पढ़ रही थीं। माशी रंग की साड़ी का पल्ला माथे को ढकता हुआ दोनों कानों के पीछे दबा था। सहन में पत्थर के चबूतरे पर एक झज्झर में पानी रखा था और एक किनारे अलुमिनियम का टोटीदार लोटा। सहन की काई से लदी दीवारों पर चमेली की लतर एक तरफ से चढ़कर बीच के दर पर लटक आई थी और उसके पत्तों के बीच से हजारों गौरैयों के चहचहाने का शोर उठ रहा था। चबूतरे के बगल में कोयले की अँगीठी पर गूँगी खालिक की अम्मा दूध पका रही थी। छोटी सी धौंकनी से वह चूल्हा धौंकती जाती थी। नमाज पढ़ते-पढ़ते आपा मैया के मुँह से आवाज आती, "हँ! हँ'' वह गूँगी को इशारा कर रही थीं कि दूध देखती रहे। कभी-कभी गूँगी पता नहीं किन खयालों में खो जाती थी और दूध उबलकर गिरने लगता था। गूँगी ने एक बार आपा मैया को घूरकर देखा, जैसे कह रही हो, "वाह! होंठ पे तो खुदा का नाम है लेकिन जी दूध में लगा हुआ है!''

उसने अभी मुझे नहीं देखा था। बहरे कानों को कोई आहट मिली तो उसने पीछे मुड़कर देखा। मुझे देखकर वह खड़ी हो गई और सलाम का लफ्ज उसके गूँगे गले से एक बदली हुई शक्ल में निकला। लेकिन चेहरे की बेरुखी में कोई कमी नहीं आई। उसने हाथ के इशारे से

मुझे दालान में, आपा मैया के पीछे लगे पलंग पर बैठने के लिए कहा। उसने दूध की गोल पेंदेवाली डेगची को सँड़सी से पकड़कर उतार लिया और सामने बावर्चीखाने के अन्दर नेमतखाने में रख दिया। फिर वह चमेली के तने के पास रखी सिल को मसाला पीसने से पहले अलुमिनियम की छोटी सी कटोरी से पानी लेकर धोने लगी।

मैं पलंग पर नहीं बैठी। चमेली का एक फूल तोड़कर सूँघा तो तबीयत तर हो गई। इन छोटे-छोटे बैंगनी मायल सफेद फूलों में कितनी ताकत होती है एक थकी हुई जहनियत को ताजा कर देने की। मेरी नजर दीवार पर शीशे के फ्रेम में लगी

'सात आठ छह' की उर्दू इबारत को पार करती हुई अन्दर के कमरे तक पहुँच गई जिसका दरवाजा खुला हुआ था। मेरे कदम उसी तरफ बढ़ गए। लम्बा सा कमरा था जिसमें सिर्फ उस अन्दर जानेवाले दरवाजे के अलावा कोई और खिड़की या दरवाजा नहीं था। अन्दर के मैले से उजाले में ढेर सारा सामान बेतरतीब लदा हुआ नजर आ गया।

एक कोने में तीन सुराहियाँ थीं। वह शेर के मुँहवाली सुराही मैंने अचलगंज के घर के बावर्चीखाने में देखी थी। दो लकड़ी के तख्तों पर कुछ बक्स लदे हुए थे। एक किनारे बड़े से बिस्तरबंद में कुछ लिपटा रखा था। जैसे यह कोई मुसाफिरखाना हो और यहाँ के रहनेवाले किसी भी वक्त कहीं भी जाने के लिए तैयार रहना चाहते हों। तख्त के नीचे बड़े-बड़े जूते खड़े थे जो किसी जमाने में काले रहे होंगे। लेकिन अब उनका चमड़ा सूखकर खंखड़ हो गया था। एक बिना चिमनी की लालटेन। सिलाई की मशीन और उसके बगल में रखी तिपाई पर बिजली का पंखा। दीवार पर एक खूँटी से लटका हुआ लम्बा सा पुराने जमाने का ओवरकोट धूल जमा कर रहा था। यूसुफ चचा अकसर इस कोट को पहने रहते थे।

जमीन पर, दरवाजे के पास, दो खाली पिंजड़े रखे थे। ये पिंजड़े अचलगंज के घर के दालान में टँगे रहते थे। एक में मिट्ठू ऊँघा करता था। बीच-बीच में वह चीख उठता, "मिट्ठू बेटे! नबीज भेजो!'' और फिर एक टरमिजाज सी खामोशी में ढलक जाता। दूसरे में यूसुफ मियाँ ने लाल पाली थीं। एक बार पिंजड़ा खुला रह गया था और दो चिड़ियाँ उड़ गई थीं। उनके इन्तजार में यूसुफ मियाँ दिन भर घर के बाहर बैठे रहे थे। वह लकड़ी का खटोला भी था जिस पर बचपन में शाहनवाज सोता था। लेकिन हमारे लिए कभी वह जहाज बन जाता था और कभी महल। शाहनवाज यूसुफ चचा की पहली बीवी का लड़का था। उम्र में शायद वह नसीम, यानी मेरे भाई के बराबर था। कमरे में कई और चारपाइयाँ भी थीं, उसी तरह की जिनको आपा मैया शाम को आँगन में निकालकर रख देती थीं और सुबह वे अन्दर कर दी जाती थीं। यानी गर्मी में। जाड़े में यह दस्तूर उलट दिया जाता था।

सारी चीजें जैसे अपने को अजनबी जगह पर पाकर एक-दूसरे के जाने-पहचाने आकार के पास खिसक आई थीं। सबके पीछे एक बीता हुआ जमाना था। वे जो इन्हें इस्तेमाल करते थे, जा चुके थे और हर चीज पर उनकी जिन्दगी के निशान छप गए थे। हर एक पर एक अनकही कहानी थी जिसको सुनने और समझने के लिए लफ्जों की नहीं, कोई और बेहद

नाजुक, बारीक सी जबान चाहिए। आपा मैया इन्हीं चीजों के साथ, अपनी तन्हाई के साथ रहती थीं। दिन-दिन भर। क्या किसी चीज को देखकर उन्हें कोई खास दिन या खास बात एकदम से याद आ जाती थी? अचलगंज में बीते हुए दिन? यूसुफ चचा? शाहनवाज? इतने सालों का लेखा-जोखा जो अब इस कमरे में सिमट आया था।

मेरे दिमाग में लाल ईंट और हरे दरवाजेवाले घर की तस्वीर कौंध गई। वह घर जो अचलगंज के और घरों से थोड़ी दूर हटकर चबूतरे पर बना हुआ था और जहाँ टोकरों में भर-भरके कोनों में और जमीन पर ताजे, सूखे, सड़ते आमों की नशीली बू से तबीयत उकता जाती थी। सवेरे नाश्ते पर यह ग्यारह बजे चाय के साथ और हर खाने के बाद, बाल्टी के गँदले पानी में डूबे हुए आम आपा मैया दस्तरखान पर पेश कर देती थीं। साथ में वह नीले किनारेवाली सफेद तामचीनी की रकाबी भी रख देती थीं जो चूसते वक्त आम से टपकते शीरे को लोक ले। लेकिन छुरी वह सिर्फमाँगने पर देती थीं क्योंकि उनका कहना था कि आम काटकर और गिनकर नहीं खाए जाते। हमको, यानी मुझे और नसीम को मालूम था कि आपा मैया ने हमारे लिए सबसे उम्दा आम अलग करके रखे होंगे। उधर चारपाई पर ऊँघते यूसुफ मियाँ अपनी भारी खसखसी आवाज में कहते, "ल्यो मियाँ, खाओ! तुम भी क्या दिल्लगी करते हो! भला यह भी कोई खाना हुआ?'' और मैं थोड़ी हैरत से एक बार अपनी और नसीम की रकाबी में उगते गुठलियों के ढेर पर भिनकती मक्खियों को देखती, फिर नसीम के चेहरे को और फिर यूसुफ चचा की खिचड़ी दाढ़ी पर मेरी नजर आकर अटक जाती–यूसुफ चचा।

यूसुफ चचा मेरे और नसीम के सगे चचा नहीं थे। दूर के रिश्ते से वह अब्बू के भाई लगते थे। वह रिश्ता इतना पेचीदा था और उसका 'रिश्ता' बनने में इतनी मिलावट, इतनी शादियों की गुत्थी सुलझानी पड़ती थी कि हमने कभी उसको समझने की खास कोशिश नहीं की। अचलगंज में वह काले खाँ साहब कहलाते थे क्योंकि गोरे को गोरा कह देने से नजर लग जाती है। अब्बू की भी थोड़ी सी जमीन गाँव में थी और यूसुफ चचा हमारे पड़ोसी थे। अब्बू का गाँव बहुत कम आना-जाना था क्योंकि वह सरकारी नौकरी पर थे और छुट्टी कम ले पाते थे।

उनकी जमीन पर जाड़े में सरसों की खेती और गर्मी में गेहूँ की फसल की देखभाल का जिम्मा यूसुफ चचा का था। इस जिम्मे को, हमारे देखने में, वह बड़ी होशियारी से निभाते थे। जब हम गाँव से वापस शहर लौटते तो रेल में हमारे साथ, मौसम के हिसाब से, कड़वे तेल के पीपे या गेहूँ के बोरे होते। लेकिन गाँववालों का इसके बारे में दूसरा खयाल था। तकरीबन हर गर्मी या जाड़े की छुट्टी में हम वहाँ जाते तो लोग हमें कनखियों से देखते और कानाफूसी होने लगती, "भई वाह! काले खाँ साहब की तो चाँदी है। खूब चराया है वसीम मियाँ को! काश हमको भी बैठे-बिठाए किसी की जागीर मिल जाती!'' यानी कि यूसुफ चचा अब्बू को बहला-फुसलाकर उनकी जमीन हड़प लेना चाहते थे। और इसी नीयत से उन्होंने हमें, यानी वसीम मियाँ की औलादों को भी अपने से इतना मानूस कर लिया था।

अब्बू से इस बात का जिक्र करने की हमारी हिम्मत नहीं हुई। वह यूसुफ चचा को बहुत मानते थे। और सच तो यह था कि यूसुफ चचा के 'खुफिया' इरादों की हमें भी भनक नहीं लगी। बल्कि उनको चाहने के लिए नए मौके पैदा होते गए।

जब रेल अचलगंज के छोटे से स्टेशन पर हाँफती-कराहती आकर रुक जाती थी तो प्लेटफार्म पर छाए सन्नाटे में यूसुफ मियाँ की सफेद टोपी हमको दूर से ही दिख जाती। वह प्लेटफार्म पर पुराने पीपल के साए में खड़े रहते जैसे वह इस सोई हुई दोपहर के अकेले पहरेदार हों। लम्बा कद, सफेद शेरवानी और पायजामा, काले 'पम्प' जूते, एक हाथ में नक्काशीदार बेंत और दूसरे में चारमीनार सिगरेट जिसका वह रह-रहकर लम्बा कश खींच लेते। इस बुरी आदत पर आपा मैया से अकसर उनकी बकझक हो जाया करती थी। वह आपा मैया के बराबर कोंचने पर सिगरेट पीना छोड़ देने का तहैया कर लेते लेकिन उनके दिल की बेताबी कब इस तहैये पर हावी हो जाती, वह खुद भी नहीं जान पाते और कुछ दिनों तक घर के बाहर सिगरेट फूँकने पर मजबूर हो जाते।

उनकी आपस की कहा-सुनी में मेरी और नसीम की हमदर्दी यूसुफ चचा के साथ होती। हम समझ नहीं पाते थे कि आपा मैया क्यों बेचारे यूसुफ चचा को, जो कि जाहिर था दुनिया के सबसे नेक इनसान थे, इतना परेशान करती थीं। मुझको तो यहाँ तक शक होने लगता था कि आपा मैया शायद बदले हुए भेस में डाइन हैं जिसके जीने का सिर्फ एक ही मकसद है–यूसुफ मियाँ के हर काम पर एतराज करना और उनकी अमन-चैन की जिन्दगी में खलल डालना। उनकी नजर में यूसुफ चचा हर काम गलत करते थे। अगर आपा मैरू को ककेर पान का पत्ता चाहिए होता तो वह सौंफिया ले आते; फीके खरबूजे खरीदने में वह खास तौर से माहिर थे; मजदूर तय करना होता तो वह दो रुपए के बजाय पाँच में तय कर लाते। उनकी हर बात से आपा मैया आजिज आ चुकी थीं और हर बात पर आजिज करती थीं। वह एक बार आँखें तरेरकर देखतीं तो लहीम-शहीम यूसुफ चचा को भीगी बिल्ली की तरह सहमते देखकर मुझको उन पर बहुत तरस आता था। वह हकलाने लगते, हर तरह से आपा मैया की खुशामद करते, उनको मनाने की कोशिश करते। लेकिन आपा मैया का हाल किसी अन्धे कुएँ जैसा था, जिसे जितना खोदो लेकिन पानी नहीं निकलता।

अब तो आपा मैया को देखकर यकीन नहीं होता कि यह वही हैं जिनके इशारों पर लम्बे-चौड़े यूसुफ मियाँ नाचते थे और जिनकी डाँट से बचपन में हमारी रूह फना हो जाती थी। छोटा कद और दुबला-पतला चिड़िया जैसा बदन। गाल पिचक जाने की वजह से चेहरे की बाईं तरफ बड़ा सा मसा जैसे और उभर आया था। संजीदा आँखें और चेहरे की सख्ती जो उम्र की लकीरों में पिघल गई थी। कितनी बदल गई थीं आपा मैया। उनको देखकर लगता था कि समय की एक बड़ी सी लहर आई थी और उनको उठाकर उसने बहुत दूर छोड़ दिया था, एक किनारे, वहाँ जहाँ उनको ढूँढने में किसी को दिलचस्पी नहीं थी।

मैं कमरे के बाहर निकल आई। अँधेरा आहिस्ता कदमों से आँगन में उतर आया था। आपा मैया नमाज पढ़ चुकी थीं। सिजदा करके वह उठीं और तस्बीह के दानों पर उनकी उँगलियाँ

चलने लगीं। मैं उनके पीछे पलंग पर बैठ गई। गूँगी अब मसाला पीस रही थी। सिल पर बट्टे घिसने की आवाज बराबर आ रही थी। अपने फटे हुए बूटेदार कुर्ते को टाँगों के बीच दबाए वह सिल पर झुकी कुछ बुदबुदाती जाती थी। प्याज की तेजी उसकी आँखों से आँसू बनकर बह निकली थी पर इसकी जरा भी परवाह किए बगैर वह आगे-पीछे झूम रही थी। उसके माथे पर पसीने की बूँदें छलक आई थीं।

आपा मैया को जानमाज लपेटकर रखते देख मैंने कहा, "सलाम अलैकुम, आपा मैया!''

मुझको देखकर एक हलकी सी मुस्कुराहट उनके चेहरे पर खेल गई। "जीती रहो बेटी! अम्मी-अब्बू तो अच्छे हैं?''

"जी हाँ, सब दुआ है! सब्जीमंडी तक आई थी, सोचा आपको देखती चलूँ।''

"खुदा सलामत रखे! आ जाती हो तो जरा देर के लिए दिल बहल जाता है।''

"यह गूँगी फिर आ गई?'' मैंने मुस्कुराकर पूछा। "यह तो आपसे बिगड़कर बुआ के यहाँ चली गई थी...?''

"अरे कहाँ जाएगी यह? कौन पूछनेवाला है इसका? घूम-फिरकर यहीं आ जाती है।''

गूँगी बाबा आदम के जमाने से आपा मैया के घर के इर्द-गिर्द रहा करती थी। कान में बड़े-बड़े नकली बाले, आँखों में सुरमा और पान से रँगे होंठ। पहले गाँव में, और अब मोहल्ले में, वह दिन भर डाँव-डाँव फिरती खबरें जमा किया करती थी और रात गए देर तक आपा मैया को अपनी इशारों की जबान में यह सब सुनाती थी। आपा मैया भी उसके इशारे खूब समझती थीं। मैंने तो उसकी बातें समझने की अकसर कोशिश की पर कुछ पल्ले नहीं पड़ा। कभी-कभी आपा मैया गूँगी के झुमके देखकर बड़बड़ाती थीं, "मुँह में बोली नहीं, निगोड़ी फैशन में चूर है।''

वह बेहद चटोरी थी, जैसे कि जबान के जरिए वह अपने गूँगे मुँह और बहरे कानों की कसर पूरी करना चाहती हो। हम लोग उसे 'नदीदुन्निसा' कहकर पुकारते थे लेकिन रमजान में रोजों की बड़ी पाबन्द थी। हालाँकि आपा मैया ऐसा नहीं सोचती थीं। एक बार जब हम उसके पच्चीस रोजों की सराहना कर रहे थे तो आपा मैया ने हमें टोक दिया था, "अरे, बड़ी मक्कार है मुई! रोजों में दाँत की सफाई का खयाल आ जाता है–कुछ नहीं तो दँतविन चबाया करती है। जरा मुँह तो तर रहे।''

लेकिन आपा मैया के बकने-झकने के बावजूद गूँगी का उनके साथ खास रिश्ता था कि घूम-फिरकर वह उन्हीं के पास आ जाती थी, बगल में अपने इस्तेमाल की जरूरी चीजों की छोटी सी पोटली दबाए।

कभी-कभी आपा मैया और यूसुफ चचा शहर आते थे। शाहनवाज वहाँ पढ़ता था। तब गूँगी भी उनके साथ लग लेती थी। बकौल आपा मैया के, "इसके पैर में तो चक्की बँधी है।'' बल्कि उस शाम गूँगी ही तो थी जिसने यूसुफ चचा की बेंत और हाथ से गिरा सौदे का झोला आपा मैया को लाकर दिया था। मैं भी वहाँ मौजूद थी, इत्तिफाक से। पहली बार मुझको वह बेहद घबराई हुई नजर आई थी। आपा मैया के सवाल के जवाब में वह नीचे देखने लगी थी। जब यूसुफ चचा को बर्फ की सिल्ली पर लेटे देखा था, तब आपा मैया ने कहा, "हाय! बर्फ कितनी ठंडी होगी!''

उस शाम भी दिन भर बारिश होने के बाद आसमान धुलकर साफ निकल आया था, एक बड़ी-सी किताब के खुले पन्नों की तरह जिनमें हम सब की जिन्दगी का हिसाब लिखा हो। कुछ दिनों बाद आपा मैया ने अचलगंज का घर और जमीन बेच दी थी। एक अपरिचित सी आवाज में उन्होंने कहा था, "वह शाख ही न रही जिसपे आशियाना था...।'' आवाज मेरी पहचानी हुई नहीं थी और बात भी मेरी समझ से बाहर थी। आपा मैया के मुँह से, जिनको यूसुफ चचा अपने से कहीं ज्यादा मजबूत मानते थे।

वैसे शहर में उनको मकान आसानी से मिल गया। हुमायूँपुर में उनके दूर के और करीबी रिश्तेदार बहुत थे। वहाँ रहकर उनको किसी चीज की परवाह नहीं करनी पड़ेगी। वैसे भी, शाहनवाज को गाँव की जिन्दगी पसन्द नहीं। कॉलेज दो कदम पर था। कितनी आसानियाँ, कितनी सहूलियतें थीं। कह-सुनकर शाहनवाज का दाखिला भी उसमें हो जाएगा। हो सकता है खुद ही से हो जाए। लड़का बड़ा जहीन है। आपा मैया ने सारी बातें सोच ली थीं।

इस बात को भी मुद्दत हुई। वैसे सोचो तो शायद चार-पाँच साल ही हुए। तब से मैं अचलगंज नहीं गई, हालाँकि अब्बू की जमीन अब भी वहाँ मौजूद है और नसीम हर साल किराया वसूल करने जाता है। सुना है गाँव बहुत बदल गया है; कि अब वह अचलगंज नहीं रहा। आम के बाग के किनारे से मँडराती हुई पतली सड़क पक्की कर दी गई है जिस पर बैलगाड़ी में बैठकर धचके खाते हुए हम स्टेशन से घर तक की दूरी यूसुफ चचा के साथ तय करते थे। अब टैम्पो तकरीबन दस मिनट में घर के दरवाजे तक पहुँचा देता है। उसी रास्ते पर जिसको हम घंटे भर में पार करते थे।

सड़क के किनारे बनी गुमटियों से अब रामदाने की लैया, तिलपट्टी और पेड़े गायब हो गए हैं जो यूसुफ चचा हमको आपा मैया की आँख बचाकर खिलाते थे। आपा मैया को चटोरपन बिलकुल पसन्द नहीं था। वह कहती थीं ज्यादा मिठाई खाने से बच्चों की भूख खत्म हो जाती है और पेट में कीड़े पड़ जाते हैं। अब उन दुकानों में कोका कोला के नाम पर रंगीन पानी, नकली फ्रूटी, बबल गम और टॉफी मिलती हैं, पाँच पैसे में एक या बारह पैसे में तीन। कहीं-कहीं कपड़े की दुकानें भी खुल गई हैं जिनके साइनबोर्ड पर लिखा रहता है 'फलाँ फलाँ मिल के थोक विक्रेता' और रात में उन पर रंगीन बत्ती चमकती है। हर मंगल को नुक्कड़ पर जो मेला लगता था, अब महीने में सिर्फ एक बार लगता है और उसमें भी कागज के खिलौने ढूँढ़ने पर मिलते हैं। वे जादुई पंखे, साँप, गुड़ियाँ और तोते जिनको लेकर, अपनी ही

अहमियत में चूर, हम झूमते हुए घर पहुँचते थे। अब वहाँ प्लास्टिक की गुड़ियाँ मिलती हैं जिनको दबाओ तो सीटी बजती है।

सुनते हैं वह महुए का पेड़ भी अब कट गया जो घर के पीछेवाली गली से अपनी मजबूत डालें आँगन में फैलाता था, जैसे कि मुद्दतों से तंग गली में कैद वह अपनी अकड़ी हुई बाँहों को सीधा कर रहा हो। इन्हीं डालों पर अँधेरी रातों में किले की दीवारों से जिन्नात उतरकर बैठते थे। यह बात हमको पक्की मालूम थी। एक बार आपा मैया एकदम तड़के, अँधेरे मुँह आँगन में कुरान पढ़ रही थीं। आपा मैया की आँखें हमेशा से खराब रही हैं। कुछ साफ सूझ नहीं रहा था। तभी पीछे से एक उँगली ने उनको वही पारा दिखा दिया था जिसको वह ढूँढ़ रही थीं। बतानेवाले को देखने जब वह पीछे मुड़ीं तो वहाँ कोई भी नहीं था। जिन्नात के सिवा यह कौन हो सकता था? यह बात हमने खुद आपा मैया के मुँह से सुनी थी और आपा मैया कहती थीं झूठ बोलने से मुँह में छाले पड़ जाते हैं।

इसी महुए के पेड़ से रात को पीले मक्खन जैसे फूल टप-टप आँगन में चूते थे और सुबह हमको इनसे फर्श बिछा हुआ मिलता था। गोल-गोल चिकने फूल, ऊपर छोटी सी टोपी और नीचे बिलकुल गोल छेद में से झाँकते हुए महीन बाल। इन फूलों की नशीली बू गर्मी की चाँदनी रातों में सारे घर में फैल जाती थी। तब जब आपा मैया 'मीलाद' करती थीं और 'या हबीब सलाम अलैका' के सुर हवा में ठहर जाते थे। कभी-कभी 'मीलाद' में परबती भी आ जाती थी और रामप्यारी जो अपने बीमार बच्चे को आपा मैया से 'फुँकवाती' थी।

एकाध बार ऐसा भी हआ कि चूर हुए महुए को हम बीनकर रजुआ को दे आए। वह उसकी शराब बनाता था। रजुआ हमारा दोस्त था। वह भगेलू मल्लाह का लड़का था और हमको अपनी नाव में बैठा नदी में सैर कराता था। एक बार उसने हमको एक कछुवा भी लाकर दिया था जो मर गया। कभी-कभी शाहनवाज भी हमारे साथ जाता था लेकिन अकसर वह छुट्टियों में अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ चला जाता था। एक बार आपा मैया को महुए की शराब के बारे में पता चल गया था। उन्होंने अपने दोनों गालों को पीट लिया था और खुदा से हमारे लिए माफी माँगी थी। फिर उन्होंने कई घंटों के लिए हमको उस काली कोठरी में बंद कर दिया था जिसमें से माँगने पर वह कोई भी चीज हाजिर कर देती थीं–चाहे लाइफबॉय साबुन की बट्टी, चाहे इमली, चाहे शक्कर। उन घंटों में हमने कोठरी का राज जान लेने की पूरी कोशिश की थी पर हमको कुछ भी नहीं सूझा था। बल्कि अँधेरा जैसे और स्याह हो गया था। अब उस कोठरी को तोड़कर दालान बन गया है। वहाँ खूब धूप आती है और सबकुछ साफ दिखता है। हिफाजत के लिए उसमें लोहे का जालीदार जँगला भी लग गया है।

यह भी सुना है कि दो-एक साल पहले जंगलिया गाँव से गायब हो गया। पगला जंगलिया। सिर पर झौवा भर उलझे, मैले से अकड़े हुए बाल, एकदम सफेद दाँत और चमकती आँखोंवाला दीवाना जो कब्रिस्तान में बेर के पेड़ के नीचे बैठा न जाने कौन से राग गाया करता था। कितना दर्द उन गानों में होता था। वह राह चलते मुसाफिरों को पानी

पिला दिया करता था और कभी-कभी न जाने क्या धुन सवार होती थी कि वह झाड़ू उठाकर गाँव भर का कचरा बटोर देता था। गाँव के बच्चे, और हम भी, उसको अपने ढेलों का निशाना बनाते थे लेकिन अपनी सुरों की दुनिया में मशगूल, वह कतई बुरा नहीं मानता था। उसका आगा-पीछा किसी को नहीं मालूम। गाँववाले कहते थे वह बचपन में पीर बाबा की मजार पर पाया गया था।

और अन्धा बाबू भी मर गया जो घंटों बैठकर यूसुफ चचा की पिंडलियाँ दबाया करता था। वह पिंडलियाँ पकड़कर फौरन बता देता था कि वह किसके पैर दबा रहा है, चाहे वह उस इनसान से बरसों बाद मिल रहा हो। अजीब जादू था उसके हाथों में। अब तो वहाँ बहुत कुछ बदल गया है। उसी गाँव में, जो लगता था कि जीने की तमन्ना में जमीन से खुद-बखुद उग आया है, मिट्टी से लिपे घरों की तह समेत। उनमें से कुछ घर ढह गए हैं। नए, पक्के मकानों की तादाद बढ़ गई है। वह टीला अब भी मौजूद है, और टीले पर पुराना किला। लेकिन स्टेशन पर, जहाँ यूसुफ चचा हमारा इन्तजार करते थे, पीपल के तने को घेरकर एक छोटा-सा मन्दिर बन गया है।

वैसे ये तब्दीलियाँ मैंने खुद नहीं देखीं। मुझे तो वहाँ गए हुए भी अर्सा हो गया। अब मैं शायद वहाँ जाना भी न चाहूँ। बदली हुई चीजों को देखकर मुझे बहुत अफसोस होता है। बार-बार मैं उन्हीं चीजों को ढूँढ़ती हूँ जो अब नहीं हैं। हालाँकि मुझको मालूम है कि हर चीज का बदलना, आगे बढ़ना लाजिमी है। फिर भी सदमा होता है–उन चीजों, उन लोगों के लिए जो पीछे छूट गए, जिनको अब मैं नहीं पा सकूँगी। शायद इसको मेरा हद से गुजरता लालच कहा जा सकता है।

पिछली बार जब मैं अचलगंज गई थी तो खजूर के चार बौने पेड़ों तले समतल जमीन के किनारे मेड़ और दूर तक फैली हरियाली को देखकर मन वीरान हो गया था। यूसुफ चचा वहाँ नहीं थे, उस समतल जमीन के नीचे जहाँ उनके खानदान की कई पुश्तें दफ्न थीं। और हम लोग उनका फातिहा करने यहाँ आए थे जहाँ उनकी जड़ें थीं। मुझको दरियाबाद इलाके की घनी आबादी के बीच बने कब्रिस्तान का खयाल आ गया जहाँ कच्ची मिट्टी के छोटे से उभार के ऊपर सालोंसाल बारिश मंद लय से होती है और जंगली घास उग आती है। चारों तरफ कीचड़ और गोबर फैल जाता है और एक भी पहचानी हुई सूरत नहीं दिखती। कब्रिस्तान पर ग्वालों ने कब्जा कर लिया है और कब्रों के बीच गाय-भैंसें बँधने लगी हैं।

और अब आपा मैया दरियाबाद इलाके से लगे हुए हुमायूँपुर में रहती हैं। कैसा अजीब लगता है उनको यहाँ देखकर। जैसे कि उनके अन्दर का कोई जरूरी हिस्सा खो गया हो और खोखला सा साया यहाँ बसता हो। आपा मैया सुपारी काट रही थीं। उनकी हथेली की चिटकी हुई, कत्थे से रँगी खाल सालों के इस्तेमाल से बिलकुल चिकनी और चमकदार हो गई थी, जैसे कोई बेइन्तिहा घिसा हुआ पत्थर। सामने पानदान खुला रखा था; उसके ऊपर हरा रेशमी गिलाफ जिस पर आपा मैया ने अपने जहेज के लिए कलाबत्तू का काम बनाया था। उसमें कहीं-कहीं छेद दिखने लगे थे। मैं आपा मैया के तेजी से चलते हुए हाथ देख रही

थी जिनके नीचे पानदान की सीनी में सुपारी के नन्हे टुकड़ों का ढेर लग गया था। बड़ी सफाई से सरौता चलता जा रहा था; अँगूठा और उँगली बच के साफ निकल आते थे और कतरी हुई सुपारी नीचे गिर जाती थी।

मैंने जरा देर उनको देखने के बाद पूछा, "आपा मैया, और...कोई खबर मिली?'' वह कुछ देर खामोशी से सुपारी काटती रहीं। फिर जब मुझको लगने लगा कि शायद उन्होंने मेरा सवाल सुना नहीं, वह गहरी साँस लेकर बोलीं, "नहीं।''

कुछ पलों के लिए मुझको अजीब-सी वहशत ने घेर लिया। कुछ सोच नहीं पा रही थी कि क्या कहूँ। शायद मेरी उलझन को समझते हुए वह बिलकुल धीमी आवाज में बोलीं, जैसे कि उन्हें डर हो कि कोई सुन लेगा, "उन्होंने किसी को भी नहीं छोड़ा है...जुबैदा के घर से तो पंखा, बत्ती, दरवाजा तक उखाड़ ले गए...तुमने देखा होगा, सामने गली में ही तो घर है। अनीस और शब्बन अभी तक हिरासत में हैं। उनके घर तो पका-पकाया खाना उठाकर फेंक दिया। अनवर को तो तुम जानती ही हो...शाहनवाज की तरह वह भी लापता है...।''

"और सिद्दीक भाई?'' मैंने आपा मैया के बूढ़े पड़ोसी का हाल जानना चाहा।

"उनको अभी तक बंद किए हुए हैं। कहते हैं जब तक कादिर अपने को उनके हवाले नहीं करता सिद्दीक मियाँ को रिहा नहीं करेंगे। कादिर पर ही तो उनको सबसे ज्यादा शक है।''

"लेकिन गुड्डू तो कह रहा था कि कादिर अब सुधर गया है। पढ़ाई में दिल नहीं लगता तो शरारत जरूर करता है। लेकिन इससे यह समझ लेना कि किसी की जान ले लेगा...'' मैंने अटकते हुए कहा।

"अरे वे मानें तब न...वे तो मोहल्ले के सारे जवान लड़कों को पकड़ ले गए हैं।'' आपा मैया की आवाज में निराशा भर आई थी।

"बड़े ताज्जुब की बात है...'' मैंने कहा, "आखिर यह सब मैदान में हुआ; किसी बंद कमरे में नहीं...किसी ने तो कुछ देखा होगा।''

गूँगी कहती है जब वह चौराहे से लौट रही थी उसने चंदर और इकबाल को तेजी से वहाँ से भागते हुए देखा था।

"तो क्या वे भी बंद हैं?'' मैंने सफाई चाही।

"नहीं, उन्होंने कह दिया वे लोग उस दिन कॉलेज नहीं गए थे...वे तो अकसर दिखते हैं।''

"लेकिन गूँगी ने बताया नहीं...?''

आपा मैया जरा झुँझलाकर बोलीं, "अरे उसकी जबान कौन समझता है...और कहीं वह उसी को गिरफ्तार न कर लें झूठी अफवाह फैलाने के लिए।''

आपा मैया थोड़ी देर के लिए सोच में डूब गईं। उनके माथे पर फिक्र की लकीरें खिंच आई थीं। वह बेहद बूढ़ी और थकी हुई लग रही थीं, हालाँकि मुझको एकदम से याद आया कि वह यूसुफ चचा से पन्द्रह साल छोटी थीं। वह उनकी दूसरी बीवी थीं।

फिर उन्होंने धीरे से कहा, "आज पूरे बाईस रोज हो गए। तुम्हारे चचाजान होते तो उन्हें कितना सदमा होता। शाहनवाज तो कभी बुरी आदतों में नहीं पड़ा...अल्लाह जाने अब क्या होगा!''

"इंशाल्लाह सब ठीक हो जाएगा।'' मैंने दिलासा देने की कमजोर कोशिश की।

जब मैं जाने के लिए उठ खड़ी हुई तो आपा मैया ने कहा, "खबर मिलते ही मैं कहलवा भेजूँगी।''

वह दरवाजे तक मेरे साथ आईं जहाँ गूँगी रिक्शा बुला लाई थी।

"बेटा, ज्यादा देर मत किया करो; जमाना बहुत बुरा है।''

"आप फिक्र मत कीजिए, आपा मैया। घर भी तो दो कदम पर है। अच्छा, खुदा हाफिज!''

रिक्शा आगे बढ़ा तो मेरी नजर सामनेवाले घर पर पड़ी – जुबैदा आपा के घर पर। जहाँ दरवाजा होना चाहिए था, खाली दर था, खामोशी से मुँह फाड़े, किसी गहरी चोट की तरह। अन्दर अँधेरा था। मैंने पीछे मुड़कर देखा। आपा मैया के घर का दरवाजा वक्त के थपेड़ों के साथ कमजोर और बदरंग हो गया था। अचलगंज के घर के दरवाजे की तरह रँगा हुआ नहीं था। मेरे देखते-देखते आपा मैया ने दरवाजा बंद कर लिया।

पिता के मामा के यहाँ

देवी प्रसाद मिश्र

बप्पा

पिता प्रेत थे।

वे फुस-फुस करते। कि जैसे भूसे के नीचे बहुत सारा धुआँ फैला हो। यह एक मीडियाकर की तरह पृथ्वी पर घूमते रहते और पृथ्वी को ठोंकते बजाते रहते। उनकी निराशा का पानी पृथ्वी पर चूता रहता। वह हताशा और अमर्ष के साथ पृथ्वी को एक जोर की लात मारते।

पिता किसी को यकायक पुकारते। किसी अनिश्चित की साँकल बजाते। किसी आकस्मि-कता के साथ एक बृहत् सहवास करना चाहते। किसी आश्चर्य पर मुग्ध होने की तैयारी करते रहते। इतना चलते आए दिन जूते बदलते रहते। उनके जूते चर्र-मर्र करते रहते लेकिन खुद वे संध्या भाषा की ओझलता थे। उनकी हड्डियों और इच्छाओं की खड़खड़ अवध के बियाबान में गूँजती रहती थी।

वे एक प्रतीक की तरह लगते। एक ऐसे बिम्ब की तरह जिसका इस्तेमाल गतिशील काव्य के लिए न किया जा सकता हो।

उनका माथा रेखाओं से भरा था–हथेली का भी यही हाल था। ऐसा लगता था कि उनके

भीतर बहुत सारी नदियाँ निकलीं लेकिन सूख गईं और ये रेखाएँ उन्हीं के बचे हुए निशान थे। बप्पा को लगता कि ये सूखे नदी पथ एक दिन फिर जलवान हो उठेंगे। कि कीड़े-मकौड़े की तरह पड़ी ये रेखाएँ कुछ करने वाली हैं। कुछ होनेवाला है। बप्पा रेखाओं की एक दूसरे में उलझी मकड़ियों के भित्तिचित्रों को समय-समय पर निहारते घूरते रह जाते। दजलाफरातयमुनामिसिपिह्वांगहोयांट्ट-ग्सिक्यांगसुरखदेरी हर नदी के होने की सम्भावना वहाँ थी लेकिन बप्पा प्यासे लगते। उन्हें हमेशा एक गिलास पानी चाहिए था। वे पत्नी को देखकर कहते हैं कि तनी एक गिलास पानी तौ दैया–जरा एक गिलास पानी तो देना।

अम्मा

अम्मा पानी लेने जातीं तो बड़े से घड़े में झाँकती। अन्दर से बाहर की तरफ एक काँपती हुई ठंड बाहर आती। बप्पा को अम्मा पानी का गिलास पकड़ा देतीं। पिता पानी लेते लेकिन जल को जायते असताम् लीयते अस्मिन्–इससे जन्म होता है और इसी में समाना होता है–वे कृतज्ञता बोध के साथ नहीं पीते थे। वे उसे अपने भीतर कहीं उड़ेल लेते। अम्मा के चेहरे पर चेचक के दाग थे जिनमें रखी हुई नमी चमकती रहती। लगता कि उनका चेहरा बहुत सारे पोखरों से भरा हो। इस तरह उनका चेहरा काफी मृदुल लगता।

अम्मा पृथ्वी पर पृथ्वी की बहन की तरह चलती फिरती थीं। लगती भी वो मिट्टी मिट्टी थीं। माँ का रंग ताँबे के हंडे जैसा था जिसे हफ्ते में एकाध बार धो लिया जाता हो–एक ऐसा ताँबा जिसके ऊपर लगातार चीकट जम रही हो। ऐसा उनके रोज पाँच बजे उठकर नहाने के बावजूद हो रहा था। ऐसा भी लगता है कि इसे अगर ठीक से माँजा जाए तो ताँबे का कत्था झक्क से निकल आएगा।

वे पिता को इस तरह से देखती थीं कि जैसे वह किसी पेड़ को देख रही हों। लेकिन फिर उन्हें यह भी लगता है कि पेड़ सूखा है। वे जब भी पिता को पीतल के लोटे में पानी देतीं तो उन्हें लगता कि पेड़ फिर से हरा हो जाएगा लेकिन ऐसा होता नहीं था। वे कुछ देर पेड़ से टिकना चाहती थीं। लेकिन पेड़ के पास आकर वे पेड़ को पानी देकर लौट जाती थीं। खाली लोटे को लेकर लौटते हुए उन्हें बप्पा खाली लोटे ही तरह लगते। कि जैसे वह बप्पा का खाली सिर लेकर लौट रही हों।

अम्मा के चेहरे पर किसी चीज को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रख देने की उद्विग्नता बनी रहती थी। वे चीजों की जगहें बदलती रहती थीं और अगर किसी चीज को उसी जगह रखना भी हो तो भी उसे वह बीच-बीच में उठा लिया करती थीं। उठाकर फिर रखती थीं। ऐसा करते हुए उन्हें घड़े के नीचे पतला गोजर दिख जाता तो उसे चिमटे से उठाकर बाहर किसी जगह डाल आतीं।

बहन

तालाब में चीजों की जो परछाई होती है वैसी दिखती थी बहन। आभास। कि जैसे वह खो जाएगी। कि जैसे उसके हाथ दिखेंगे और उनकी मेहनत का परिणाम जो खाना तो होता ही था, साफ-सुथरा घर भी। वह उन कविताओं की तरह थी जिनके न बचने का संकट हमेशा बना रहता है लेकिन जो अन्ततः बची रह जाती हैं। बहन का काम कम नींद से चल जाता। कम प्रेम और कम भविष्य से भी उसका काम चल जाता। कम सब्जी और कम रोटियों से भी।

वह पृथ्वी के किनारे-किनारे चलती। तालाब के भी किनारे-किनारे और बीच-बीच में तालाब में पानी में अपनी शक्ल देखती रहती–इस तरह से कि कहीं इस तरह से देखने को कोई देख तो नहीं रहा।

बहन सन्देहास्पद थी। वह वृतान्त बन जाती। कथा बन जाती। वह प्रेम तक एक सुरंग से पहुँचती थी और कोशिश करती थी कि लौटे भी सुरंग से ही होकर। उसे आधुनिकता के बहुत कम फायदे मिले थे। जगह-जगह पर बैठे हुए सामन्त मिल जाते–पीले और पान खाए लाल दाँतों वाले।

भाई

बहन का एक भाई था जो बप्पा और अम्मा का बेटा भी था। वह जिन गालियों को जल्दी सीखता था उन्हें वह काफी जल्दी देने भी लगता था। भाई हिन्दी प्रदेश का पतनशील थाना था। लेकिन जो भाई है वह इस कहानी को कह भी रहा है और वह मैं हूँ और नाम जगत सिंह है और वह अपने पिता को बप्पा कहता है जैसा कि अवध के तमाम बेटे अपने पिता को बप्पा कहते हैं।

यात्राएँ

बप्पा के मामा के घर तक पहुँचने के लिए पहले सात मील पैदल चलना होता था, उसके बाद एक ऐसी बस में सवार होना था जो आती जरूर थी लेकिन कब आती थी, इसका कोई ठिकाना नहीं था। इस बस का इन्तजार एक ऐसे पेड़ के नीचे किया जाता था जिसमें बहुत कम पत्ते थे लेकिन बहुत सारी लकड़ी थी। इस पेड़ में अगर ज्यादा पत्ते होते तो तादाद में उन पेड़ों के पत्तों से कहीं ज्यादा होते जिनमें बहुत सारे पत्ते हुआ करते हैं। बप्पा इस पेड़ के नीचे आते तो पेड़ को देखते और सोचते कि पेड़ में पत्ते कम हो गए हैं। पेड़ में पत्ते कम हो गए हैं तो छाँव भी कम हो गई है ऐसा उन्हें लगता। वे छाँव के क्षेत्रफल को मन-ही-मन आँकते बिना किसी गुणा भाग के। बप्पा छाँव के एक टुकड़े के नीचे या कि उसके ऊपर बैठ जाते कि जैसे आसनी पर बैठे हों एक ऐसी छत के नीचे जो लगातार हिलती रहती। जितने भी पत्ते थे उनके हिलने का मायने था छत का हिलना और छत के हिलने का मतलब था छाँव का हिलना और छाँव के हिलने का मतलब था आसनी का हिलना और आसनी के हिलने का मतलब था पृथ्वी का हिलना जिस पर वे बैठे थे। पेड़ के पत्तों को गिनते कि इस

बार कितने पत्ते हैं जबकि पिछली बार के पत्तों की संख्या उन्हें याद नहीं आती थी। बप्पा ने सोचा कि उन्हें किसी और पेड़ के नीचे बस का इन्तजार करना चाहिए क्योंकि आसपास ज्यादा पत्तों वाले पेड़ थे। लेकिन वे पेड़ दूर थे और इन्तजार के काम में नहीं लाए जा सकते थे। बप्पा ने सोचा कि इस पेड़ में पत्ते क्या इसलिए कम हैं कि वे इस पेड़ के नीचे मामा के घर जानेवाली का इन्तजार करते हैं और क्या उस हर पेड़ के पत्ते कम नहीं हो जाएँगे जिसके नीचे खड़े होकर वे मामा के घर जानेवाली बस का इन्तजार करेंगे। बप्पा एक दफा जब बस का इन्तजार कर रहे थे तो इन्तजार करते-करते ऊँघते हुए उन्होंने एक सपना देखा। लेकिन बप्पा ने तो उस पेड़ के नीचे कितने ही सपने देखे थे। इन सपनों में चिड़ियों की आवाजें होती थीं जिनके बारे में यह कहना आसान नहीं था कि चिड़ियाँ सपने में बोल रही थीं या उनके सिर पर हिलती पेड़ की डाल पर। सूखे से पेड़ के नीचे बस भर जाती। बस वाला बिना कुछ देखे ही बोलता रहता आगे बढ़ो, बहुत जगह है। बस में एक बार मुर्दे को भी चढ़ा दिया गया जिसका बस वाले ने तिगुना किराया लिया। इस पर एक आदमी ने कहा कि जिन्दा आदमी की कीमत मरे आदमी की एक तिहाई है।

बस के इन्तजार में बप्पा के जीवन में एक बड़ा हिस्सा गुजर रहा था। यात्राओं में बप्पा घिस रहे थे। जैसे सिक्का घिसता है। और सिक्के पर जो इबारतें होती हैं वे भी धूमिल पड़ती जा रही थीं। सिक्के पर धान की बाली शस्य के प्रतीक का जो उत्कीर्णन होता है, वह तो पूरी तरह ही मिट गया था। अपने मामा के यहाँ पिता तब भी काफी जाया करते थे जब वे पिता नहीं बने थे–ऐसा माँ कहती थीं और तब भी जाते थे जब वे पिता बन गए थे–ऐसा मैंने खुद देखा था। जब से मैंने उन्हें जाते हुए देखा था तो यह जरूर लगता था कि जाने की बात से उनके चेहरे पर पावस की पारदर्शी नमी चढ़ जाया करती थी। कि जैसे सूखी घास पर कुछ बूँदें आ गिरी हों। कि जैसे टूटे-फूटे जस्ते के बर्तन पर कलई कर दी गई हो। इस तरह वे एक और तरीके से निष्प्राण दिखने लगते, जैसे कई बार भारतीय इतिहास की किताबों में अंग्रेजों के रक्तविहीन सफेद चेहरे दिखते हैं। कह सकते हैं पिता का चेहरा ठंडी सुबह जैसा था–ठिठुरा हुआ सा।

मेरी बहन भागते हुए चलती थी कि जैसे उसके पास समय कम हो। कि जैसे पूरी पृथ्वी पर उसे ही झाड़ू लगानी हो। कि जैसे उसके पास वह आखिरी दिन ही बचा था। अगर बहन की भागमभाग की किसी से तुलना की जा सकती थी तो वे थीं रेलगाड़ी की तरह भागती हुई प्रेमकथाएँ जिन्हें मैं घर के कोनों में, नहर के पुल पर या मेंड़ पर लेटे हुए पढ़ता रहता। पीले कागजों पर छपी इन कथाओं ने मुझे हिला रखा था। पास की दूरी ऐसा ही एक उपन्यास था। इसी की टक्कर का 'सिसकियाँ' था। उन लहराती प्रेमकथाओं से तपते होंठ होते, काँपती देह होती, झुकी और उठती निगाहें होतीं, माथे पर छलकता पसीना होता, कुछ भी कहने में लड़खड़ाती जबान होती, और अन्तत: वर्जना का संहार हो जाता। बहरहाल उन थर्ड रेट प्रेमकथाओं में भी जाति से मुठभेड़ की जा रही होती थी और समाज को सड़ा हुआ बताया जा रहा होता था और एक अकेली लड़की भागने के लिए तैयार रहती थी। वहाँ दो नामालूम लोगों की मामूली इच्छाओं के मिलने का असाधारण उपप्लव होता।

मैं इन पीले उपन्यासों को चलते हुए पढ़ने लगा था। ऐसे उपन्यासों पर मैं गणित या हिन्दी की किताब का कवर चढ़ा लिया करता था। खोए-खोए बप्पा इस सब से अनजान थे। पिता को हम बप्पा कहते थे लेकिन मेरी माँ उनको सुनाहो कहती थीं और हमें लगता था कि हमारे पिता का नाम सुनाहो है लेकिन पिता की माँ जब तक जिन्दा रहीं उन्हें बचई कहती रहीं और कोई बूढ़ा छप्पर उठवाने के लिए बुलाने आता था तो पता लगता कि उनका नाम बेनी है। लेखपाल जब आता था तो कहता था बेनी सिंह हैं?

अही अही में

ही ही ही ही

बेनी सिंह होते तो निकलकर आते और कहते अही अही। मतलब कि हूँ। अवधी का अही शायद अस्मि से निकला हो। बेनी सिंह पढ़ने में बहुत अच्छे नहीं थे लेकिन अस्मि अस्व: अस्म: उन्हें अब भी याद रह गए थे। हूँ–हम दोनों हैं–हम सब हैं। लेकिन लेखपाल को देखते ही बेनी सिंह हूँ रह जाते। अकेले पड़ जाते। अस्व: और अस्म: भी बाद में आते हैं वह यह भूल जाते। बेनी सिंह की ही ही और अही अही एकाकार हो जाते। उन्हें लेखपाल से भय लगता था–न कहा जा सकने वाला भय। कि जैसे लेखपाल को दरवाजे पर देखकर वह अन्दर तक काँप जाने के अलावा और कुछ कर ही नहीं सकते थे। खाट बिछाने लगते। शरबत ले आ री, मोहिनी की पुकार लगा देते और खुद बस लेखपाल जी, दरी और ताकिया ले आता हूँ कहते हुए अन्दर की तरफ भागते। जान ये पड़ता है कि बेनी सिंह जितना घबराए होते थे उससे ज्यादा अपने को डरा हुआ दिखाना चाहते थे। लेखपाल के सामने बेनी ऐंठ की किसी भी गाँठ को खोल देते। लेखपाल राज नरायन मिसिर का हमेशा प्रसन्न रहना अनिवार्य था। उसके माथे पर एक लकीर के आने का मतलब ये भी हो सकता था कि वह खसरा खतौनी में भी कहीं लकीर न डाल दें। और फिर लड़ते रहो मुकदमा। जाते रहो कोर्ट कचहरी–घिसते रहो पनही–दिन भर हाजिर हो की पुकार पर कान लगाए रहो और गुहार लगाते रहो कि माई बाप ये जमीन ऊसर थी और हमारे बप्पा के बप्पा ने हाड़ तोड़ कर उपजाऊ बनाई थी और ये हमारी ही जमीन है। उनमें अगर कविता करने का हुनर होता तो लेखपाल पर वे भी लेखपाल कविता लिखते जैसी हिन्दी के एक कवि मानबहादुर सिंह ने लिखी थी। लेकिन हो सकता है कि लेखपाल के डर से वो कविता न लिखते। लेकिन ये भी हो सकता था कि वे कवि होते तो उनमें इतना डर भी न होता। स्वभाव समझने की तलहटी में जाया जाए तो बेनी सिंह को सीधा कहना ठीक नहीं होगा–हफ्ते में एकाध बार वे अपनी मेहरारू को कुतिया कह देते थे और महीने में एकाध बार उसकी ओर इस तरह दौड़ते थे कि उसे पीट ही देंगे। वे किसी से डरते थे तो बहुत डरते थे और जिससे नहीं डरते थे उसे बहुत डराते थे। लेखपाल के जाते ही वे लेखपाल को सूअर कहते। यह गाली घर वालों को अच्छी लगती और ये लगता है कि उनके पास लड़ने के कुछ जंग लगे उपकरण बचे हुए हैं।

अपने ही विरुद्ध आकार पाता रहता है

एक षड्यन्त्र लेकिन जैसा कि मखमल बाफ की

एक फिल्म में होता है कि

अपने ही विरुद्ध नहीं हो पाती क्रान्ति जो

अन्य क्रान्तियों का पूर्वाभ्यास होती

रामदेई बेनी सिंह को सुनाहो कहकर चाहती थीं कि बेनी सिंह उन्हें सुनें लेकिन बेनी सिंह रामदेई को नहीं सुनते थे–वे केवल अपने को सुनते थे कि जैसे वे एक ही राग पर कान लगाए हों, जिसमें कोई विवादी न हो जो उनके अपने पाताल में बरसों से बज रहा हो। इस राग को सुनते हुए बेनी की आँखें मुँदी रहती थीं। मोहाविष्ट दिखते। तो क्या इस पाताल राग को कोई पाताल भैरवी गा रही होती थी। इस पाताल राग को बेनी जब नहीं सुन रहे होते थे तो खुद से बातें कर रहे होते। ये शायद उनके अकेले पड़ जाने के लक्षण थे। जब वे खुद से बातचीत कर रहे होते तो लोग उनको देख रहे हैं यह उनको नहीं समझ आता था। मसलन वे मामा के घर की ओर जानेवाली बस में खुद से संवाद शुरू कर देते थे जिसे बस में बैठे लोग बड़े मजे से देखते रहते।

बेनी मामा के यहाँ आने-जाने में खरच हो रहे थे–वे जाकर लौटते लेकिन लौटते ही अगली दफा जाने की योजना बनाने लगते। और जब जाने का दिन नजदीक आने लगता तो वह अपने पाजामे पर कलफ लगाते–चावल के उस माँड़ से जिसका स्वाद फर्टिलाइजर की वजह से बिगड़ गया था और जिसकी वजह से उन्होंने चावल खाना कम कर दिया था। फर्टिलाइजर के पहले का चावल ललछहँू था, वह मीठा था और मुँह में जाते ही मुँह में तरह-तरह के तरल निकालने लगते थे। मुँह में चावल इस तरह से भर जाता है कि जैसे मुँह में हँसी भरी हो। लेकिन जब से गोबर की जगह दूसरी तरह की खादों का इस्तेमाल शुरू हुआ था–चावल सफेद हो गया था वियतनाम या इराक में मरे हुए अमेरिकी के चेहरे जैसा। मुँह में वह नाखून के सख्त टुकड़े जैसा लगता लेकिन उनका माँड़ अच्छा बनता और वह पहले से बढ़िया कलफ लगाता। एक लोटे में कोयला डालकर प्रेस बनाई जाती और प्रेस की जाती। प्रेस करने का काम मोहिनी का था। मोहिनी भागती तो प्रेमकथा की तरह थी लेकिन पीले पेजों वाले उपन्यासों की नायिकाएँ मोहिनी की दशांश मेहनत भी नहीं कर सकती थीं। मोहिनी फर्राटे से चला करती थी–आँधी की रफ्तार से थोड़ा ही कम जो अवध में मई-जून में खूब बहा करती है। लेकिन मोहिनी वनस्पतियों के बीच वैसी ही घूमा करती थी जैसे संस्कृत काव्यों की नायिकाएँ लेकिन इस तरह घूमते हुए मोहिनी गोरू चराया करती थी या फिर जानवरों के लिए घास छील रही होती थी–आम की सबसे पतली डाल जैसी लहराती मोहिनी जहाँ तक कोई न पहुँच सकता हो और जिसके ऊपर कोई सवार न हो सकता हो। लेकिन इस डाल पर अगर कोई पक्षी और तितली बनकर ही बैठना चाहता था तो मोहिनी क्या करती। सुख तो चाहिए ही बिलकुल वैसे ही जैसे साँस चाहिए। वैसे ही कि जैसे उँगली को कुछ बनाने के लिए कुछ चाहिए और पैर को चलने के लिए एक दूरी

चाहिए। और अगर सुरेन्द्र वर्मा के एक नाटक के शीर्षक का सहारा लेकर कुछ कहना हो तो कहना पड़ेगा कि मोहिनी सूर्य की सबसे पहली किरण को जानती थी सूर्य की सबसे अन्तिम किरण-सी बार-बार बुझती मोहिनी। मोहिनी के जीवन में बहुत नाटक था। नेपथ्य से आवाजें आती रहती थीं कि संवाद ठीक नहीं बोला जा रहा, कि ऐसे नहीं ऐसे चलना था। नाटक में स्त्री होने की निर्बलता थी और पुरुष की धप-धप थी। मोहिनी पीतल के लोटे को घुमाते हुए हँसते हुए ये भी पूछती कि बप्पा, क्या बात है अपने मामा के यहाँ बहुत सज धज के जाया करते हो। इस बात को सुनकर रामदेई के चेहरे पर तीन चार लकीरें उभर आतीं। और पिता का चेहरा न चाहते हुए ऐसा हो जाता है कि जैसे उन्होंने मीठा पान मुँह में दबाया है। मोहिनी ने रामलीला काफी देखी थी और एकाध बार नौटंकी भी। उससे लगता था कि बप्पा एक ऐसे पात्र हैं जो भूमिका को नहीं जानता है। वह बस मंच पर भटकते हुए चला आया करता है।

सन्देहास्पद चेतना ने किया

सन्देहास्पद पदार्थ का निर्माण

जिसमें देवकीनन्दन खत्री ने भी

अनजाने सहयोग किया

यह जानना आसान नहीं था कि पिता मामा के यहाँ इतना क्यों जाया करते हैं। क्या इसलिए कि उनके बपचन का एक बड़ा हिस्सा वहाँ बीता था या कि वह खेतों में काम करने से बचते थे। शायद वे उस पन्थ में दीक्षित हुए थे कि मेहनत नहीं, कुछ और करने में कुछ होता है। इसको लेकर वे कितने साफ थे यह कहा नहीं जा सकता था। हो सकता है कि यह वजह भी रही होगी कि वे अगर खेत पर जाकर दो चार ढेले ही फोड़ते कि बस मेंड़ पर बैठकर हाँफने लगते। तो सन्देहास्पद चेतना ने सन्देहास्पद पदार्थ का निर्माण कर डाला था। सन्देहास्पद चेतना थी मेहनत पर सन्देह और सन्देहास्पद पदार्थ था बेनी सिंह का देह गेह। इस विश्वास के भयानक नतीजे निकलते-निकलते रह गए। रामदेई अवध में बनने वाले मोटे से पर्दे से बाहर निकल आईं और जो भी घर में पैदा होता वह इसलिए कि माँ घर की गाय और बैल दोनों थीं। सहना उन्हें था तो डहना भी उन्हें ही था। इस बीच में मोहिनी को अपने साथ लगा लेतीं जो गाँव के स्कूल से आठ करके सिलाई का कोर्स कर चुकी थी। पिता किस्सा तोता मैना पढ़ते या चन्द्रकान्ता सन्तति और बात-बात में ये कहते रहते कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है। ऐसा उनके मामा भी कहा करते थे। हो सकता है कि बचपन में मामा के यहाँ ज्यादा रहने की वजह से ऐसा हुआ हो। लेकिन क्या पिता माँ की टन-टन बजती ताँबे की धूसरता से बचने के लिए मामा के घर चले जाए करते थे।

देखिए, वाचक नायक फिर बदल गया:

कहानीकार में बहुत विभ्रम है जैसा कि

इस दुनिया को बनाने वाले सृष्टिकार में

बेनी का मन रामदेई के पास जाने का न होता लेकिन महीने दो महीनों में जब देवकी नन्दन खत्री के उपन्यास की किसी रानी या कुटनी का रूप वर्णन पढ़ते तो लगता कि इच्छाओं के कई पैरों वाले गोजर देह के किसी हिस्से पर चढ़ रहे हैं। गर्मी की दोपहर में ऐसा काफी होता और ऐसे में अगर रामदेई घर के भीतर होती तो वे किसी ऐयार की तरह दबे पाँव अन्दर बिस्तर पर कटनी दंवनी सिंचनी से निढाल पड़ी रामदेई के बगल में जाकर लेट जाते। लगता वे पत्थरों की बगल में लेटे हैं। पत्थर गड़ते भी। बेनी रामदेई के मुँह की तरफ अपना मुँह ले जाते तो तमाकू की बू आने लगती। छाती पर हाथ रखने के पहले ही वहाँ से हाथ हटा लेते। वहाँ पर रखी गेंद लुढ़क कर कहीं और गिर गई थी। बेनी जैसे उस खोई गेंद की तलाश में अन्दर की तरफ जाते फिर पानी पीते। बेनी अन्दर के भीतर में गंधाते गद्दों के बीच में जाकर लेट जाते। तब पाताल में रहने वाली रूपसी को एक बार फिर जागृत करते और धीरे-धीरे तकिए पर अपने को रगड़ते–अन्दर का पोखर हिलने लगता, फिर उबलने लगता और फिर वह बाहर आ जाता। इस काम के लिए उन्होंने एक तकिया मुकर्रर कर रखा था जो लगता था कि बाल्टी भर माँड़ में डालकर सुखा लिया गया हो। इच्छाओं का कारोबार निपटाने के बाद वे उन्हीं बसाते गद्दों में सो जाते। और उठते तो पसीने में भीगे होते और वो रात का कोई पहर होता।

एक गिलास पानी उठाने की गरिमा

तो एक शुरुआत भर है फिर बीज डालने के प्रयत्न

और आग जलाने का आन्दोलन

और अधीन न होने की विकलताएँ

रामदेई फावड़ा चलातीं, कुदाल चलातीं, और गर्म चलती हवाओं को इस तरह से अपने चेहरे से हटाने की कोशिश करतीं कि जैसे वो हवाओं का रुख मोड़ देंगी। ऐसा लगता ही भर था क्योंकि वो तो अपने पति के रुख को भी नहीं बदल पाई थीं जिसे खेतों में जाने की बजाय अपने मामा के अहाते की तरफ चल पड़ना ज्यादा भाता था। रामदेई दूनी मेहनत करती थीं लेकिन खेत इतने कम थे कि बस दाना-पानी ही चल पाता था। और मिट्टी भी तो स्त्री का हाथ पहचानती है–स्त्री के हाथ का चला फावड़ा उतना ही नीचे तक तो जा नहीं पाता जितना नीचे तक मर्द की कुदाल। लेकिन बेनी तो चन्द्रकान्ता सन्तति के ऐयारों के साथ इस पाताल से उस पाताल में घूमते रहते। वे चन्द्रकान्ता के रूप से बिंधे थे। बेनी सिंह ने बरसों से एक उपन्यास भी छेड़ रखा था। चन्द्रकान्ता की ही तर्ज पर जिसके कितने ही पेज लिखे जा चुके थे। उनको लगता कि उनका नाम भी देवकी नन्दन खत्री की तरह मशहूर

होगा। जान यह पड़ता था कि जिस उपन्यास को बेनी लिख रहे थे उसके पात्रों की भूल-भुलइया उनके जीवन में फैल गई थी। उनके उपन्यास में पाताल था, पाताल भैरवी थी। पिता को जैसे अपने जीवन में रास्ता नहीं मिल रहा था वैसे ही उनके पात्रों को भी रास्ता नहीं मिल रहा था। तो लेखक और पात्रों के बीच एक अजीब सी पारस्परिकता विकसित हो गई थी। दरअसल बेनी सिंह को इस बात का इल्म नहीं था कि कथा में कितना कुछ बदल चुका था। वे इस बदलाव के बारे में जानना भी नहीं चाहते थे। इस मामले में वे अपने मामा की तरह थे। तो बेनी पाताल में घूमते रहते थे जहाँ समय रुका हुआ था। इस पाताल से निकलकर वे मामा के अहाते की तरफ चल देते थे–यह कमोबेश एक पाताल से दूसरे पाताल की तरफ जाना था। मामा के यहाँ आने-जानेवाले दिन वह बहुत सारा खाना खाते। यह गेहँू की रोटियाँ, अरहर की दाल, चावल और लौकी या तोरी की सब्जी खाते थे। बजरी या चने की रोटी रास्ते में पेट में उत्पात कर सकती थी। बेनी का मेहनत विरोधी पाचनतंत्र मोटे अन्न के प्रवेश मात्र से हाय हाय करने लग जाता था। मामा के यहाँ जाने के लिए सात मील पैदल चलना होता था और उसके बाद बस लेनी होती थी और बस से उतरकर फिर सात मील चलना होता था। लेकिन पिता को यह दूरी डराती नहीं थी थकाती भी नहीं थी। या कि वे इस दूरी में थका हुआ नहीं दिखना चाहते थे। पिता किसी भी मुसीबत में होते तो अपने मामा के घर चल पड़ते। पिता के ऊपर हमेशा मुसीबत रहती थी इसलिए यह जानना आसान नहीं था कि दरअसल वे किस मुसीबत को इस लायक समझ रहे हैं कि वे मामा के घर की तरफ चल पड़ें। मामा के घर की ओर जाते हुए पिता का चेहरा जस्ते के पिचके बर्तन जैसा होता था जिस पर कलई की गई हो लेकिन लौटते समय उनका चेहरा ठंडा होता था। रात में रेत में ढनके तरबूज जैसा। वे पेड़ में बहुत ऊपर लगे एक अकेले फल की तरह बहुत अकेला दिखते। मामा के घर से लौटने के बाद पिता कम खाते और उनकी हालत ऐसी हो जाती जैसे कि किसी लड़की ने पेस्टिसाइड खाकर आत्महत्या की कोशिश की हो। माँ के ताँबे की कालिख अचानक बढ़ जाती। उस शाम के खाने में माँ पिता की तरफ रोटियाँ फेंकती कि जैसे वो कुत्ता हो।

अपने मामा के घर के पास पहुँचते ही बेनी उर्फ बचई को लगने लगता कि उन्हें शीशा देखना चाहिए कि वो कैसे लग रहे हैं। लेकिन शीशा तो उन्होंने सालों से नहीं देखा था। घर में शीशा नहीं था–शीशा आता था और टूट जाता था। बेनी चुपके से शीशा तोड़ दिया करते थे। तीन-चार शीशों के फ्रेम पड़े भी हुए थे–शीशा चुपचाप तोड़ने की वजह ये थी कि घर में लड़की थी और काफी सुन्दर भी थी। इस बात को वह जितना ही कम जाने उतना ही ठीक रहेगा। लेकिन बेनी को ये ध्यान नहीं आता था कि सबसे बड़ा शीशा तो सामने लहराता तालाब था। जिन्दगी से लड़ने के लिए बेनी कुछ न कुछ शॉर्ट कट निकाल लिया करते थे। शीशा तोड़ते रहना उनमें से एक था। रामदेई शनि बाजार से जब भी शीशा ले आई तो टूटा मिला। एक दिन रामदेई ने बेनी को शीशा तोड़ते देख लिया और उसके बाद शीशा लाना बन्द तो कर दिया लेकिन बेनी से ये जरूर कहा कि बहुत कायर हो।

बस इतना कहे देता हूँ कि मुझसे थोड़ा डरके रहना

उस रोज रात का पता नहीं कितना बजा था। मैं और बप्पा मटर के खेत से लौट रहे थे। उस रात में बप्पा का निमोना खाने का मन हुआ था। अम्मा ने कहा वो बना तो देंगी लेकिन हरी मटर तोड़ कर बप्पा को ही लाना पड़ेगा। बप्पा ने मुझसे पूछा–चलोगे। बप्पा ने यह क्यों कहा और मैंने क्यों मान लिया ये मैं नहीं कह सकता। लेकिन जो उस रात में हुआ उसने हमारे परिवार की नींव को हिलाकर रख दिया। इसे संजोग नहीं कहेंगे तो और क्या। नहीं तो मैं और बप्पा कभी किसी की जगह के लिए इस तरह गाँठ जोड़ के नहीं निकलते थे। उस रात कोई भी योग ठीक नहीं था क्योंकि वह चाँदनी रात थी और किसी भी चीज के होने का आभास तो मिलता ही था ठीक-ठीक अगर किसी चीज की शक्ल साफ न भी दिखती हो तो। उस दिन हमने क्या देखा–मैं नहीं बताने वाला। और अगर किसी ने कहा कि उसे मालूम है तो मैं उसकी आँत में चाकू डाल दूँगा।

लेकिन

बेनी सिंह के बेटे जगत सिंह के न बताने से बात क्या छिपी रह सकती थी। उस चाँदनी रात में जब बेनी सिंह और उनका बेटा जगत सिंह मटर लेकर आ रहे थे तो जगत सिंह को रास्ते से काफी हटकर किसी जानवर के दूसरे जानवर को चाटने की चप्प-चप्प सुनाई दी। जगत सिंह को लगा कि यह तो उनकी अपनी रतिक्रीड़ा का ऑडियो कैसेट है जिसे वह सुजाता तिउराइन के साथ सम्पन्न किया करते थे और लगभग इसी जगह पर। तो क्या सुजाता शरीर का जो खेल उनके साथ खेल रही है वही वह किसी और के साथ भी खेल रही है। जगत सिंह ने सुजाता के चेहरे के पसीने को जब सबसे पहले बहुत नजदीक से कंठ से उतरकर वक्ष के बीच गिरते हुए देखा था तो वह एक मानव बम में बदल गए थे जो किसी भी समय फट सकता था। उनकी इच्छाओं के कबाड़खाने की टीन टप्पर अजीब-अजीब तरह से खड़खड़ाने लगा था। उस दिन वे सुजाता के इतने नजदीक आए हुए थे कि उस मिट्टीमय तरलता की उमस ने उन्हें विकल कर डाला। जगत सिंह की माँ ने सुजाता से पाँच खाँची भूसा लिया था। और भूसा लाने का काम जगत सिंह को सौंपा गया जिसे भुन-भुन करते जगत सिंह ने अन्ततः स्वीकार कर लिया। भूसा अटारी पर था और सुजाता हाँ भइया, इधर से, इहाँ से कहती आगे आगे चल रही थी। और दीदी-दीदी कहते जगत पीछे-पीछे चल रहे थे। पतली सी मारकीन की धोती में सुजाता की देह देह से बाहर आ रही थी। पसीने की वजह से धोती जगह-जगह भीग रही थी। जगत सिंह अटारी पर चढ़ते हुए एक जगह सीढ़ी पर रुक गए। साँस काबू में नहीं आ रही थी। तिउराइन एक बड़े से कच्चे घर में अकेले रहती थीं। पति कमाने बम्बई गया था जिसके बारे में यह खबर थी कि चकलों में उसका काफी आना-जाना है। पति के पास ही 17 साल का बेटा भी चला गया था जो शादी के साल भर के भीतर ही 17 साल की सुजाता की कोख में आ गया था। जहाँ भूसा रखा जाता है वहाँ पहुँचते-पहुँचते जगत सिंह ने सोचा कि लौट चलना ही ठीक होगा। पीली बनियान पहने जगत सिंह ने अपने लाल जाँघिये को देखा जो लारसेन टुर्बो की क्रेन में बदल गया था। जगत सिंह ने इच्छाओं में लिथड़ी विन्रमता से कहा–भूसा फिर ले लेंगे। लेकिन सुजाता ने कहा–कि आ गए हो तो ले ही जाओ। खाँची में सुजाता भूसा भर रही थी–जगत

भी यहीं काम कर रहे थे कि एक के हाथ से दूसरे का हाथ पूरी तरह से दब गया। जगत ने हाथ के नीचे से हाथ को पकड़ लिया और धीरे से बोला दीदी। जगत सिंह ने सुजाता को भूसे के गद्दे पर लिटा दिया और वस्त्र के लतापत्रीय छायाभाव को हटा कर एक किनारे कर दिया। एक गहन छपाछप का अन्त एक सिलसिले की शुरुआत थी। जगत सिंह सुजाता के घर बहुत आते-जाते तो संदेह की ज्यादा गहरी परिधि में जाते। इसलिए मिलने-जुलने के लिए खेत खलिहान को ही ठीक पाया गया। एक तालाब के किनारे गर्भपात की मांसमज्जा को तिउराइन और जगत से जोड़ा गया लेकिन बात कनबतियों से आगे न जा पाई। तिउराइन जगत से कहतीं कि बहुत पाप हो रहा है। ऐसे में जगत सुजाता के होंठ अपने मुँह में डालने के लिए बढ़ते ताकि वह सुजाता के होंठों के साथ सुजाता के शब्दों को भी खा पी डालें। तब सुजाता तड़पकर कहतीं कि तुम्हें एक ही चीज चाहिए। छोड़ दो हमें...बेटे की उमिर के हो। बेचैन सुजाता गुस्से से भरी चिट्ठी पति और बेटे को लिखवातीं कि हमें भी ले जाओ। किस बियाबान में किसके सहारे छोड़ गए हो। क्या केवल खेती करने और उसे रखाने के लिए। बम्बई से चिट्ठी आती कि टहिया वाले खेत में धान लग गया है कि नहीं। फिर धान के खेत के चौड़े से मेंड़ पर जगत सिंह सुजाता के होंठ, शब्द और तरल पीने आ जाता। कई बार चाँद उगा होता और जगत सिंह प्यार करते हुए पूछता रहता कि कैसा लग रहा है दीदी। सुजाता बहुत उदास होकर कहती कि क्या बताए दीदी। आज जब जगत सिंह ने आवेग की कराहें सुनीं तो दबे पाँव उस तरल और ऐन्द्रिय छपाछप की ओर बढ़ गए। तिउराइन को रँगे हाथ किसी और के साथ पकड़ने। लेकिन जगत सिंह के पैर के नीचे से जमीन और सिर से आसमान खिसक गए। उनकी बड़ी बहन मोहिनी चन्द्रभान के साथ प्रेम के आखिरी दौर को निपटा रही थी। जगत सिंह ने एक हिंसक पुकार लगाई, कौन। तो भाई की आवाज को पहचानते हुए बेहद घबराई मोहिनी के मुँह से निकल गया—मैं हूँ। इस बीच जगत का पीछा करते हुए बेनी भी आ गए थे। साँप-बिच्छू से बचने के लिए जो लाठी लेकर वो चल रहे थे उसको उन्होंने मोहिनी पर बरसाना शुरू कर दिया। बेनी ने मोहिनी का हाथ पकड़ लिया और उसे घसीटते हुए घर की ओर लेकर चल पड़े। कुछ देर में वे काफी जोर-जोर से रोने लगे। जगत सिंह चन्द्रभान के घर की तरफ दौड़ा क्योंकि उसके अनुसार वह ही उसकी बहन को उस रात में भोग रहा था। चन्द्रभान बड़ी मुश्किल से मिला—जगत सिंह ने उसका गला पकड़ा तो उसने कहा कि उसने कुछ नहीं किया है। जगत सिंह लाचार था—मोहिनी ने मुँह सिल रखा था। जगत सिंह ने दहाड़कर पूछा कि तुझे कौन भोग रहा था तो उसने कहा ये क्या करोगे जान कर। जगत सिंह ने कहा कि उसे मार दूँगा। मोहिनी ने कहा मैं भी तो उसे भोग रही थी। मैं तुम्हारे हाथ लग गई हूँ जो करना है करो। जगत सिंह ने इस बात पर पिता की पनही बहन के मुँह पर दे मारी।

चीजों का पुनर्निर्माण सम्भव है लेकिन

अवसाद समीक्षा में नहीं बदल पाता

इस बार बेनी जब मामा के घर पहुँचे तो मामी की नहाने की चौकी की मरम्मत की जा

रही थी। उसका चूने के गारे वाला पलस्तर झर गया था। लेकिन पलस्तर तो पूरे घर का झर रहा था। शायद हवा में जो धूल थी उसकी वजह से बेनी को घर में पहुँचते ही छींक आ गई। उस सूने के घर में बेनी की छींक बहुत तेज गँूजी। उनके आने को भाभी ने जान लिया था–उसके मामा के बेटे की पत्नी ने जिनकी आवाज में दस किलो लोहे के बाँट का भारीपन था। क्या इस आवाज को सुनने बेनी इतनी दूर से चले आया करते थे। बेनी को भाभी ने बेनी कहकर बुलाया तो बेनी किसी गुलाम की तरह काँप गए। लगा इच्छाओं की बहुत सारी बूढ़ी चींटियों का छत्ता उन पर गिर गया हो। उन्हें प्रेम के आखिरी कारोबार को निपटाती मोहिनी याद आई–अचानक अपना सलवार खींचती हुई और काँपते हुए नाड़ा कसती हुई और बिफर कर रोती हुई। और फिर उन्हें वह मोहिनी याद आई जिसे वो नहलाया करते थे कुएँ की एक चौकी पर और फिर उसे कन्धे पर लेकर घर की तरफ बढ़ते थे। बेनी को वे नीली धारियाँ याद आईं जो उन्होंने और उनके बेटे जगत सिंह ने मोहिनी की देह पर बनाई थीं डंडों से। फिर उन्हें अपनी दहाड़ सुनाई दी कि साली साइकिल पर चढ़कर रंडीबाजी करने जाती है। इसीलिए साइकिल सीखी थी। गई थी सिलाई सीखने कि कपड़ा सिएँगे और हमें कपड़ा उतारकर दिखा दिया। फिर उन्हें साइकिल के दो ट्यूबों से निकलती हुई हवा सुनाई पड़ी जो उन्होंने उस रात निकाली थी। और फिर ईंट के तीलियों पर धाड़-धाड़ गिरने की आवाजें। और फिर साइकिल के हैंडल के उखड़ने की आवाजें। नहीं बप्पा–मोहिनी की चींटी जैसी पतली-सी आवाज पतले से विवर से निकल कर मिट गई थी। वे उस खम्भे से टिक गए जिसकी लाल ईंटें आग की लपटों की तरह दिख रही थीं। वे बेतहाशा रोने लगे। सुबक-सुबक कर। वे खम्भे से टिककर बैठ गए। बिट्टू–मोहिनी का यह नाम लार, नाक के निकले तरल खून में लिथड़ कर उनकी बाँह पर फैल गया। बेनी को यह नहीं पता चल पाया कि खून मुँह से निकला था या नाक से। बेनी ने पीठ पर एक हाथ महसूस किया जो भाभी के वाक्य जितना ही भारी था।

बप्पा अपने मामा के यहाँ जाकर बीमार हो गए। यह बात मैंने सुनी तो मैंने सोचा कि हमारे ज्यादा बुरे दिनों की शुरुआत होने वाली है। मेरा इंटर का नतीजा निकला था और तीसरी बार फेल हो गया था। पिता को मैं यह बात कैसे बताऊँगा। मैं बप्पा के पास चलने की तैयारी कर रहा था लेकिन मैं चला गया तो बहन पर कौन निगाह रखेगा। मैंने जब ये बात अपनी माँ से कही तो वो उपले पाथ रही थीं। बरसों की थकान के साथ उन्होंने पिछले हिस्से को जमीन पर धम से रखते हुए कहा–ऐसा है तुम बाप-बेटा हम माँ-बेटियाँ की फिकिर ज्यादा न किया करो। अपने कामधाम के बारे में ज्यादा सोचा करो। उस दिन बेटी की हड्डी तोड़ी, उसने काम पर जाने के लिए महीनों पैसा जमा करके जो सेकंड हैंड साइकिल खरीदी थी वो तोड़ी। अब वो रोज तीन मील पैदल जाती है और टेलर की दुकान बन्द होती है तो मुँहअन्धेरे पैदल लौटती है। तुम्हारे पास हम माँ-बेटी पर निगाह रखने के अलावा और कोई काम नहीं है। माँ की देह का ताँबा उस दोपहर लोहे के स्याह में बदलता रहा और फिर जैसे भट्ठी में लोहा लाल हो जाता है वैसा हो गया। पैर पटकता हुआ मैं वहाँ से घर आया और कमीज-पैंट पहनकर बिना खाए-पिए पिता के मामा के घर की तरफ निकल पड़ा। अपने गुस्से को जताने के लिए मैं न खाने का रामबाण इस्तेमाल किया करता

था। मेरे पिता भी यही किया करते थे। गुस्से में बिफरते हुए मैंने घर की थालियों को पटका, सारे बिस्तरों को उठाकर आँगन में धूल में झोंक दिया। और फिर जिसे मोहिनी का बक्सा माना जाता था, उससे रुपए निकालकर मैं पिता के घर चल पड़ा। मेरे झोले में गुलशन नन्दा के दो उपन्यास थे–'जलती चट्टान' और 'सिसकते साज'।

इसके पहले पिता के मामा के घर मैं केवल एक ही बार गया था–उसे क्या कहते हैं कि दौड़ते हुए गया था और भागते हुए लौटा था। एक रात की मोहलत सरकार ने दी थी नहीं तो अगले दिन तीन बजे तक घर की कुड़की हो जाती। तीन साल का लगान बकाया था। सुना गया था कि किसानों पर ये जोर जबरदस्ती विश्व बैंक के इशारे पर की जा रही थी। मैंने जब ये सुना तो मैंने सारे अश्लील उपन्यास तालाब में जाकर गाड़ दिए कि कहीं सामान के साथ वे भी न दिख जाएँ और मुझे बेइज्जत होना पड़े कि देखो ये फेलियर क्या पढ़ता है। उस रोज मैं बकाया रुपयों को चुकाने के लिए रुपए लेने पिता के मामा के यहाँ गया था और उन्हें लेकर उल्टे पैर लौटा था। इस बार भी इमरजेंसी ही थी। पिता बीमार थे लेकिन पहुँचते ही उन्होंने पूछा कि इस बार भी पास नहीं हुए न। मैंने कहा कि मैं अब नहीं पढ़ूँगा तो उन्होंने कहा कि क्या दारू की दुकान खोलोगे। मुझे लगा कि शराब का ठेका खोलने में क्या हर्ज है। पिता की झक-झक के बाद मैं शरबत पीकर बाहर निकल गया जिसे सोना लेकर आई थी।

पिता के मामा ने दो शादियाँ कीं–पहली शादी से एक लड़का हुआ करैत की तरह जहरीला। उसे रात में नहीं दिखता था। रतौंधी है–ऐसा कहा जाता था। लेकिन वह कहता था कि दिन में भी कम दिखता है। इस तरह की बातें करने के बावजूद उसने चश्मा नहीं पहना। यह एक विशाल कुएँ की जगत से किसी मजदूर को पुकार कर कहता था कि आ रहे हो कि चला दूँ गोली। वह घर में काम करने वाली लड़कियों की छाती पर सीधे हाथ रख देता और कहता इस बार आम ज्यादा पके हैं। काम करने वाली लड़कियाँ कहतीं कि पागल हो रहे हो श्याम जी। ये आम नहीं, आम ये है और वे एक असली आम हाथ में थमा देतीं। काम करने वाली लड़कियाँ अमूमन अपने को यही समझातीं कि श्याम सिंह ने जो किया वो इसलिए किया कि उन्हें कम दिखता है लेकिन जो लड़की कुछ नहीं बोलती और खिलखिलाती रहती तो श्याम जी की ऐन्द्रिय उग्रता को हरी झंडी मिल जाती और वह देह में जगह-जगह लगे फलों को खूब चूसते। पिता के मामा के यहाँ काम करने वाली लड़कियाँ उस तबके की होती थीं जिन्हें छोटी जातियों की कहा जाता था। इन बेहाल घूमती बेटियों के पिताओं के पास खेत नहीं थे, काम नहीं था। पिता के मामा की जागीर उन लोगों की कीमत पर हासिल की गई थी जिसके घरों में लालटेन के लिए मिट्टी का तेल जुट जाए तो बड़ी बात है। वे मकरा की रोटी खाते थे, कोदो का भात और पानी जैसी दाल। वे खेत जोतते थे लेकिन खेतों का मालिक उन्हें नहीं होने दिया गया था। पिता के मामा ने आसपास के सारे खेत हड़प रखे थे और लोगों को अपना चाकर बना रखा था। पिता के मामा के परकोटे में उन घरों की लड़कियों को बचा-खुचा ही सही पेट भर खाना मिलता, सोने के लिए कोने मिल जाते जहाँ कौन कब कैसे दबोच लेगा इनको कोई पता नहीं था।

पिता के मामा के दो ही बेटे थे लेकिन घर में पता नहीं किस तरह के लोग आते-जाते रहते थे। इनमें ज्यादातर वे लोग थे जो मामा के वंश के आखिरी चरागों के बुझने का इन्तजार कर रहे थे। श्याम सिंह को तेईस-चौबीस के आसपास सुजाक हो गया और धीरे-धीरे उनका पूरा शरीर सड़ गया। दूसरा बेटा चन्द्रभूषण नि:सन्तान था। जो लोग बाजू के जोर पर खेत जुतवा लेते थे, कितनी ही पीढ़ियों को गुलाम बनाए हुए थे, और आसपास की औरतों को पाते खाते रहते थे वे अपने उत्तराधिकारी नहीं पैदा कर पाए। पिता के मामा के पूरे परकोटे में निराकार हताशा घूमती रहती थी। जैसे 'वह कौन थी' में एक रूह घूमा करती थी। पिता के मामा का परकोटा था भी स्याह और सफेद फिल्मों का बियाबान। वंश देने का पूरा दारोमदार मानिनी पर था लेकिन समय गुजर चुका था। चन्द्रभूषण सिंह ने पहली पत्नी के जिन्दा रहते ही उनसे ब्याह कर लिया था–सन्तान तो चाहिए ही थी, नए शरीर को पाने का जोश भी कम नहीं था। मानिनी में आदमी को अपना कुत्ता बना लेने का हुनर था। उनके रूप में बारे में काफी हल्ला था। मानिनी के पास रूप था और शरीर भी बड़ा था–चन्द्रभूषण उनके कन्धे तक आते थे।

पिता के बारे में यह वृत्तान्त मैं जानता हूँ लेकिन उसका वर्णन नहीं कर सकता

बेनी ने जब पहली बार ब्याह कर आई मानिनी को देखा तो देखते रह गए। वे मानिनी की लम्बाई के थे। मानिनी को देखने के बाद अकेले होते ही उन्होंने एक भीषण हस्तमैथुन किया। अरहर के सघन खेत के भीतर। बेनी उनके देवर लगते थे तो एक काल्पनिक मैथुन की छूट उन्हें थी भी। उसके बाद तो बेनी ने पता नहीं कितने हस्तमैथुन मानिनी को अर्घ्य के तौर पर समर्पित किए। बेनी मानिनी को देखने आया करते थे जिनका मुँह जल्दी ही कत्थे की खदान में बदल गया था। सोते-जागते उनके मुँह में पान रहता। मानिनी वैसी ही चबा-चबाकर बोलती जैसे कि उनका सरौता कर्र-कर्र चलता। बेनी को लगता कि कहाँ मानिनी और कहाँ रामदेई। एक सोना था तो दूसरी मिट्टी। यह सच भी था–रामदेई खेत की मिट्टी फाँकती रहती तो मानिनी पलंग तोड़ती रहती। लेकिन यह इसलिए भी तो था कि बेनी एक ढेला फोड़ने को राजी नहीं थे।

बेनी मामा के घर आकर बीमार पड़ गए तो ठीक ही लगा। उन्हें लगता कि वे किसी अप्रत्याशित सम्भोग और सम्पत्ति की सम्भावना के पर्यावरण में लेटे हैं जहाँ कुछ भी हो सकता है। वे हवाओं में छिपे सन्देश पढ़ने की कोशिश करते क्योंकि सन्देश तो उनमें थे। वे पत्तों की आहटों पर कान लगाए रहते क्योंकि आहटों को कुछ कहना तो जरूर था। वे पेशाब के लिए खम्भे थामते हुए आगे बढ़ते कि कहीं पत्थर कुछ बोल रहे हों तो उनकी आवाज सुनी जा सके। हिलते हुए वह मानिनी के कमरे में चले जाते। मानिनी कहतीं आओ, छोटे। फिर वो कहतीं यहीं क्यों नहीं रह जाते। बेनी कुछ नहीं कहते। लेकिन मन में सोचते कि कैसे रह जाएँ। मामा चाहेंगे तब तो रहेंगे–मानिनी के पति यानी चन्द्रभूषण चाहेंगे तभी तो वो रहने के लिए चाहेंगे और क्यों नहीं चाहेंगे। इनके मरने खपने के बाद जायदाद उनकी ही तो होगी–उनके बेटे जगत सिंह की जो दारू का ठेका खोलने के बारे में सोच रहा

था जिन्दगी बन जाएगी। लेकिन ये तो वे पिछले कितने ही सालों से सोच रहे हैं तब से कि जब से उनके पास उड़ते-उड़ते यह खबर आई थी कि चन्द्रभूषण बच्चा नहीं पैदा कर सकते।

उस दोपहर मानिनी ने उनकी तरफ देखा और कहा–देखते-देखते बुढ़ा गए। बेनी ने गहरी साँस ली। मानिनी ने उनकी तरफ देखा और कहा–तुम भी बुढ़ा गए। एक धीमी सी आँच पूरे कमरे में फैलने लगी। बेनी मानिनी की तरफ देखने लगे–पाताल में पाताल भैरवी की तरफ देखते हुए। मानिनी ने कहा–तुमको देखते ही लग गया था कि तुम मुझसे दो अंगुल बड़े हो। बेनी की आँखों में एक खालीपन भर गया। वे एक हारी लड़ाई को जीतने की कोशिश करने लगे। कभी हमने एक साथ खड़े होकर नापा नहीं कि कौन कितना लम्बा है–बेनी ने कह दिया। आज नाप लें क्या–मानिनी ने भी कह दिया। बेनी खड़े हो गए, मानिनी भी खड़ी हो गईं सटकर। और फिर दोनों शीशे के सामने आ गए। मानिनी ने कहा–तुम तो बड़े निकले। फिर मानिनी ने कहा–इन होंठों का भी क्या हाल हो गया। बेनी ने उन होंठों को अपने होंठों में भर लिया। पाताल में उन्होंने पाताल भैरवी को अपनी बाँहों में भर लिया और धीरे से बोले मानिनी। मानिनी ने कहा–छोटे। इतने में दरवाजा खुला और एक लड़की कमरे में आ गई। आम का रस लेकर आई थी। बेनी काँप गए–अब क्या होगा। मानिनी ने लड़की से आम का रस एक जगह रखने को कहा। वह नई थी। मानिनी ने उसे देखा और बहुत ठंडी आवाज में कहा–किसी से कुछ कहा तो आठ टुकड़े करवा दूँगी। उसने पूछ लिया–काहे मालकिन। मालकिन हँस पड़ीं। उन्होंने कहा–कुछ देर में आकर जूँ काढ़ देना। मानिनी पलंग पर लेट गई और बोली–इतनी बड़ी देह थी लेकिन ये एक पूत नहीं पैदा कर पाई। सराप है। इतने लोगों का खून चूसोगे तो क्या होगा, यही होगा। तुमने भी ये होंठ अपने होंठ में लेने में तीस साल लगा दिए। बच्चा तो चाहिए ही था। प्रेम भी। मानिनी का चेहरा आँसुओं से तर हो गया था। बेनी के अँधेरे पाताल में अचानक उजाला हो गया। बेनी उठे और दरवाजे की ओर जाते हुए काँपती आवाज में बोले–दरवाजा बन्द कर दूँ। मानिनी ने विसर्जन की आवाज में कहा–बैठो, बेनी। अब तो सब खतम है। बेनी शीशे के सामने बैठ गए। पिता के मामा के यहाँ शीशे ही शीशे थे। शीशों की वजह से ऐसा लगता था कि उस परकोटे में काफी लोग हैं क्योंकि शीशे एक आदमी को एक और आदमी में तो बदल ही देते थे। यहाँ अमूमन एक कमरे में दो-तीन आदमकद शीशे तो जरूर थे। तो कमरों में अकेलापन कम महसूस होता था लेकिन बाहर आते ही लगता है कि लोग बहुत कम हैं। लेकिन उस दिन बेनी को लगा कि सारे बेनी और कई सारी मानिनियाँ छायाएँ भर हैं। वे छायाओं की छायाएँ हैं।

बेनी मामा के यहाँ केवल इसलिए नहीं आते थे कि मानिनी सिंह को देख लें, वे चाहते थे कि उनका बेटा जगत सिंह पिता के मामा का बारिस बने। श्याम सिंह को सुजाक ने खा डाला और चन्द्रभूषण को कोई सन्तान नहीं थी। बेनी आते तो या तो मानिनी के पास बैठे रहते या फिर मामा का मुँह ताकते बैठे रहते कि कब मामा कहेंगे कि सोचत अही कि ई जिमिनिया तोहरे नांव कई देई। सोच रहा हूँ कि ये जमीन तुम्हारे नाम कर दूँ जिसका मतलब ये होता कि जब मामा और उनके बेटे चन्द्र संसार से विदा होते तो जमीन उनके

और उनके बेटे जगत सिंह के नाम हो जाती। वे अपने मामा के सगे भांजे थे।

जगत सिंह को पता था कि पिता किसलिए अपने मामा के यहाँ दौड़ लगाया करते हैं। रामदेई और मोहिनी को भी ये पता था। लेकिन जगत सिंह ने सोचा कि अगर उनकी बहन मानिनी की बांदी में बदल गई तो। तो क्या। यहाँ चूते घर से निजात तो मिल जाएगी। घर की कुड़की का डर तो खतम हो जाएगा। मटर के खेत में चन्द्रभान तो मोहिनी को नहीं रगड़ेगा।

री रे के रोर का अवशेष

जगत सिंह लौटा तो बेनी खुशी के मारे काँप रहे थे–पिता के मामा ने उनसे कहा था कि सोचत अही जिमिनिया तोहरे नाँव कइ देई। कच्चा कागज बनवाय देई कि जब हममाँ से केहू न रहे तो जमीन तोहरे अउर तोहरे बेटवा के नाँउँ होइ जाय। मतलब कि मामा, चन्द्रभूषण और मानिनी के मरने के बाद जमीन उनकी और फिर जगत सिंह की। इसके लिए मामा कच्चा कागज बनवाने की बात कर रहे थे। शर्त थी कि बेनी का पूरा परिवार यहाँ आकर रहेगा। मामा ने कह दिया था तो वह पत्थर की लकीर ही था। मामा का रंग शलजम की तरह था–लगता था खून छलक आएगा। लेकिन अगर श्याम सिंह और चन्द्रभूषण का रंग काला था तो इसकी यही व्याख्या हो सकती थी कि उनकी एक के बाद दूसरी पत्नी का रंग उनके जैसा नहीं था। पिता के मामा जमींदारों की उस परम्परा में थे जिन्हें इतिहास की किताबों में सामन्त कहा जाता था और जिन्हें का हो ठाकुर और मालिक कहा जाता था और जिनके घरों में तीन-चार बन्दूकें हुआ करती थीं और जो बीच-बीच में चिड़ियों और खरहों का शिकार करने आसपास नदी के कछारों में चले जाया करते थे और जो अमूमन अपने यहाँ काम करने वालों को रे और री कहकर बुलाते थे और जिन्होंने भारत की आजादी के बाद सीलिंग से काफी जमीन बचा ली थी लेकिन इसके बावजूद उनकी जमीन और ताकत कम हुई थी लेकिन जो अब भी पास के थाने में भाजी, मांस, पान, चावल वगैरह पहुँचवा दिया करते थे। मामा कम बोलते और इस तरह बोलते कि आखिरी बार बोल रहे हों। मामा की हर बात का मायने था। मसलन अगर मामा ये कह दें कि मार सारे का यानी कि मारो साले को तो जिसके बारे में ये कहा जाता था उसे मामा के पास खड़े लोग दो चार कनटाप रसीद कर देते थे। मामा ने ताकत का जो खेल खेला था उसको याद करके मामा को लगता कि कहाँ थे और कहाँ आ गए–कामायनी के मनु की तरह वह गया सभी कुछ गया वाले साँस उसाँस के दौर में थे। लड़कों के लड़के नहीं हुए थे। मजदूर मिलने बन्द हो गए थे। लेकिन जिस बात ने उनको हिलाकर रख दिया था वो कुछ और थी। आसपास के पासियों ने मामा को सुअर की तरह काट डालने का प्लान बनाया था। लेकिन पसियाने के एक विभीषण ने उनके कान में यह फुसफुसा दिया। रातोरात पुलिस पहुँची तो जरूर लेकिन पुलिस बहुत कुछ कर नहीं पाई। लॉकअप में पासियों को थर्ड डिग्री देने की तैयारी चल ही रही थी कि एक दलित नेता थाने में आ गया। पासियों को बस यह लिखकर देना पड़ा कि वे हफ्ते में एक दिन थाने में आ जाया करेंगे। मामा परकोटे

के पहले महले में जाकर रहने लगे। जीवन भर खुले में हगते आए थे लेकिन इस घटना के बाद दूसरी मंजिल पर लैटरीन बनी और वो भी अंग्रेजी काट की। बैठ के हगो। मामा अस्सी के हो रहे थे और अब वो पासियों के हाथों कत्ल नहीं होना चाहते थे। लेकिन मामा का कत्ल हो गया। लेकिन इस दफा कत्ल करने वाली पार्टी कोई और थी।

श्रम बदलता है संस्कृति में

और संस्कृति भाषा में और भाषा एक मानवीय विप्लव में

जहाँ होता है हिंसक या कूटनीतिक आलस्य

या कलामय ही सही प्रतिकार :

चीजों का अन्त चीजों की

शुरुआत से जुड़ा है

बोतल जब सन्दूक के पास आता तो विचलित होने लगता, अन्दर एक कोहराम मच जाता। सिर घूमने लगता और लगता कि एक विकराल उलटी आने वाली है। सन्दूक के पास आते ही बोतल को झटके लगने लगते। वह उन पशुओं की तरह खदबद खदबद करने लगता जो किसी संदिग्ध को सँूघकर बेचैन होने लगते हैं। किसी भूतग्रस्त की तरह ही वह सन्दूक के आसपास की जगह को खोदने खुरचने लगता। ऐसा करते हुए उसके भीतर से एक बहुत पुरानी रुलाई फूटने लगती। बोतल की आँखें किसी आदिम भेड़िए की आँखों की तरह आग और जल से भर उठतीं–आग जो जल के भीतर दिख रही हो। बोतल के होंठों के किनारों पर ढेर सा झाग इकट्ठा होने लगता। बोतल इस सन्दूक के ढक्कन को उठाना चाहता था जिसके अन्दर किसी की अधूरी साँसों की घुमड़न की तपिश महसूस होती थी। कहते हैं कि इस सदी के पहले हिस्से में बोतल के दादा के दादा ने बेनी सिंह के मामा के परकोटे में अड़कर कहा कि बन्धुअई नहीं करेंगे। गुस्साए ठाकुरों की समझ में नहीं आया कि असहमति की इस आवाज का क्या किया जाए। आव देखा न ताव 22 साल के मामा ने सन्दूक खोला और झींगुर जैसे दुबले-पतले बुधई को सन्दूक में डाल दिया। सन्दूक हमेशा के लिए बन्द कर दिया गया। सन्दूक को हमेशा के लिए बन्द रखना भी पड़ा क्योंकि इस घटना के दो एक दिन के भीतर ही कुटुम्ब के पुरोहित ने इस घटना के बारे में बिना जाने ही यह कहा कि परकोटे के भीतर जो सबसे बड़ा सन्दूक है उसे न तो कभी अपनी जगह से खिसकाया जाए और न ही इसे कभी खोला जाए। अगर ऐसा हुआ तो वंश बहुत गम्भीर तरीके से आहत होगा। जिस दिन बुधई चमार को बक्से में बन्द किया गया उस दिन पिता के मामा के अलावा वहाँ बस पिता के मामा के पिता और उनके भी पिता थे। एक साथ तीन पीढ़ियों की मौजूदगी और सबकी सहमति के साथ यह काम किया गया था। बुधई के गायब होने का हल्ला हुआ तो पिता के मामा के पिता ने दस बीघा जमीन कोतवाल के नाम कर दी और

कुएँ से मिली एक सड़ी-गली लाश को बुधई की लाश बताकर उसके घरवालों को सौंप दिया गया। बुधई बोतल के पिता के पिता थे और उनकी हत्या के बारे में पिता के मामा, पिता के मामा के पिता और पिता के मामा के पिता के पिता को ही मालूम था। लेकिन दसियों साल बाद व्हिस्की पीते एकाध लोगों के बीच पिता के मामा के मुँह से निकल गया कि कैसे उन्होंने बन्धुअई करने से इनकार करने वाले मजूर को जिन्दा ही दफन कर दिया था। इस बात के बाद बुधई की हत्या परकोटे ने ठाकुरों ने कैसे की इसके तरह-तरह के संस्करण हवा में बिखरने लगे। बोतल पिता के मामा के परकोटे में अपने पिता की तरह चाकरी नहीं करता था लेकिन पिता वहाँ काम करते थे तो वह पिता को रोटी या तमाकू देने चला आया करता था। पिता बोतल की बात नहीं मानते थे और बोतल पिता की बात नहीं सुनता था। बोतल पास के एक गाँव में भट्टे पर काम करता था।

बोतल का जिस दिन जन्म हुआ उस दिन तेज पानी गिर रहा था और बोतल की माँ की पीड़ा की गुहारों को बोतल के पिता सुन नहीं सके जो चन्द्रभूषण की इच्छाओं के सामने तख्ते पर औंधे मुँह निर्वस्त्र लेटे थे। बोतल की माँ घनघोर दर्द में पानी के बर्तन की तरफ बढ़ीं, बहुत प्यास लग रही थी। मड़ही में चूते पानी की वजह से पैर फिसला और वह लुढ़क गईं। धक्के से बेटा माँ की कोख से बाहर निकल आया और ढलान पर लुढ़ककर एक किनारे जाकर रुका। माँ ने कराहते हुए लेकिन अपार खुशी के साथ कहा कि अरे बोतल राम कहाँ ढनंगकर कहाँ चले गए। सुबह के समय जब पड़ोसन आग लेने आई तो उसने देखा कि पूरी झोपड़ी में खून फैला हुआ था। बच्चा एक तरफ पड़ा है और पानी और खून की लिथड़न के बीच बच्चे तक माँ के खिसकने के निशान हैं। माँ की उँगलियों की पोर बच्चे को छू रही थी। पड़ोसन ने बच्चे को उठाकर माँ की बगल में रख दिया। माँ जैसे इसी पल का इन्तजार कर रही थी और जीवन समाप्त होने के पहले वह केवल एक शब्द बोल पाई–ए बोतल। पड़ोसन ने इसी नाम से बच्चे को पाला और पुकारा। इस बोतल में माँ के आँसू इकट्ठा हुए, फिर पिता का पसीना, फिर आसपास के लोगों का पसीना, फिर तपता खून जो बहता था किसी के घाव से।

जिस दिन बोतल ने पिता के मामा की हत्या की वे बालकनी में बैठकर रामचरित मानस का पाठ कर रहे थे। मानस सामने खुली थी लेकिन सच तो यह था कि उन्हें मानस कंठस्थ थी और उस समय वह राम के वनगमन का प्रसंग आँख मूँदकर बाँच रहे थे। उनकी आँखों में आँसू थे। मामा राम के लिए रोते थे करीब हजार साल पुरानी मिथकीय कथा के मिथकीय चरित्र के लिए। लेकिन उन लोगों के लिए वे नहीं रो पाते थे जिनके खेत उन्होंने हड़पे थे, जिनको खेत में ही मारने के आदेश उन्होंने दिए थे, और उन बच्चों के लिए जिनके स्वैराचार ने उन्हें पैदा किया था। कहते हैं कि बोतल भी मामा की सन्तान था–माथा और नाक मामा जैसे ही थे लेकिन बोतल की आँखें उसकी माँ जैसी थीं। और जो बड़ा सा मस्सा मामा के चेहरे पर दाहिनी तरफ हुआ करता था, वह बोतल के चेहरे पर बाईं ओर था। बोतल सारे काम बाएँ हाथ से करता था लेकिन मल धोने के लिए वह दाहिने हाथ का इस्तेमाल करता। बोतल ने मामा को मारने के लिए जो गोली चलाई वह मामा की दाहिनी कंजी आँख में

जाकर लगी और मामा हे राम कहकर ढेर हो गए। खून रिसकर बालकनी की नाली से होकर टप-टप चूता रहा। मामा की हत्या के बाद यह बात बाढ़ के पानी की तरह तेजी के साथ फैल गई कि बोतल की पत्नी झारखंड इलाके की है जिससे बोतल भट्ठे पर काम करते हुए मिला था और बोतल को बन्दूक झारखंड के मजदूर ने मुहैया कराई थी और बोतल ने माँ के निरन्तर बलात्कार, पिता की दशकों पुरानी चाकरी, पासियों की गुलामी, चमारों की बन्धुअई, दलित स्त्रियों को बाँदियों में तब्दील करने के तन्त्र पर चोट की थी। और बोतल ने अपने एक पूर्वज की हत्या का बदला तो लिया ही था। तो यह एक ज्ञानात्मक संवेदन के साथ की गई हत्या थी। एक अंडरग्राउंड पत्र ने यही दावेदारी की थी। बोतल और उसकी पत्नी को गिरफ्तार कर लिया गया। बोतल को जेल भेज दिया गया और बोतल की पत्नी बिजली का थाने में बलात्कार होता रहा जहाँ से आठवें दिन बिजली के धोती से लटककर आत्महत्या की खबर फैली। इस पर अंडरग्राउंड पत्र में लिखा गया कि यह संवेदनात्मक ज्ञान से उत्प्रेरित आत्महीनता से बचने का उत्सर्ग था। इसका मायने यह था कि ज्ञानात्मक संवदेन और संवेदनात्मक ज्ञान जैसे दो पद साहित्य को तो रैडिकलाइज कर रहे थे वे सचमुच की लड़ाइयों में भी मददगार थे। ये बातें भी पत्र में लिखी गई थीं।

पिता के मामा की हत्या जैसे ऊपर लिखा गया है वैसे नहीं हुई–वैसा तो कहानीकार ने सोचा। मतलब कि मामा की हत्या अगर इस तरह से हो सकती तो कहानीकार समाज में प्रतिकार की ताकतों को रेखांकित कर पाता जो अमूमन दिखनी नहीं हैं–खासतौर पर अवध के इलाके में। कहना पड़ेगा कि यह एक अकेले आदमी का स्वप्न था जिसका सामाजिक आधार विकसित नहीं हो पाया था। तो लिखने के बाद कहानीकार दुविधा में पड़ गया गया कि बोतल वाले हिस्से को वह किस तरह से कहानी में जगह दे। कहानीकार बोतल को जानता था–काफी जानता था–एक ऐसे बोतल को जो पिता के मामा के परिवार के घर की स्त्रियों के बीच बहुत शोर के साथ हँसा करता था। हँसने के साथ बोतल किसी निर्गुन की दो चार लाइनें गा देता। पूरा परकोटा अचानक एक पवित्र गूँज में बदल जाता। घर की स्त्रियों का तना हुआ तन्त्रिका तन्त्र ढीला पड़ जाता। वे किसी खम्भे से सिर टिकाकर बोतल को सुनने लग जातीं। परकोटे की बची हुई औरतें या घर में आने वाली रिश्तेदार औरतें चाहा करती थीं कि बोतल हँसे और गाए। क्योंकि घर में बहुत कम हँसी बची थी और बहुत कम संगीत। घर के तानाशाह बोतल की इस भूमिका को जानते थे। उन्होंने इसकी मौन स्वीकृति दे रखी थी। बोतल बहुत सारी कतरनों से बना गुड्डा था जिसे घर की औरतें अपने तेज धड़कते सीनों से चिपकाए रखना चाहती थीं। लेकिन एक दिन बोतल ने अपनी निरर्थक खुशी के बारे में जाना और यह भी जाना कि उसकी हँसी एक खाली बोतल से निकला करती है। बोतल ने एक दिन इस खाली बोतल में झाँककर देखा। फिर तो आए दिन वह इस खाली बोतल में झाँक लेता। एक रोज आधी रात की तरह काले बोतल की नींद आधी रात को खुल गई। बोतल पसीने में नहाया था। वह उठा और बाहर निकल गया। वह चलने लगा–वह चलता रहा कभी एक निर्गुन के सहारे तो कभी दूसरे निर्गुन का धागा पकड़कर। काँपते हुए। मिट्टी की भीत और धान के सूखे पौधों से बनी छत पीछे टूट गए। बप्पा और माई छूटे तो गुलामी भी छूट गई। बोतल ने भभूत लगा ली और एक जोगी

सम्प्रदाय की ओढ़नी पहन ली और गंगा की बालू से पान खाए दाँतों को माँजना शुरू किया। लेकिन एक दिन रात में गुरु जी ने अपना पैर और लिंग आगे कर दिए–दोनों की मालिश करो। बोतल ने कहा–न महाराज। यही करना होता तो हल्ला का पैर और पेल्हर क्या बुरे थे। बोतल चीखते हुए कि कहीं नहीं है मुक्ति। सम्प्रदाय की ओढ़नी को अपने नाखूनों और दाँतों से चीरते-फाड़ते हुए अखाड़े से एक बड़ा रहस्य लेकर निकला। निर्गुन का धागा पकड़कर गंगा की तरफ बढ़े कि गंगा की गोद में कुछ देर सुस्ताएँगे। पुरसा भर पानी में मन शान्त हुआ भी। वह किसी आदिम कछुए की तरह पानी में डूब उतरा रहा था कि अखाड़े के चार-पाँच शिष्य बोतल राम के ऊपर चढ़ बैठे। तो कहानीकार जिस बोतल को जानता था उसने मामा की हत्या नहीं की थी अलबत्ता मामा का घर छोड़ने के बाद खुद उसकी हत्या हुई थी। बोतल ने मामा की हत्या नहीं की थी–कहानीकार ने इस हिस्से को लिखने के बाद इसे बहुत गहरी तकलीफ के साथ काटा। सच तो यह है कि उसने हाथी छाप कॉपी के पीले कागजों पर इस वृत्तान्त को लिख कर काटा ही नहीं। उसे लगा कि वह बोतल की कहानी को अलग से लिखेगा–एक जीवन की महागाथा। तो जो उसने लिखा था और जो कहानी में शामिल नहीं किया गया वह लिखी कहानी से कई गुना बृहत् और मरोड़कारी था। इसका मतलब भी हुआ कि कहानी लिखते-लिखते कहानीकार को एक उपन्यास का मसाला हाथ लग गया था। कम से कम कहानीकार ने तो ऐसा ही सोचा। कहानीकार यानी मैंने यानी देवी प्रसाद मिश्र ने या कि देवी ने जो मिश्र से विच्छिन्न हो गया था या कि विच्छिन्न होने के लिए उत्पात करता रहा था।

कुछ भी हो जगत सिंह के पिता के मामा को बहुत इत्मीनान से मारा गया। हल्ला सिंह के नाम से जाने जाते मामा को सात आठ लोगों ने दबोच कर हंसिया खुरपा फावड़ा गहदाला से मारा–ऐसे औजारों से जिनका इस्तेमाल कटनी और मिट्टी खोदने के लिए किया जाता है और मारा भी गया एक खेत में जिसमें बीज बोए जाने थे। उस रात हल्ला का मन खेत की भुरभुरी मिट्टी में सेक्स करने का हुआ था जिसके लिए छुनुक्का से बात भी हो गई थी। तो उन्होंने बिना किसी को बताए अपनी जेड सिक्योरिटी का घेरा तोड़ दिया था। अस्सी साल के हल्ला के कई टुकड़े किए गए। कि जैसे किसी आधी रात को वर्णवाद या सामन्तवाद के कई टुकड़े करने की कोशिश की गई हो। वह वैचारिक नहीं भी तो संवेगात्मक प्रतिकार था।

बेनी ने मामा की हत्या के बारे में सुना तो वह दलिया खा रहे थे। सुना तो बर्तन काँप कर गिर गया। उन्हें तरह-तरह के मामा याद आते रहे–मजदूर को लंड़ऊ कहते मामा, पत्नियों को पूतना कहते मामा, बवासीर के इलाज के लिए बकरी, मुर्गे और खरही के खून से स्नान करते मामा। बेनी सन्देशवाहक के साथ जीप में चल दिए। मन में मामा की मृत्यु के शोक से ज्यादा ये बात घूम रही थी कि मामा ने जीते जी अपना और चन्द्रभूषण का वारिस जगत सिंह को बनाने की जो बात की थी उस पर चन्द्रभूषण और श्याम बिहारी अब भी कायम हैं भी या नहीं। बेनी मामा के शव पर बुक्का फाड़ कर रोए। मामा को जब जलाया जा रहा था तो चन्द्रभूषण ने बेनी से कहा कि परिवार ले आओ। बेनी को लगा कि वह आसमान को फाड़ने वाली हँसी हँस दें। लेकिन वह चुप रहे और उन्होंने हँसी को एक हास्यास्पद विलाप

में बदल दिया। मामा की तेरही के अगले दिन ही उन्हें परिवार को मामा के यहाँ ले जाना था हमेशा के लिए करार वही पुराना था कि चन्द्रभूषण और मानिनी के बाद जगत सिंह सारी जायदाद के मालिक होंगे। लेकिन उसके पहले नहीं। और पूरे परिवार को लाना होगा।

लेकिन बेनी की बेटी मोहिनी और पत्नी रामदेई ने बेनी के मामा के घर जाने से इनकार कर दिया। वे मामा के तंत्र से खूब वाकिफ थीं। एक नहीं पाँच-छह बार रामदेई मामा के परकोटे में रह आई थीं। जाते ही उन्हें गुलाम बना दिया जाता। बस भिड़े रहो। मानिनी कहतीं–मोहिनियाँ का हाथ कितना अच्छा है। हाथ लगते ही पीर हर उठती है। सिर दबाने से कार्यक्रम शुरू होता लेकिन धीरे-धीरे मानिनी अपने ब्लाउज के हुक खोल देतीं और फिर पेटीकोट का नाड़ा। हर जगह तेल लगता। गुदगुदी वाली जगह पर तेल लगता तो मानिनी खिलखिला कर हँस पड़तीं। मोहिनी भी हँस पड़ती। मोहिनी को लगता कि मानिनी बुआ के स्तन सबसे बड़े खरबूजे से भी बड़े हैं और नितम्ब सबसे बड़े तरबूज से भी सुडौल। मोहिनी जब खरबूजों को हाथ लगा रही होती तो मानिनी हुच्च दुच्च करके रोने लगतीं। इनका एक छटाँक दूध भी किसी के कंठ में नहीं गया, ऐसा होता तो ये काहे दो-दो पसेरी के होते–वे कहतीं। तू ही मेरी कोख से जनम ले लेती तो क्या हो जाता–यह कहते हुए मानिनी मोहिनी का सिर दो खरबूजों के बीच में कहीं रख देतीं। मानिनी कहतीं कि तेरा नाम हमारे नाम की तर्ज पर रखा गया। मालूम है कि नहीं। मोहिनी को यह बात मालूम थी। मानिनी के नाम की लय पर बेनी ने अपनी बेटी का नाम मोहिनी रखा था। हाँ हाँ यहाँ-यहाँ कह-कहकर मानिनी मोहनी के हाथों को अपनी देह के हर इलाके में बड़ी निर्बंधता के साथ ले जातीं। कई-बार तो मानिनी मोहिनी का हाथ इस तरह से पकड़ लेतीं कि जैसे बहेलिए ने तोते को पकड़ लिया हो और तोते की गर्दन पकड़कर ठीक उस जगह ले जातीं कि जो हिस्सा उन्हें भिंचवाना दबवाना हो। लेकिन मानिनी के सेंट्रल एशिया वाले इलाके में पहुँचते ही मोहिनी की मुश्किलें बढ़ने लगतीं। अन्दर ही अन्दर गिज-गिज जैसा कुछ होने लगता। इस इलाके में आते ही मानिनी कहने लगतीं–ठीक से हाथ लगा कैसा फूल जैसा हाथ है। इस इलाके के आसपास हरकतें शुरू होतीं तो मानिनी का सन्तुलन बिगड़ने लगता। वो बुदबुदाने लगतीं–ई चन्द्रभुखना भड़ुआ निकला। बीज में ही दम नहीं था तो मिट्टी क्या करती। पाप का फल मिला है। माँओं को सताया, पिताओं को सताया तो माँ और बाप बन भी कहाँ पाए। मोहिनी सोचती कि मानिनी क्या बुड़बुड़ कर रही हैं। यह बुड़बुड़ कुछ समझ में आती और कुछ नहीं आती। यह अर्धनिद्रा का लगभग आत्मालाप होता था। शरीर के किसी कोने में पड़ी आत्मकथा का कोई मुड़ा-तुड़ा अध्याय। मुँह से अस्फुट वाक्य निकलते रहते जो बेदम होते और जो किसी वृत्तान्त को कहने की कोशिश होते मसलन कि कैसे सन्तान पाने की मुहिम के तहत उन्हें एक ऐसा भस्म खिला दिया गया कि पूरी देह पर छाले निकल आए और कैसे एक वैद्य ने नाड़ी पकड़ी तो वो नाड़ी पकड़े ही रह गया–एक घंटे से ज्यादा बीत गया और जब मानिनी ने कहा कि वैद्य जी तो पता लगा कि वैद्य जी की मृत्यु हो चुकी थी। यह कहते हुए मानिनी बहुत हँसी। अंग्रेजी डॉक्टर नरम-नरम दरार में हाथ डाल देते। मानिनी इस अपमान को खून का घूँट पीकर स्वीकार करतीं। कई डॉक्टर

आले को सीने पर दौड़ाते रहते और जहाँ-तहाँ वक्ष छूते रहते। इस तरह के छूने से जो गुदगुदी होती वह मानिनी को रुलाती। मानिनी को कहीं लगता था कि इस सब से कुछ नहीं होने वाला लेकिन चन्द्रभूषण उन्हें एक जगह से दूसरी जगह ले जाते रहते। इस तरह उन्होंने तीर्थ, देवस्थान, बाबा, फकीर, बैद, डॉक्टर देख लिए और उन्हें पता नहीं क्या-क्या दिखा भी दिया। लेकिन इस घूमने टहलने से यह भी लगा कि उत्तराधिकारी की कामना से परे भी एक दुनिया है। इन यात्राओं ने सन्तान न होने के दंश को काफी कम कर दिया। और एक बार एक नदी के किनारे नदी के पार देखते हुए उन्होंने सोचा कि अगर सन्तान होती है तो वह एक आतताई परम्परा को ही तो ढोएगी। मन्नतों के चक्कर में घूमती मानिनी को दरगाहें अच्छी लगने लगीं और हारमोनियम पर बजती कव्वालियाँ। दिल फाड़कर निकलती आवाजें। मानिनी किसी किनारे बैठ कर सुनती रहतीं और रोती रहतीं–ठीक-ठीक किसी अभाव पर नहीं–पता नहीं कहाँ से वह रोना फूटता। इस तरलता के स्रोत परिभाषित नहीं हो पाते थे। तलाश का एक बहुत महिमामय संगीत गूँजता रहता जहाँ रोना संगीत में बदलता और संगीत में विकलता और विराग में–एक साथ। वह सफेद चूने से पुती कब्र को छूतीं–चन्द्रभूषण उनसे कहते–इसको छूकर लड़का माँगो। मानिनी कुछ न माँग पाती। मानिनी कब्र को छूतीं कि जैसे मृत्यु के अनन्त संगीत के ठोस को छू रही हों। मानिनी अन्तत: कहतीं कि ऐ बाबा, उठाय लेया–बाबा, उठा लो। एक बार उन्हें एक तान्त्रिक के पास ले जाया गया। वह तारा का उपासक था और साँकल लगाने के बाद उसने दाहिने वक्ष पर अपनी गर्म हथेली रख दी। फिर कहा ऐसी उर्वरा तो देखी ही नहीं। चाहे जितनी सन्ततियाँ पा लो। मानिनी ने उसकी हथेली को वक्ष से हटा दिया और अपनी हथेली को उसकी तरफ बढ़ा दिया और कहा दो प्रसाद। तान्त्रिक ने आँखों को जमीन पर गड़ाए हुए कहा–तारा बनना होगा। मानिनी ने कहा, तुमसे प्रेम कर रही होती तो निर्वस्त्र हो सकती थी। फिर एक गहरी साँस छोड़कर मानिनी बाहर आ गईं। क्योंकि यह कहने के बाद उन्हें यह भी लगा कि क्या वह चन्दभूखन के सामने इसलिए नंगी होती रही हैं क्योंकि वह उनसे प्रेम करती रही हैं। रास्ते में चन्द्रभूषण ने पूछा, तांत्रिक ने प्रसाद दिया क्या। तो मानिनी ने इक्के में जोर-जोर से हिलते अपने बदन को सँभालते हुए बिलखते हुए कहा–ए चन्दभूखण, हमको एक तांत्रिक की रखैल तो नहीं बना दो। उसके पहले मानिनी के पति का नाम नहीं लिया था–बाद में भी नहीं लिया। इस आधे-अधूरे अस्फुट वृत्तान्त को सुनते न सुनते मोहिनी सोचती थी कि कह दे कि बुआ अब बस लेकिन बुआ कुछ भी कहने का मौका नहीं देती थीं। वे शहद वाली मक्खियों की तरह भिन-भिन करती रहतीं–उँगलियों में कितना तो हुनर है। देह पर मछलियों की तरह तैरती हैं। तेरे ब्याह में हीरा दूँगी–बड़े वाले बक्से में रखा है। मानिनी उस बक्से का जिक्र करती थीं जो इतना बड़ा था कि जिसमें दस-पन्द्रह लोग आसानी से समा जाते। कहते हैं कि बन्धुअई करने से इनकार कर देने वाले बुद्धू पासी को इस बक्से में बन्द कर दिया गया और दम घुट जाने के बाद निकाला गया। मोहिनी ने जब इस कहानी के बारे में मानिनी बुआ से पूछा तो उन्होंने नीचे से हवा निकालते हुए कहा कि ऐ भइया, ई लोग कुछ भी कर सकते हैं। लेकिन ये भी तो है कि बिना दबाए कोई काम करने को तैयारै नहीं है। तो बड़ा जुलुम न करे तो छोटे का जुलुम सहे। मोहिनी घबरा गई थी–पिता के मामा के यहाँ काम करवाने के दो तरीके थे–फुसलाओ और जो नहीं मानता

उसके लिए ताकत है। और इस ताकत के भी भाँति-भाँति के रूप थे। मानिनी को लगता था कि उसकी माँ कितनी मेहनत करती है लेकिन उनका पैर दबाने चलो तो कहती हैं कि अरी कन्या से पैर दबवाते हैं क्या। और सिर दबाने लगो तो दो चार मिनट के बाद ही कह देती थीं कि तेरा हाथ पिरा रहा होगा। रहने दे। और कितनी ही बार माई ने मोहिनी के पैर दबाए थे मोहिनी के बार-बार न-न कहने के बाद भी–रात में। साथ में माई ये भी कहती जाती थीं कि रोज तीन मील साइकिल चलाती है। आँगन में लेटी मोहिनी उन सूनी रातों में तारों को देखती रहती और धीरे-धीरे कहती रहती कि माई थकान तो है और अच्छा भी लग रहा है लेकिन ये रिन अभी उतरवा लेना। मेरा हाथ न पकड़ना। बेटी की जिद के सामने रामदेई हारती। वह मोहिनी को पैर दबाने देती। इस तरह माँ-बेटियाँ एक दूसरे की थकी देहों की थकान कम करने की कोशिशें करती रहतीं। यह दो मेहनतकशों के बीच की पारस्परिकता थी। मोहिनी तीन-चार बार पिता के मामा के घर गई थी। पिता के मामा के घर साँझ ढलने पर ही पहुँचना होता। हालचाल पूछने बताने में रात गुजर जाती। लेकिन अगले दिन जैसे ही मोहिनी मानिनी के पास पहुँचती मानिनी टाँग आगे कर देती और पान से कत्थई दाँतों के बीच से सुपारी का कोई टुकड़ा निकालते हुए कहतीं कि तेरा ही इन्तजार था बिटिया। कूट दे पूरी देह। पैर दबवाते हुए वो जरूरत से ज्यादा तारीफ करतीं। अवध में नव दास बनाने के ये ही तरीके रहे हैं। कान से खूँट निकालने वाले से कहा जाता–कितना सधा हाथ है, लगता है कि रामचरित मानस की चौपाइयाँ कान में धीरे-धीरे जा रही हैं। नाई से कहा जाता है कि नाऊ ठाकुर ऐसा हाथ है कि लगता है कोई सिर को ढोलक की तरह बजा रहा है और बजा भी रहा है दादरा। जूठन उठाने वाले नाऊ को नाऊ ठाकुर कहा जाता। मानिनी मोहिनी को अपने पास ही सोने के लिए बुलातीं और अपनी संगमरमर जैसी नंगी पीठ मोहिनी के सामने खोल देतीं और कहतीं–ए बिटिया, जरा लू लू तो चला दे। मतलब कि मानिनी की पूरी पीठ पर उँगलियों को कीड़े की तरह दौड़ाओ। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता। लू-लू कीड़े को ही तो कहते हैं। मानिनी को इस गुलामी से तभी निजात मिल पाती जब मानिनी खर्राटे लेने लगतीं। तब मोहिनी चुपचाप पैर पटकते हुए अपनी माँ की बगल में आकर लेट जाती और और कहती–माई, भिनसारेन निकारि चला–सुबह होते ही निकल चलो। लेकिन एक बार आ गए तो तो दस-पन्द्रह दिन तो रुकना ही पड़ता था। वो तो बप्पा ही हैं कि माँ-बेटी को गोरू को तरह हाँकते हुए यहाँ लाते हैं नहीं तो किसको गरज पड़ी है यहाँ आने की।

आँखों को खाली रखा जाए एक स्वप्न के लिए भी

जिसमें एक बड़े श्रम की प्रक्रिया की घरड़ घरड़ हो

जो हो सकता है

एक बड़े परिवर्तन को सम्भव बना सके और फिर हम

ढेर सारी साँस छोड़ें

कि जैसे एक बंधे पशु की रस्सी खोली जाए

मोहिनी अपने पिता के मामा, उनके बेटे और उनकी बहू और उनके रिश्तेदारों का गू-मूत और पीकदान उठाने को तैयार नहीं हुई। मोहिनी की माँ का भी यही फैसला था। वे रोज-रोज तरह-तरह के कारकुनों, लेखपालों, पतरौलों, तहसीलदारों, नायब तहसीलदारों, डिप्टी कलक्टरों, नेताओं के लिए रूह अफजा घोलने के लिए तैयार नहीं थीं। शोहदों के लिए उड़द की कचौड़ी और दलभरी पूरी और रसियाव बनाने को वो नहीं राजी थीं। उन्होंने कहा कि हाड़तोड़ के जैसे वो खा रही थीं उस रिवायत को तोड़ने की उनकी कोई मंशा नहीं है। गाते हुए जांत पीसने की आजादी को वो गिरवी नहीं रखने वाली। रामदेई ने कहा कि बुढ़ापे में दो हाथ का घूँघट नहीं निकालना। बेनी के ऊपर भहरा कर पूरा घर ही गिर पड़ा। बरसों से जिस जमीन का मुँह ताकते रहे थे कि वो मिल रही थी और घर की औरतें कह रही थीं कि हमें नहीं जाना। बेनी ने गाली-गलौज के साथ नौटंकी शुरू की तो रामदेई ने भी गला फाड़ने में कोताही नहीं की। बेनी मेहरारू की तरफ लट्ठ लेकर दौड़े और जगत सिंह ने कारन करते हुए कहा कि हमारी महतरिया को पता नहीं क्या हो गया है। रामदेई ने कहा कि रे शोहदो, तुम लोग जाओ न। किसने रोका है। लेकिन पिता के मामा की शर्त तो ये थी कि मेहरारू और बेटी को लेकर आओ। ये कहने के पीछे ये बात थी कि नौकर-चाकर मिलने बन्द हो गए थे। तमाम ने शहरों का रुख कर लिया था और जो शहर नहीं भी जा रहे थे उनमें भी ऐंठ आ गई थी। तो एक मरते हुए परिवार और उसके इर्द-गिर्द मँडराते रिश्तेदारों की आवभगत के लिए टटस किस्म के गुलामों की जरूरत थी। बेनी का बना काम बिगड़ गया। संगमरमर झाँवे में बदल गया, यूटोपिया स्लम में, और बेनी की लगातार सपने देखने वाली आँखें एक दिन पत्थर हो गईं। मरने के पहने उनकी खून की उल्टियाँ बढ़ गई थीं और फर्श से खून साफ करती हुई रामदेई से वे कहते थे कि मामा के यहाँ रहने चलोगी तो बच जाऊँगा। रामदेई जस्ते की तरह पिचके चेहरे को देखकर रो पड़तीं। लेकिन जस्ते के उस दीन बर्तन में रामदेई ने भीख नहीं डाली।

इस बीच जगत सिंह ने मानिनी का जो हार चुराया था उससे दारू का ठेका शुरू कर दिया था और अलग रहने लगा था। बेनी सिंह की तेरहवीं के अगले दिन मोहिनी और उसकी माँ साइकिल, अलग हुआ हैंडिल लेकर डेरवा बाजार गए। पहिए में नई तीलियाँ डलवाईं। चार घंटे लगा कर साइकिल बनवाई और हैंडिल में एक घंटी भी लगवाई।

जब काँच के गिलास में जगत सिंह एक ग्राहक को शराब दे रहा था तो नहर की पटरी के पास से गुजरते हुए जगत ने अपनी बहन को देखा जो अम्मा को साइकिल के केरियर पर बैठाकर डेरवा बाजार से घर की तरफ लिए जा रही थी–काफी स्पीड से।

लकड़संुघा

पंकज मित्र

किसी लकड़संुघे को देखा है कभी आपने? नहीं? देखेंगे भी कैसे क्योंकि लकड़संुघे के बारे में यह तय नहीं होता कि वही लकड़संुघा है। हो सकता है आपके पीछे-पीछे कन्धे पर कचरे की एक बोरी उठाए, बढ़ी हुई दाढ़ी वाला जो आदमी चला आ रहा है वह लकड़संुघा हो या फिर साफ-सुथरी पैंट-कमीज पहने, कन्धे पर एक बैग उठाए जो क्लीन शेव्ड व्यक्ति आपके आगे-आगे चल रहा है, वही लकड़संुघा हो। लकड़संुघे की सिर्फ कहानियाँ होती हैं, उसके बारे में बातें होती हैं, अफवाहें होती हैं–कहाँ किस गली में बच्चे खेल रहे थे, लकड़संुघे ने संुघा दी लकड़ी, बच्चा दन से बेहोश। बाँध-बूँधकर पोटली में डाला और चल दिया लेकर। लगा रहता है वह ताक में, कब सयानों की नजर इधर-उधर हो और संुघा दे लकड़ी। और लकड़ी भी कौन-सी गलगल की लकड़ी को सात वर्ष, सात महीने, सात दिन डुबोकर रखना पड़ता है लपकसच्चू के रस में। फिर अन्तिम दिन मुँह-अँधेरे उठकर सफेद कपड़े में लपेटकर रखना पड़ता है–'हे राम' लिखकर लकड़ी पर तब कहीं जाकर इस लकड़ी में होती है तासीर पैदा। हर लकड़संुघे की कहानियाँ भी फैलती नहीं, ज्यादा प्रचारित होने से दिक्कत भी है। लोग अगर जान गए कि फलां एक लकड़संुघा है तो सावधान रहने लगते हैं। बच्चों को भी ऐसी एक्टिंग सिखा देते हैं कि लकड़संुघे को लगे कि बच्चा सँूघ रहा है फिर मौका देखकर दुबकी हुई बिल्ली की तरह छिटककर यह जा, वह जा।

तो वह एक लकड़संुघा था जिसका एहसास मुझे उस दिन हुआ जब एक लम्बी-सी रैली

कहलगाँव-भागलपुर रोड पर आती देखी। आगे-आगे वही था, अपनी पूरी नाटकीय उपस्थिति के साथ-एक पाँव में क्रेप बैंडेज, हाथ में लकड़ी (लकड़सुंघे के होनी भी चाहिए) सहारे के लिए इस्तेमाल की जा रही थी। हर तबके के लोग पीछे-कुछ तो चाल-चलन से ही मास्टर-प्रोफेसर लग रहे थे, कुछ छुटभइए नेता जो पास आने पर नेतायंध बदबू दे रहे थे। और कुछ एकदम आम आदमी और औरतें, जिनके चेहरों पर था पसीना और एक खास किस्म की चमक, जिसे पहली नजर में भीग जाने से आई चमक भी माना जा सकता था। हाथों में बैनर-पोस्टर 'पढ़ना-लिखना सीखो', वगैरह लिखा। मतलब 32 किलोमीटर की दूरी, वह भी पैदल और कारण भी धोती-साड़ी, राशन-भाषण कुछ नहीं...इतना मामूली...जरूर यह आदमी लकड़सुंघा होगा।

रैली में चलती एक गरीब-सी औरत से कन्फर्म किया तो वह बोली, "आजकल के जमाना में ऐनों (ऐसा) आदमी मिलनाय मोस्किल छै बाबू, दूयेगो (सिर्फ दो) आदमी देखने छी। एगो जे मिलाद में मौली साब ऐलौ छलै (आए थे) और दोसरो हीनीं (यही)।" वैज्ञानिक सोच कह रही थी कि एकाध और से पूछा जाए तभी तो यह तथ्य बन जाएगा। एक तेज-तर्रार से आदमी से पूछा, "गजब आदमी हैं, हम लोग मदद नहीं करेंगे तो एतना बड़ा काम कैसे सफल होगा। आखिर अनुदेशक वगैरह तो हमीं लोग न चुनाएँगे।" थोड़ा असर कम था, शायद लकड़सुंघे से दूरी की वजह से चुम्बकीय क्षेत्र से बाहर चला गया होगा। खैर, जब आपको भी उत्सुकता होगी कि लकड़सुंघे के जीवन में ताक-झाँक की जाए थोड़ी...वह आम आदमी ही होता है कि कुछ खास...वह इसी ग्रह का प्राणी है कि दूसरे ग्रह का...वैसे इसमें कोई शक नहीं कि यह एक विलुप्तप्राय प्रजाति है।

तो लकड़सुंघे का जीवन शुरू हुआ एक छोटे से कस्बे में और उसके बारे में झूठी-सच्ची कहानियाँ फैलनी शुरू हो गई थीं। हालाँकि एक साधारण-से स्कूल का अतिसाधारण विद्यार्थी था वह और खास नोटिस लेने लायक व्यक्तित्व भी नहीं था उसका। साँवला, दुबला-पतला, मरियल-सा पैदा हुआ था वह, जिसे किसी तरह रूई में लपेट-लपाटकर जिन्दा रखा गया था। और तो और डॉक्टर ने तो एक बार मरा हुआ मान भी लिया था उसे लेकिन बेशर्मी की हद तक जिद्दी था वह भी। कमजोर-सी छछूँदर जैसी आवाज निकाली थी उसने रोने की–चूँ...चूँ...ई...जिसका अर्थ शायद–नहीं, मैं आसानी से मरने वाला नहीं हूँ–था और जिसे सुनकर डॉक्टर समेत सभी हँस पड़े थे। तभी से एक मसखरापन पैदा हो गया था उसके अन्दर...आँखों में शैतानी चमक भी आ गई थी उन्हीं दिनों। पिताजी मास्टर थे तो स्कूल से जिजिएमपी (घींचघाचकर मैट्रिक पास) हो गया। उसके बाद तो साइकिल पर फिल्मी धुनें गुनगुनाते चलना, कभी चाय की दुकान पर तो कभी घड़ीसाज, कसाई, दर्जी, साइकिल-मिस्त्री, दोस्तों की दुकानों पर घंटों बैठना, शेर सुनना-सुनाना और 'मास्टर साब का छोटका हाथ से निकल गया' सुनकर मुस्कुराकर चल देना, यही दिनचर्या थी उसकी। ऐसे केसेज में आम तौर पर पिताजी लोग धुनकर रख देते हैं लेकिन जाने कौन सी लकड़ी सुँघाई थी उसने कि पिताजी आज तक कुछ नहीं कहते उसको, और आश्चर्य...सभी भाइयों में उसे ही ज्यादा पसन्द करते।

अचानक एक दिन उस कस्बाई शहर की एकरस तन्मयता में वह खबर बनकर कूद पड़ा था और खबर बनने के लिए मेहनत भी की थी उसने, "मास्टर साब का छोटका आई.ए.एस. में आ गया है।'' सिर्फ लिखित परीक्षा में ही उत्तीर्ण हुआ था वह लेकिन इतनी महीन बातें कौन जाने। घुरनामल, जिसके यहाँ मास्टर साहब उसके ठस बेटों में अंग्रेजी के स्फुल्लिंग भरते थे, कहने लगा, "माटसाब, सोचते हैं बड़े वाले को आई.ए.एस. में डाल दें। आपका छोटा वाला तो आ गया न।''

मास्टर साहब सोचने लगे कि आएस (आई.ए.एस.) क्या चावल का बोरा है कि बेटे को डाल दोगे उसमें। कहा कुछ नहीं, मुस्कुराकर चले आए। अब इतनी बड़ी उपलब्धि पर (उपलब्धि तो थी ही, दिन-रात ढबढीयाने वाले यानी बेमतलब आवारागर्दी करने वाले के लिए) और उसके लकड़सुंघेपन के कारण कहानियाँ तो फैलनी ही थीं–"अरे कौन उ माट्साब का छोटका! गजब पढ़ता था। एक बार हम गए तो देखते हैं कि चौकी पर टाल लगा है किताब का और उ गंजी-अंडरवियर पहन के, पसीना चल रहा है दर्र दर्र, आ पढ़ रहा है।''

वैसे लकड़सुंघे ने कभी इस बात की तसदीक नहीं की उल्टे उसे सख्त एतराज भी था इतने खराब ड्रेस सेन्स पर, उसने कभी ऐसी पढ़ाई की भी नहीं थी। उसका ज्यादा वक्त तो पड़ोसवाले मल्लिक साहब की छीक-हैं...हैं...हैंक्चू...और फिर लगातार 20-25 बार हैंक्चू...हैंक्चू...और उनके बोलने का लहजा–'औरत होके लताम (अमरूद) तोड़ता है', कॉलेज में छात्र-शिक्षक संवाद–'सर ई खदियोत (खद्योत) का होता है।', 'दूर बुड़बक, खदीयोत माने भगजोगनी रे, भगजोगनी', आदि-आदि की नकल करने और इनके घरेलू प्रदर्शन में ही बीतता था। यह शायद उन पीड़ितों का ही शाप होगा कि वह भा. प्र. से. (भारतीय प्रशासनिक सेवा) के आसमान से गिरकर किसी तरह बि.प्र. से. (बिहार प्रशासनिक सेवा) के खजूर पर अटक पाया था।

लकड़ी सुँघाने का अपना एक सूत्री कार्यक्रम उसने चालू रखा था तभी तो उसके उस वक्त के सबसे अच्छे दोस्त सुदीप ने ये कहते हुए दोस्ती से तौबा कर ली थी, "तुममें सैटेनिक इन्फल्यूएंस (शैतानी प्रभाव) है और अब मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर पा रहा हूँ।'' उसने अपने बैच के अफसर साथियों पर भी समय-समय पर अपनी लकड़ी की तासीर आजमाने की कोशिश की थी और बुरी तरह फटकार खाई थी (अब हर जगह तो लकड़सुंघे को सफलता नहीं मिलती)–

"देखो, अपनी ये बकवास रहने दो। आखिर माँ-बाप जो इतना खर्चा करके पढ़ाए-लिखाए हैं, घर में पत्नी-बच्चे हैं, सबका अरमान तो देखना है न?'' बड़ी-बड़ी आँखों और मोटी तोंद वाला बमशंकर खोखियाया।

"कोई कहेगा कि तुम बिहार सरकार के रेसपॉन्सिबल अफसर हो? तुम्हारा स्टेटस क्या है? ए बिग जीरो न? घर देखो अपना। न ढंग का रहन-सहन, न कोई व्यवस्था।'' यह तुकबंदी

की थी तुक्कड़ नरेन्द्र ने।

"तुम लोग सुनोगे मेरा भी कुछ'', उसने लकड़ी फिर निकाल ली थी, "जब मेरे बाबूजी को हमसे कोई शिकायत नहीं तो तुम लोग क्यों आप-कौन-मैं-खामखा बन रहे हो। एक शेर सुनो, बाबूजी के बारे में ही लिखा गया लगता है–

'मुझको थकने नहीं देता मेरी जरूरत का पहाड़,

मेरे बच्चे मुझे बूढ़ा नहीं होने देते।'

"समझे कुछ कि ऊपर से निकल गया।'' वह मसखरा बन गया था।

"चुप रहो! सब समझते हैं, बाबूजी वहाँ बुढ़ापे में भी ट्यूशन पढ़ा रहे हैं। महीना में कुछ रुपल्ली भेज देते हो तो क्या समझते हो कि इसी से हो गई सारी जिम्मेवारी खत्म।'' काने राधे ने अपनी इकलौती आँख से अपनी इकलौती लाल मारुति को निहारते हुए कहा और जोड़ा, "इसीलिए तो शादी बियाह भी नहीं हुआ तुम्हारा।''

तान वहीं पर टूटी। लकड़सुंघे की भला क्या शादी होती, हो भी जाती तो निबाह...

जितना बड़ा शहर उतनी ही बेअसर। पहली पोस्टिंग में सुदूर देहातों के चार्ज में था वह, तब तो लकड़ी का असर था। वरना बारिश की उस रात में औरतें केन्द्र पर बैठकर अ, आ, क, ख क्यों करती रहतीं?

बारिश की फुहार के बाद बादलों ने हटकर चाँदनी को जगह दी थी। धान के खेतों में पानी भरा था। वह, रामबदन और त्रिभुवन तीनों चले मकीमगंज केन्द्र निरीक्षण के लिए। तभी झप्प की आवाज आई–

"सर, हम तो गिर गए'', रामबदन मेड़ पर नहीं था। कमर-भर पानी में खेत में खड़ा था किसी बिजूके की तरह। आसपास मेढकों की आवाजें पेक-पोंक पेंक-पोंक। हँसी आ गई थी उसे, फिर बोला, "चलिए, उठिए, जल्दी कीजिए, फिर सेन्टर बन्द हो जाएगा।'' उसने और त्रिभुवन ने सहारा देकर मेड़ पर खींच लिया था रामबदन को। आगे केले के थम्भ पर छोटी नदी, पैंट के पाँयचे उठाकर कादो-कीचड़ पार करके जब गाँव में पहुँचे तो सोता पड़ रहा था। लेकिन केन्द्र पर आश्चर्यजनक रूप से औरतें मौजूद थीं। कभी अटक-अटककर, कभी नाक सुड़ककर औरतों ने 'पढ़ना-लिखना सीखो' गीत गाया जो खराब उच्चारण के बावजूद उसे अच्छा लगा। फिर चमकते चेहरों और दमकते आत्मविश्वास से कइयों ने अ, आ, क, ख लिख दिखाया। जी खुश हो गया था, फिर लकड़ी निकाली और चालू हो गया। गाँव वालों ने उसे देवता समझा जो इतनी मुसीबतें सहकर वहाँ आता था, और अनुपस्थित अनुदेशक ने उसे पागल करार दिया था।

रात में वह वहीं रह गया। रामबदन ने गीत गाते मच्छरों से बचने का मौलिक तरीका ढूँढ़ निकाला। एक बड़ी-सी थाली पर लगाया अरंडी का तेल और उसे घुमा-घुमाकर तांडव नृत्य करने लगा। नृत्य समाप्त होने पर थाली से सौ-डेढ़ सौ मच्छर चिपके पड़े थे। उसने नोट कर लिया कि इस वाकये को जब पटना जाएगा तो अपनी भतीजी गुड़िया को जरूर सुनाएगा और वह खुश हो जाएगी।

सुबह उठते ही सोचा उसने कि ठीक है बार-बार मुसीबतें झेलकर आता है वह, ठीक है कि उसके दफ्तर का दरवाजा चाय के खोखे को तोड़कर बनाया गया जिस पर चिपका है हब्बूलाल बीड़ी का पोस्टर, ठीक है कि खाने में उसे चावल और छछूँदर-सा दिखने वाला पकाया हुआ काला करेला मिल पाता है फिर भी लकड़ी का असर तो है उन पर। लकड़सन्तोष का अनुभव करता हुआ वह खेतों की तरफ चला गया झाड़ियों के पीछे।

दूसरे दिन हब्बूलाल बीड़ी वाला दरवाजा हटाकर दफ्तर में घुसते ही सामने थे–साक्षरता बाबा। गेरुए रंग का कुर्ता, गेरुआ ही पैजामा, गले में बड़ी सी रुद्राक्ष की माला। असली नाम रामजी लाल 'इन्सान'। कभी 'इन्सान' तखल्लुस से कविताएँ लिखते थे–देशभक्ति से ओत-प्रोत कविताएँ। साक्षरता कार्यक्रमों में उनकी दिलचस्पी इतनी ज्यादा थी कि साक्षरता बाबा कहने लगे थे लोग उन्हें। एक भीमकाय स्वयंसेवी संस्था के कर्ता-धर्ता, इन्सान स्कूल, इन्सान कॉलेज, इन्सान अनाथालय, शौचालय, इन्सान खाद भंडार, इन्सान खादी भंडार, इन्सान नारी निकेतन, इन्सान बड़ी-पापड़ संस्थान-और न जाने क्या-क्या...अब तो खुद उनको ही याद नहीं रहता। कुछ साक्षरता वाले केन्द्र भी चलते थे उनकी संस्था के अन्तर्गत। 'यूनिसेफ' की तरफ से फेंकी गई अनुदान की हर बॉल पर सचिन तेन्दुलकर जैसी नजर रखते थे। वह इन्सान नहीं देवता थे–मांस-मछली नहीं खाते, सादा भोजन करते थे और रात में भांग का एक बड़ा गोला खाकर शान्ति के साथ सो जाते थे। शान्ति उनकी संस्था में साक्षरतावाला धंधा सँभालती थी।

"नमस्कार साहब कल रात सुना, क्या कहते हैं मकीमगंज की तरफ निकल गए थे?''

"नमस्कार इन्सान साहब, मेरा तो काम ही यही है।''

"हाँ सो तो है, सो तो है। क्या कहते हैं कि फिर भी...कादो-कीचड़ में उतनी दूर, रात में...''

"सेन्टर तो रात में ही चलता है साहब तो जाना तो पड़ता ही है।''

"नहीं, मतलब रास्ता ठीक नहीं न है। दिन समय तो देखिए रहे हैं–कोय लुच्चा-लफंगा मिल गया कुछ हो गया तो क्या कहते हैं कि हम लोगों का भी बदनामी है इसमें।''

"अरे छोड़िए इन्सान साहब, क्या मिलेगा मेरे पास, शायरी की डायरी, पढ़ लिया तो

बेहोश ही होगा न।''

"हा-हा-हा बड़े मजाकिया आदमी हैं आप भी। क्या कहते हैं रेकमंडेशन चला गया था क्या टोटल लिटरेसी वाला। 'यूनिसेफ' से सुनते हैं पाँच करोड़ आया है जिला के लिए। तो क्या कहते हैं एकाध करोड़ तो इधर भी...देखिएगा, दूसरा कोई लँगड़ी नहीं मार दे कहीं...''

"देखिए इन्सान साहब! आप तो बड़े आदमी हैं। बहुत कुछ चल रहा है आपका, अब ये नहीं ही होगा तो क्या फरक पड़ेगा, जरा सेन्टर को तो इन्सानियत से चलावाइए, इन्सान साहेब।'' उसने समझदार को समझाने की कोशिश की।

"अच्छा साहब हमरा काम कहना था, कह दिए बाकी...नमस्कार।''

रामबदन हब्बूलाल बीड़ी वाला दरवाजा हटाकर अन्दर आया।

"सर ई इन्सनवा को गंध मिल गया?''

"गंध मिलने से क्या होगा रामबदन जी। हमने तो अपने हाथ में कुछ रखा ही नहीं। सुकान्त साहब ही देखेंगे। इन्क्वायरी भी तो बैठ गई है इन्सान साहब के हिसाब-पत्तर पर।''

"तब तो इन्सनवा आग मूतने लगेगा सर। डबल चोट पड़ जाएगा। सर! ई आवंटन वाला फाइल देखा जाएगा सर।''

चिढ़ थी उसे इस सरकारी जबान से। ऐसा सुनते ही एक तस्वीर आती थी आँखों के सामने। एक आदमी हाथ फैलाए खड़ा है, "थूका जाएगा सर, थूका जाए न इसी पर।'' रामबदन को बताया इस तस्वीर के बारे में। झेंपी हुई हँसी हँसकर बोला, "सर बड़ा मजकियल है। बड़ा हँसी लगाया गया सर।''

यही तो था उसका सेफ्टीवाल्व–कभी कोई शेर, कभी कोई चुटकुला, कभी किसी के बोलने के लहजे की नकल। करता भी क्या-दो ही विकल्प थे-तनाव से पागल हो जाए या फिर मसखरा बने। मसखरा बनना ज्यादा सूट करता है लकड़सुंघों को, और मसखरा तो जन्म के समय ही बन गया था वह जब छछूँदर-सी उसके रोने की आवाज सुनकर सभी हँस पड़े थे। कुछ चेहरा-मोहरा माशाअल्लाह, कुछ माली हालत खैर सल्लाह। झट नोटबुक निकाली और शेर लिखा।

"एक जेब थी जो तंग रही थी तमाम उम्र,

इक हाथ था जो आखिरी दम तक खुला रहा।''

और इसी फटीचरी की वजह से शायद डी.एम. सुकान्त साहब का बॉडीगार्ड हमेशा उसे रोक देता उनके चेम्बर के बाहर ही, जबकि सुकान्त साहब ने किसी भी समय, किसी हालत में मिलने की छूट दे रखी थी उसे लेकिन दैत्य-सा बॉडीगार्ड धड़ाक से प्रकट हो जाता था, "साहब मीटिंग में हैं।" उसी मीटिंग में वह भी आया है, बॉडीगार्ड के गले नहीं उतर रही थी ये बात। तब चेम्बर की तरफ हलका-सा इशारा किया उसने, बॉडीगार्ड घूमा। दन से बुत्ती मारकर दाखिल हो गया चेम्बर में और अपनी दास्तान चालू कर दी थी उसने, "दरअसल बात ये है सर कि आपके बॉडीगार्ड की कोई गलती नहीं है। वह बेचारा क्या जाने कि इतना मरियल-सा अफसर भी हो सकता है। उसे तो आदत है बड़े पेट वाले अफसरों को देखने की।"

सुकान्त साहब हँस रहे थे, मतलब फँस रहे थे उसके लकड़पेंच में। फिर नकल सुनाई उसने मंत्री जी के उस प्रसिद्ध भाषण की जिसकी फरमाइश बार-बार सुकान्त साहब करते हैं। घरघराती आवाज बनाकर शुरू हो जाता है वह–

"ये जो...शक्षरता है न...ये तो अभीशाप न है...इशको दूर न करना होगा...काँटी देखे हैं, काँटी? सलायवाला...जैशे काँटी से काँटी जलता है, वैशे ही पढ़ाना होगा...शमझे..."

मंत्री जी ने जोश में आकर साक्षरता को ही दूर कर दिया था। गुड़िया तो मंत्री जी की उसकी नकल सुनकर पेट पकड़-पकड़कर हँसती है, जब नन्दन भइया के बोरिंग रोड वाले हरिसदन अपार्टमेंट में जाता है वह, सिर्फ गुड़िया से मिलने–

"चाचू! सुनाइए ना आपके उस करप्ट एंड डोल्ट मिनिस्टर का भाषण, शक्षरता वाला..."

"जाओ पढ़ो जाकर। जैसा जोकर चाचा मिला है वैसी ही बनी है"–यह भाभी की शह थी।

भैया ने भी शह पर मात दी, "मारा जाएगा एक दिन इसी जोकरई में। कुछ तो कर नहीं सका लाइफ में, ऊपर वालों की नकल करते चलता है।"

वह कहना चाहता था कि कुछ करने का मतलब क्या है लेकिन इसकी परिणति भैया-भाभी की जली-कटी सुनने में होती। यहाँ वह आता है तो सिर्फ गुड़िया के लिए। छोटी-सी थी गुड़िया तब से कभी उसके हाथ पर कलम से चूहे-बिल्ली की तस्वीर बना देना, कभी कोई चुटकुला सुना देना। कुलीग्स के बच्चे लाइन लगा देते हाथों पर तसवीरें बनवाने के लिए–चाचू, पहले हम, नहीं अंकल हम, नहीं हम। "सबका बनेगा, सबका बनेगा।" बच्चे पूरी तरह लकड़सुंघे की गिरफ्त में थे। गिरफ्त में नहीं आया था मंत्री जी का पी.ए.–

"कहिए, कहाँ के चार्ज में हैं आजकल?"

"जी, भागलपुर।"

"ओ! अच्छा है। साहब जी की बिटिया की शादी है, मालूम है न? अगले महीने। भागलपुर का सुनते हैं कतरनी चावल बड़ा नामी है। एक बोरा लेते आइएगा और एक टिन खालिस घी का भी। ये जिम्मा आपका रहेगा।''

मसखरा चढ़ गया दिमाग पर। लकड़ी को मसखरी में लपेटकर पेश किया।

"जूता देखते हैं?''

"अंय।'' पी.ए. का चेहरा लाल, "का बोल रहे हैं?''

"जी, फटा हुआ है'', सोल उठाकर दिखाया, "पानी घुस जाता है, मेरी हालत तो आप जानते ही हैं। आपसे क्या छिपा है।''

"जादे काजीफचाक मत बनिए। जाइए...जादे दिन नहीं रह पाइएगा। ईमनदार का झाँट बने है न, उखड़ जाइएगा।''

वह बाहर आ गया था। अपमानजनक शब्द कानों में खौल रहा था, अचानक ही सेफ्टीवाल्व खुल गया...हुस्स...याद आ गया कॉलेज के दिनों के किसी हिन्दी के छात्र का मिसरा–

"श्रीमान्, मेरा अन्तर्केशलुंचन करने में भी सक्षम नहीं होंगे आप।''

हँसी फूट पड़ी और एक-एक शेर भी आ गया घूमता-घामता शायद खालिस घी की महक सूँघकर–

"खालिस अगर हो शै तो खरीददार ही नहीं

मेले में क्यों जहान के बैठा हुआ हूँ मैं।''

मंत्रीजी के पी.ए. ने अपनी बात रखी थी और पटना में वहाँ ट्रांसफर हो गया उसका जिसे शंटिंग पोस्ट कहा जाता था। लेकिन उसके पहले मेला तो लग ही गया था दफ्तर में। सुकान्त साहब अपने अमले प्यादों के साथ हाजिर थे–इन्सान साहब की इन्क्वायरी का मामला था उसी की रिपोर्ट पर। फिर तो कंकाल ही कंकाल निकलने शुरू हो गए थे इन्सान साहब की दराजों से। किसी दराज में 'यूनीसेफ' रो रहा था तो किसी में विश्व बैंक, कहीं जिला प्रशासन का हाथ-पाँव बाँधकर पटक दिया गया था, कहीं राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के मुँह में कपड़ा ठुँसा था। पूरे समय खा जानेवाली नजरों में से घूरते रहे इन्सान साहब उसे ही। उसने नजरें फिरा लीं क्योंकि उसे लगा जैसे किनारे वाले दो दाँत कुछ ज्यादा ही लम्बे हो गए हैं इन्सान साहब के–ड्रैक्यूला की तरह। वह इन्सान न रहे थे, यह तब पता चला जब एक दिन लकड़सुंघे को कोर्ट की नोटिस मिली कि उसने अपने कैशियर और चपरासी के

साथ मिलकर शान्ति देवी का सामूहिक बलात्कार किया है। कोर्ट की नोटिस से ही उसे मालूम हुआ कि बलात्कार के समय पद की गरिमा, दफ्तर की हायरार्की का भी खयाल रखा गया था–पहले उसने फिर कैशियर ने तब चपरासी को चांस मिला था। उसे उस चीज पर हँसी आई जिसे विडम्बना कहा जाता है–यानी कहाँ उसका पिद्दी-सा ढाँचा और कहाँ शान्ति देवी का चर्बी के पहाड़ वाला पर्सनाल्टा। उसे उबकाई आने लगी थी जिसे सिगरेट फूँककर दबाया।

तारीख पर हाजरी देकर लौटा तो ऑफिस में एक कार्यकर्ता इन्तजार कर रहा था। हाथ में एक छड़ी, छड़ी के अन्दर थी एक गुप्ती जिसे निकालकर बाकायदा दिखलाया उसने, रिपोर्ट वापस लेने, सँभलने, सुधर जाने की ताकीद भी की। वह शुरू हो गया–

"देखिए भाई साहब! ये दो रुपया ले लीजिए और गुप्ती पर जरा फर्स्ट क्लास धार करवा लीजिएगा। जंग लगी है इस पर। मैं और कुछ हो, टिटनेस से नहीं मरना चाहता।''

भुनभुनाता हुआ चला गया कार्यकर्ता-कम-लफंगा ज्यादा।

खूब हँसी थी गुड़िया यह वाकया सुनकर और नन्दन भैया नाराज हुए थे।

"आप तो पापा बेकार नाराज हैं चाचू पर। क्या सेंस ऑफ ह्यूमर है! कैसा हो गया मुँह उसका चाचू?'' गुड़िया चहकी।

भैया ने लकड़ी घुमाकर फेंकी, "इसी के जैसा हो गया होगा।''

उसने लपक ली, "नहीं, वो तो आप जैसा मोटा-ताजा था।''

अपने और नन्दन भैया के बीच इस अदृश्य लकड़युद्ध में मजा आने लगा था उसे और 'घर का भेदी' के रूप में गुड़िया थी।

"जानते हैं चाचू'', धीरे से बताया गुड़िया ने, "कल रात फिर मम्मी-पापा में घमासान हुआ। किसी महतो का केस था। मम्मी ने पहले ही पैसे ले लिए थे उससे। पापा बोले विटनेस कमजोर है उसके फेवर में जजमेंट कैसे होगा, तो मम्मी बोली कि कैसे भी हो आपको देना है। अक्कल तो है नहीं, बन गए हैं मजिस्ट्रेट।''

भाभी को छेड़ा उसने, "क्यों मुर्गा बनाए रखती हैं भइया को? किसी दिन हलाल हो जाएँगे।''

"सब जलनखोर लोग मिलके शाप देगा तो कुछ हो भी सकता है।''

भाभी का माइग्रेन का दर्द शुरू हो गया, पलंगारोहण कर गई।

"लीजिए चाचू।" गुड़िया फ्रिज से पेप्सी की बोतल निकाल लाई थी।

"कितना हो चुका आज?" उसने मुस्कुराकर पूछा।

"अभी तो सिर्फ तीसरा है चाचू।" पेप्सी की बोतल मुँह से लगाए हँस रही थी गुड़िया। फिर वह गुड़िया को बतलाने लगा कि कैसे एक बार भाभी का कासिद बनकर एक गुप्त प्रेम-पत्र को ले जाते हुए सार्वजनिक कर दिया था जिसमें लिखा था, "रेडियो सीलोन चीख-चीखकर कह रहा है, सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था, आज भी है, और कल भी रहेगा।"

भाभी प्रकट हो गई।

"का लड़कभुड़भुड़ी बतिया रहे हैं। लड़की को और बिगाड़िएगा क्या? वैसे ही उल्टा-पुल्टा काम करती रहती है। एकदम बहक गई है। पानी के बदले पेप्सी पीती है। हजार रुपया तो पॉकेट मनी में उड़ा देती है।"

"चाचू आप तो दो हजार में भी कुछ नहीं बोलते न?" गुड़िया ने लाड़ जताई।

'हाँ' कहने में क्या हर्ज है सोचा उसने।

"दो-चार महीना रहोगी न अपने चाचू के पास पता चल जाएगा।" भाभी ने उसकी ओर अग्निवाण फेंका था।

"हाँ, चाचू के साथ तो हम किसी भी हाल में रह लेंगे। तुम्हारा लेक्चर तो नहीं सुनना पड़ेगा।"

बस भाभी ज्वालामुखी, "क्या? हम लेक्चर देते हैं? उल्टा-पुल्टा काम करोगी तो लेक्चर क्या, पिटाई भी देंगे।" उसने नोट किया कि दूसरी बार भाभी ने उल्टे-पुल्टे काम का जिक्र किया था।

"मैं कॉलेज जा रही हूँ, चाचू बाय!" पैर पटकती हुई गुड़िया कॉलेज चली गई।

"ऊँह, चाचू बाय, हम लोग जैसे कोई नहीं हैं। कौन लकड़ी सुंघा दिए हैं जी इसको?"

हँस पड़ा था वह। गुड़िया के इस उल्टे-पुल्टे काम के बारे में उसे तब मालूम हुआ जब गुड़िया की पिटाई सचमुच हो गई। उसी अपार्टमेंट के एक फ्लैट में एक प्रिंटिंग प्रेस के मालिक थे शर्मा जी। उनका लड़का था विकास, जो उसे कभी सीढ़ियों पर मिल जाने पर 'हाय अंकल' कहकर मुस्कुराता था। उसकी भौंड़ी नाक पर नजर डालकर वह भी 'हलो' कहकर मुस्कुरा देता। विकास की विकसित मुस्कुराहट का राज उसे तब समझ आया, जब पिटकर गुड़िया ने सरगोशियों में बताया उसे–

"चाचू आयम इन लव विद विकास।"

"देखो गुड़िया, जानता हूँ कि प्यार अन्धा होता है लेकिन इतना भी अन्धा नहीं होना चाहिए कि नाक भी न देखे।" उसे विकास की भौंड़ी नाक याद आई थी।

"चाचू, नो जोकिंग। आयम सीरियस।"

"हूँ, तब तो कुछ करना पड़ेगा।" भाभी को समझाने की कोशिश की उसने, "गुड़िया बड़ी हो गई, क्यों मारपीट करती है?"

"बहकाइए और उसको। सब आपका ही किया धरा है। उसका...उसका तो खून कर देंगे एक दिन।" दाँत पीसती भाभी कितनी खतरनाक लगती थी।

"अच्छा रहेगा। शौहर मजिस्ट्रेट और बीवी खूनी। लेकिन आपको क्या चिन्ता। पैसा है जहाँ, जमानत है वहाँ।" लाइफ ब्वाय साबुन का विज्ञापन गाया उसने।

"मैं चाचू के पास रहूँगी।" एक दिन गुड़िया ने निर्णय सुनाया।

"कोई जरूरत नहीं है," भाभी ने निर्णय को खारिज कर दिया। देर रात वह नीचे उतरा अपने डेरे पर जाने के लिए तो साथ में एक शेर भी उतरा–

"शरीक होने से मेरे बिखर गए रिश्ते

सूकूते-नज्में-जहाँ में खलल रहा हूँ मैं।"

छोटे भाई साहब डेरे पर इन्तजार कर रहे होंगे। बीस-पच्चीस बीड़ियाँ भी फूँक चुके होंगे अब तक। देर होने से उनको टेंशन हो जाती है और राँची मानसिक आरोग्यशाला के डॉक्टरों ने कहा है कि उन्हें तनाव कम से कम हो। इसीलिए बीड़ियाँ पीने से भी रोक नहीं सकता उन्हें। दिमाग पर जोर पड़ता है इसका। पैर के नीचे एक छोटे-से गड्ढे का आ जाना, झटके से उसका झुक जाना और खचाक से कान के ऐन पीछे सिर पर गंड़ासे का लगना- सभी एक ही क्षण में हो गए होंगे। अँधेरे में वह वार करने वाले का चेहरा न देख सका। उसके दिमाग में सिर्फ एक बात कौंधी, "इन्सान साहब के आदमी..." और बेहोश हो गया था वह।

लम्बे समय के बाद अस्पताल के बिस्तर पर होश आया उसे। भाभी, सूजी आँखें लिए गुड़िया, अनवरत बीड़ियाँ फूँकते छोटे भइया, धीरे-धीरे पहचान रहा था वह। एक मरियल मुस्कान फेंकी गुड़िया की तरफ।

"हाय लकड़सुंघा चाचू!"–गुड़िया ने हाथ हिलाया। गुड़िया भी भाभी को चिढ़ाने लगी थी

आजकल।

"जानते हैं, गुड़िया भी खून देने के लिए तैयार हो गई थी, डॉक्टर ने ही डाँट दिया। हमारा तो खैर ग्रुप ही अलग है और आपके भैया को तो प्रेशर ही है। चलिए पैसा लगा, लेकिन खून तो मिल गया।'' भाभी ने एहसान रस में डूबी सूचनाएँ परोसीं।

दूसरे दिन दोस्त (बन बन के मिले मुझको मिटाने वाले) आए, बहुमूल्य सलाह दी, "अभी भी सुधरो। इस बार तो बच गए। कभी मर जाओगे इसी तरह। क्या समझते हो अपने को, तीसमार खाँ?''

'छोड़ो भी' सलाह को 'मौत का एक दिन मुअय्यन है' की लकड़ी से किनारे सरका दिया उसने। फिर उत्साह से बताने लगा कि कैसे ईश्वर ने उसे बचाने के लिए एक गड्ढा खोद रखा था नहीं तो गंड़ासा गर्दन पर ही पड़ता और झटका मीट बन जाता वह। फिर इन्सान साहब के किसी काम नहीं आता क्योंकि इन्सान साहब को तो झटका या हलाल दोनों से परहेज है।

'तेरी आँखों के सिवा' वाले बमशंकर ने रस लिया, "वैसे भी तुम्हारा मीट लजीज नहीं होगा। बड़ा हड़ियाल तुम्हारा स्ट्रक्चर है।''

"अलबत्ता तुम्हारे ब्रेन को हम लोग रिसर्च के लिए राँची या आगरा के मेंटल हॉस्पीटल में जरूर भेज देते।'' नाटा नवीन हुचहुचाया था।

"कितना दिन चलेगा सिम्पैथी-रसपान तुम्हारा?'' पूछा तुक्कड़ नरेन्द्र ने।

"बस एक महीना ही मिल पाएगा मौका।'' हँसकर कहा था उसने। लौट भी आया था एक महीने बाद अस्पताल से और गौर किया उसने कि पिछले दिनों में गुड़िया, भैया, भाभी कोई मिलने नहीं आया था उसे। सिर्फ छोटे भैया आते घर से खाना लेकर, बैठकर एकाध घंटे अनवरत बीड़ियाँ फूँकते, फिर डिब्बा लेकर चल देते। वह भी खाना बनाने वाली आई थी या नहीं, उन्होंने खाना खा लिया है या नहीं वगैरह पूछकर तसल्ली कर लेता।

घर पहुँचते ही दूसरे दिन अलस्सुबह गुड़िया आई थी–सूजी आँखें और बैग में कपड़े लेकर।

"चाचू! अब मैं यहीं रहूँगी आपके पास। आपको कोई प्रॉब्लम तो नहीं होगी?''

"नहीं, प्रॉब्लम तो कोई नहीं लेकिन भैया-भाभी...''

"नाम मत लीजिए ब्रूट और करप्ट लोगों का। उन लोगों से मेरा कोई नाता नहीं है अब।''

फिर नाक सुड़ककर बोली, "प्यास लगी है चाचू।''

वह ठंडा हो गया था। उठा, मसखरेपन से काम लेना होगा, "पेश है गॉड्स ड्रिंक'', नाटकीयता की कोशिश की। पानी देखकर मुँह बिचकाया गुड़िया ने, "उससे मेरा नहीं चलेगा चाचू। ले आती हूँ नुक्कड़ वाली दुकान से।'' उसने दस का नोट निकाला।

"पैसे हैं अभी मेरे पास, जब नहीं होंगे तो ले लूँगी।'' वह चली गई थी।

एक बार मजाक में कहा भी था उसने, "गुड़िया! मगर हम दोनों का कभी खुदा न खास्ता पोस्टमार्टम हुआ तो मेरे अन्दर से निकलेगा सिगरेट का धुआँ और शायरी और तुम्हारे अन्दर से पेप्सी और प्रेम का कीड़ा।''

"और मम्मी के अन्दर?'' पूछा गुड़िया ने।

"तुम्हीं बताओ...''

"कलेजे में नोटों की गड्डी और दिमाग में गोबर।'' दोनों खूब हँसे थे। उसे उम्मीद हो आई थी गुड़िया से।

"बड़ों के बारे में नहीं कहते ऐसी बातें।'' बरज दिया था उसने। गुड़िया लौट आई। उसके चेहरे पर 'कूल माल' गड़प करने का सन्तोष था।

"एक फ्रिज ले लीजिए चाचू, साथ में एक कलर्ड टीवी विद केबल कनेक्शन, 'व्ही' चैनल के बिना भी कोई लाइफ है!''

उसने जल्दी-जल्दी हिसाब लगाना शुरू किया हालाँकि गणित में उसे सबसे कम नम्बर आते थे। जी.पी.एफ. से कितना लोन लिया जा सकता है! कई बार ले भी चुका है छोटे भैया के इलाज के सिलसिले में। पूरा खाली कर देने पर भी शायद एकमुश्त दोनों चीजें पधार नहीं सकती थीं। फिर आँखों के सामने तरह-तरह के ऑफर चमके कुछ पैसे जमा, और बाकी इन्स्टालमेंट...

"एक हफ्ते का टाइम दो, गुड़िया।''

"ओ.के.! नो प्रॉब्लम, डियर चाचू।''

विकास के साथ विकसित होते गुड़िया के प्रेम पर उसकी नजर थी, निगरानी नहीं। विकास घर पर भी आता।

"चाचू! कल विकास का बर्थ डे है। गिफ्ट भी देना है और 'होली डे होम' में छोटी-सी ट्रीट भी। कई फ्रेन्ड्स भी होंगे।''

"बजट पेश किया जाए।'' उसने गुब्बारा फुलाया।

"फिफ्टीन में काम चला लूँगी।'' फुस्स हो गया गुब्बारा।

"क्या, पन्द्रह रुपए!'' फुस्स हो चुके गुब्बारे में मसखरी की हवा भरी उसने।

"कम ऑन चाचू। नो जोकिंग। वन फाइव जीरो जीरो ओनली-'' धड़ाम्! गुब्बारा फूट चुका था।

जेब के पार देख रहा था वह, सिर्फ सत्रह सौ। भैया की दवाई भी लानी है और तारीख है सिर्फ बीस। दस दिन हैं अभी वेतन मिलने में। ओह! ये वेतन हमेशा तीस के बाद ही क्यों मिलता है...कल शाम टूर पर भी जाना है...एडवांस तो मिलने से रहा...

"गुड़िया! देखो, चाचा की दवाई भी...ये पाँच सौ रख लो अभी। ...काम चला लो...'' गुड़िया ने पहली बार कुछ माँगा था उससे और वह...

"क्या चाचू आप भी...चाचा अगले महीने दवा खा लेंगे तो मर तो नहीं जाएँगे न? क्या हो जाएगा, जैसे आधा पागल वैसे पूरा पागल!''

"गुड़िया!'' वह पहली बार गुड़िया पर चिल्लाया था। वह सहम गई थी, "सॉरी चाचू।''

"इट्स ऑल राइट...''

दूसरे दिन एक हजार दे दिए थे उसने। जरूरत पड़ी तो उधार ले लिया जाएगा। कर्ज की पीते थे मय की तर्ज पर...

शाम को खुश-खुश लौटी थी गुड़िया।

"चाचू, मेरे पास एक शानदार प्रपोजल है। एक ही बार में सारी प्रॉब्लम साफ...''

खुशी संक्रामक थी। वह भी खुश हुआ।

"विकास के पापा...''

विकास के पापा यानी शर्माजी यानी प्रेम प्रकाश शर्मा यानी शर्मा प्रिंटर्स यानी उसके विभाग की 'पढ़े-लिखे', 'खेल-खेल में', 'अक्षर की ताकत' आदि किताबों के प्रकाशक यानी, यानी और यानी...मकड़े की तरह यानी के धागे का सिरा पकड़कर ऊपर चढ़ता गया था वह।

"मतलब शर्मा अंकल ने विकास को कहा था अगर आप थोड़ा-सा कागज की क्वालिटी, प्रिंटिंग और किताबों के नम्बर्स में कम्प्रोमाइज कर लें तो पचास हजार तक...''

खटाक्! आगे कुछ नहीं सुना था उसने। खटाक् से दरवाजा बन्द करके गुड़िया शायद कपड़े बदलने चली गई थी दूसरे कमरे में, उसने झटके से बैग उठाया और निकल पड़ा टूर पर। स्टेशन के पास से शर्मा को फोन किया...जूनूँ की हालत में अपनी लकड़ी से भरपूर धुनाई की...

तीसरे दिन टूर से घर लौटा, थका-हारा...पिटी सूरत, मिटी चाहत लिए–गुड़िया नहीं थी घर पर। छोटे भैया थे।

"वह चली गई है–'' भैया ने निस्संग भाव से कहा और बीड़ियाँ फूँकते रहे। एक कागज थमा दिया, लिखा था–

चाचू,

मैं जा रही हूँ वापस। पापा आए थे कल। डोनेशन पर ऐडमीशन ले रही हूँ पूना में, फैशन टेक्नोलॉजी में। आपके पास तो लाइफ ही स्पायल हो जाती। भला ये भी कोई लाइफ है कि आदमी एक मामूली पेप्सी के लिए तरस जाए। और आपने जिस तरह से शर्मा अंकल को इन्सल्ट किया इसके लिए कभी माफ नहीं करूँगी आपको, कभी नहीं...

सुदीप अंकल ठीक कहते थे–सैटेनिक इन्फ्लूएंस है आप में और एक बात जो मम्मी कहती थी आपके बारे में और कभी कहा नहीं था आपको आज कहती हूँ,

"सूअर का शिट हैं आप, किसी काम के नहीं...''

भाभी जरूर सूअर का गू कहती होंगी लेकिन बेचारी गुड़िया...कॉन्वेंट की प्रॉडक्ट। हँसी आ गई उसे। शायद लक्कड़ की तासीर बढ़ानी पड़ेगी-सोचा उसने।

पड़ोस के मकान से पूरे जोरों पर टी.वी. पर पेप्सी का विज्ञापन चीख रहा था–"जेनरेशन नेक्स्ट ड्रिंक।''

भाई

गम्भीर सिंह पालनी

तल्लीताल रिक्शा-स्टैंड पर रिक्शे की प्रतीक्षा में खड़े लोगों की लाइन बहुत लम्बी थी। लाइन में सबसे पीछे लगकर अपना नम्बर आने की प्रतीक्षा में जितना समय लगता, उससे कम समय में तो टहलते हुए माल रोड के मध्य स्थित अपने दफ्तर तक पहुँचा जा सकता है। इसलिए उसने तय किया कि वह दफ्तर तक की दूरी पैदल ही तय करेगा। दफ्तर यानी बैंक, जहाँ वह पिछले लगभग तीन वर्षों से एक अधिकारी के रूप में कार्यरत है।

दिन में इस तरह टहलने का अवसर, वह भी दफ्तर वाले दिन, कहाँ हाथ लगता है। आज की तो बात अलग है। आज हुआ यह कि मैनेजर पडलियाजी बोले, "मिस्टर अरुण, आप कचहरी चले जाइए और बैंक के एडवोकेट से मिलकर 'शर्मा एंड कम्पनी' वाले मामले के कागजात तैयार करवा लीजिए।''

चलते हुए उसने कलाई-घड़ी पर नजर डाली तो पाया कि ढाई बज चुके हैं। उसे चाय की तलब महसूस हुई। सुबह से अभी तक कचहरी में इतनी व्यस्तता रही कि चाय पीने का समय तक नहीं मिला।

माल रोड पर कुछ दूरी तय करने के बाद दाहिनी ओर चाय की एक छोटी-सी दुकान है। वहाँ चाय पी जा सकती है। पर्यटकों का सीजन होने के कारण माल रोड पर बड़ी भीड़-

भाड़ है। उसके मन में विचार आया कि चलो अभी ही यहाँ पर से ही सड़क को क्रॉस करते हुए उस पार पहुँचा जाए ताकि आगे चलकर सड़क क्रॉस करने में दिक्कत न हो।

माल रोड पर बाएँ से दाएँ हाथ पर आकर वह, जैसाकि उसकी आदत थी, होटलों के नीचे रोड पर खड़ी कारों व जीपों के नम्बर तथा उनके ऊपर टँकी प्लेटों पर लिखे विभिन्न विभागों के नाम व उनके अफसरों के पदों को पढ़ता हुआ चल रहा था। कहाँ दूसरे विभाग जिनके अफसरों के पास गाड़ियाँ हैं और कहाँ उसका विभाग और वह–यह सोचते हुए।

अलका होटल के बाहर खड़ी एक कार पर लगी लाल रंग की प्लेट पढ़कर वह टिका। उस पर अंकित था–सहायक आयुक्त, आबकारी, आगरा।

यह पढ़कर वह एकदम से तय नहीं कर पाया कि उसे क्या करना चाहिए। रुके रहना चाहिए या चल देना चाहिए।

यह तो भाई साहब की गाड़ी है। भाई साहब यानी लल्लू दाज्यू। लल्लू दाज्यू यानी श्री लक्ष्मणसिंह भंडारी। भंडारी बिरादरी में स्वर्गीय ठाकुर पूरनसिंह के सात बेटों में से दूसरे बेटे के सबसे बड़े बेटे। यानी कि सात भाइयों के लड़कों व लड़कियों में सबसे बड़े। वे आज नैनीताल घूमने आए हुए हैं। लल्लू दाज्यू यानी कुनबे की नाक। भंडारियों में इतने बड़े अफसर हुए ठहरे लल्लू दाज्यू। उनके अपने कुनबे में उदाहरण।

पहाड़ में गरुड़ के बाजार में स्थित अपनी चाय की दुकान में भट्ठी के पास बैठे हेमू काका लोगों पर रौब झाड़ते हैं–मेरा भतीजा कमिश्नर हो गया है, कमिश्नर। उनकी बातों से खिंचे ग्राहक चाय की दुकान पर घिर आते हैं तो काका फौरन भट्ठी की आग को पंखे से हवा करने लगते हैं। फिर पास में पड़े जूठे गिलास खँगालने लगते हैं ताकि ग्राहकों को चाय दी जा सके।

इतने बड़े हैं दाज्यू कि जो कहा जाए, वह कम है। नैनीताल में जब वह आया ही था, जिला-स्तर की मीटिंगों में बड़े प्रशासनिक अधिकारियों ने दो-तीन बार उससे पूछा था, "मिस्टर भंडारी, आप असिस्टैंट कमिश्नर भंडारीजी की फैमिली से तो नहीं...?" तो उसे यह कहते हुए बड़ा फख्र हुआ था, "जी हाँ, वे मेरे कजिन हैं।"

लपककर उनसे मिलना चाहता है अरुण। अपना खून, अपना भाई शहर में आया हुआ है।

वह कार के पास खड़े ड्राइवर जैसे दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति से पूछता है, "इसी गाड़ी में हो?"

"जी हाँ।"

"भंडारी साहब की गाड़ी है न ये?"

"जी हाँ, साहब ऊपर ही बीस नम्बर में टिके हुए हैं...मिल लीजिए।" कहने के साथ-साथ ड्राइवर ने कहा, "नमस्कार साहब।"

"ठीक है" कहता हुआ वह अलका होटल की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। इस ड्राइवर ने मुझे "नमस्कार साहब" कहा और यह भी कहा, "मिल लीजिए।" इसके बोलने का अन्दाज कुछ ऐसा था, जैसे मुझे पहचानता हो। अरुण ने सोचा। अवश्य ही इसने मुझे लल्लू दाज्यू का सबसे छोटा भाई सुरंजन समझा होगा। सुरंजन और मैं देखने में एक से ही लगते हैं–ऐसा बिरादरी में सभी कहते हैं।

एक जैसा दिखाई पड़ने में आश्चर्य ही क्या है! हुआ तो एक ही खून। ड्राइवर तभी तो धोखा खा गया। उसने सोचा होगा कि कालाढूँगी से, जहाँ लल्लू दाज्यू के पिताजी रहते हैं, सुरंजन अपने भाई साहब के पास आया है। फिर ड्राइवर को यह भी कहाँ मालूम होगा कि रुद्रपुर के पास किसी गाँव में उसके साहब के चाचा का परिवार रहता है और उस चाचा का एक बेटा अरुण नैनीताल में ही नौकरी करता है।

यह विचार मन में आते ही ग्राउंड-फ्लोर से तुरन्त सेकंड फ्लोर तक जा पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने की उसकी तेजी में कमी आ गई। धीरे-धीरे वह सीढ़ियों पर ही ठहर गया।

कोई बाहर वाला सुने तो एकदम से विश्वास ही न करे कि बागेश्वर, गरुड़ और सोमेश्वर के बाजारों में चाय या पान के खोखे लगाए हुए भंडारी उपनाम वाले लोग इन भंडारी साहब के बिरादर भी हो सकते हैं। पहाड़ के उन लोगों की बात तो दूर रही, जो बिरादर भावर या तराई में आकर बस गए हैं और लल्लू दाज्यू को अपना "खास", "बिलकुल सग्गा", "एक ही खून का" और "भाई ही तो ठहरा" कहने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देते हैं, उन बिरादरों में से भी किसी में इतना साहस नहीं होता कि लल्लू दाज्यू के बँगले या दफ्तर में कदम भी रखे।

बात ही कुछ ऐसी है। लल्लू दाज्यू किसी बात में अपने पिता से पीछे नहीं हैं। उनके पिताजी यानी अरुण के ताऊजी नम्बर दो, देश आजाद होते-होते एक दफ्तर में बाबू लग गए। नौकरी लगी और शादी हुई। शादी क्या हो गई कि उन्हें अपने सगे भाई-बहनों तथा उनके बच्चों में बास आने लगी। उस जमाने में हाईस्कूल पास व्यक्ति की बहुत कदर थी। इसीलिए तो वह कुछ बरसों के भीतर ही उस दफ्तर में एक कनिष्ठ अधिकारी के रूप में तरक्की पा गए थे।

इस तरक्की का परिणाम इस रूप में सामने आया कि वे घरवालों से और भी दूर होते चले गए। ताऊजी नम्बर एक ने, जो कि स्वयं बहुत कम पढ़े-लिखे थे और गाँव की खेती-बाड़ी देखने के साथ-साथ चाय की एक छोटी-सी दुकान चलाते थे, उन्हें पढ़ाया-लिखाया था

किन्तु उनके बच्चों के लिए भी ताऊजी ने कुछ नहीं किया; अन्य भाइयों या उनके बच्चों के लिए कुछ करने की बात तो दूर रही।

चाचा लोग यानी ताऊजी के अन्य छोटे भाइयों को न तो उन्होंने पढ़ाने में कोई रुचि ली और न ही कोई मार्ग निर्देशन किया कि वे लोग भी कुछ आगे बढ़ पाते। बस यह सलाहें जरूर दीं–अरे नौकरी-चाकरी में क्या रखा है। गाँव में कोई चाय या परचून की दुकान ही खोल लो तो मजे से रोटी खाओगे। ज्यादा ही किसी ने जिद की और कहा कि गाँव में जी नहीं लगता तो सलाह मिली–फौज में रंगरूटों की भरती हो रही है। वहाँ लाइन में लग जाओ।

अरुण ने आकलन किया है कि उसके चाचा लोग स्वयं उसके पिताजी की तरह या तो सिपाही भरती हुए या फिर गाँव में ही रह गए। भंडारियों से इस तरह ताऊजी नम्बर एक को काट डालने और उनके प्रति संवेदनाहीन बना डालने के पीछे लोग ताऊजी की नौकरी का ही नहीं बल्कि ताईजी का भी हाथ मानते हैं। कुछ बिरादर दबी जुबान से, तो कुछ खुलकर यह कहने से नहीं चूकते, "जोरू के गुलाम को अपनी जोरू के मायके वालों का भला करने से फुर्सत मिलती तब न भला करता भंडारियों का।''

ठीक ही कहते हैं लोग। ताईजी के मायके के कुत्ते तक अच्छी सरकारी नौकरियों में कहीं-न-कहीं चिपक गए या यूँ कहिए कि चिपका दिए गए जबकि ताऊजी के भाइयों की तरह उन भाइयों के बच्चे भी दिशा निर्देशन सही न मिल पाने के कारण बहुत पीछे रह गए। ज्यादातर सिपाही बन गए और बेटियाँ सिपाहियों को ब्याह दी गईं जबकि उनमें से कई के बारे में उनके शिक्षकगण कहा करते थे कि वे पढ़ाई में बहुत होशियार हैं।

पहाड़ में रह रहे अरुण के ही एक चचेरे बड़े भाई साहब ने बी.ए. तक हर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। गाँव का मामला। कोई यह तो बताने वाला नहीं था कि आगे क्या करना ठीक रहेगा। ताऊजी के पास गया तो उन्होंने सलाह दी–बी.टी.सी. कर लो। बी.टी.सी. ट्रेनिंग किए हुए व्यक्ति को नौकरी मिलना बिलकुल पक्का तय होता है और वह भाई बेचारा अब भी एक प्राइमरी स्कूल में खट रहा है। आज जब भी अरुण और उसकी मुलाकात होती है तो दोनों बातें करते हैं कि उस भाई को सही समय पर यह क्यों नहीं मालूम हुआ कि नौकरियाँ सिर्फ पेट पालने के लिए नहीं ढूँढ़ी जातीं और वह उस मास्टरी से कई गुना बेहतर शानदार अफसरी पाने की योग्यता रखता था किन्तु उसे पता ही नहीं था कि उसके लिए कौन-सी दौड़ किस मैदान में होती है। तब तो एक ही बात दिमाग में आती थी कि नौकरी लग जाए बस।

दूसरी तरफ ताऊजी के बच्चे दिल्ली, लखनऊ और इलाहाबाद जैसी जगहों में कोचिंग सेन्टरों में प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं की तैयारियाँ करते हुए अच्छी-अच्छी नौकरियों में पहुँच गए। जो ऐसा नहीं कर सके वे एम.ए. पूरा करके डिग्री कॉलेजों में प्राध्यापक हो गए। अरुण सोचता है कि इस हिसाब से उन चचेरे बड़े भाई साहब को प्राइमरी पाठशाला में

शिक्षक नहीं बल्कि डिग्री कॉलेज में प्राध्यापक होना चाहिए था; बस इतना हुआ होता कि वे प्राइवेट बी.ए. प्रथम श्रेणी में कर लेने के बाद ताऊजी से सलाह माँगने चले जाने की भूल करने के बजाय कहीं किसी डिग्री कॉलेज के किसी अनजान प्राध्यापक से ही सलाह माँगने चले गए होते तो निश्चित रूप से वह एम.ए. करने की सलाह देता और तब आज बात ही कुछ और होती।

अरुण को अपनी ही आप-बीती याद आती है। तब वह बी.ए. अन्तिम वर्ष का छात्र था। हाईस्कूल व इन्टर दोनों में प्रथम श्रेणी में पास हुआ था वह। बी.ए. प्रथम वर्ष के अंकों के आधार पर इस बात की पूरी सम्भावना थी कि बी.ए. अन्तिम वर्ष में भी वह प्रथम श्रेणी ला सकेगा। घर का माहौल चाहे जैसा भी रहा हो किन्तु उसने पढ़ाई में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। गाँव में सबके घर में बिजली लग गई थी किन्तु उसके अपने घर में बिजली का कनेक्शन नहीं था। पिताजी को पीने से फुर्सत नहीं रहती थी। सेना से सेवानिवृत्त होने के बाद गाँव में जमीन एलॉट हुई थी उन्हें। गाँव में धीरे-धीरे वे शराबियों की संगत में पड़कर उजड़ रहे थे। शराब के नशे में धुत हर शाम वे शोर-शराबा करते बच्चों को व उनकी माँ को गालियाँ देते। वे पस्त पड़कर जब तक सो न जाते तब तक पढ़ने-लिखने का वातावरण वैसे भी नहीं बन पाता था। सबके सोने के बाद अरुण मिट्टी के तेल की ढिबरी जलाकर घर के कोने में पढ़ने बैठ जाता। कई बार तो सुबह होने को होती और वह पढ़ रहा होता। माँ की नींद खुलती तो वह कहा करती–अब सो जा बेटा।

मगर बेटे को सोना कहाँ था। उसे तो बाप द्वारा शराब के चक्कर में पड़ने के बाद गिरवी रखी हुई जमीन को छुड़ाना था। बहिनों की शादी करनी थी। गरीब घर से निकला अब्राहम लिंकन उसे याद आता था।

गाँव के लोग अरुण के पिता से कहते कि कहाँ इसे पढ़ाने-लिखाने के चक्कर में पड़े हो, पढ़-लिखकर कौन-सी नौकरियाँ मिल जाती हैं आजकल। इसे किसी टैक्नीकल लाइन में डाल दो। किसी वर्कशाप में काम सीखने भेज दिया करो।

गाँव के लोग यह कैसे देख सकते थे कि जहाँ उनके अपने बेटे पढ़ने से जी चुरा रहे हों, वहाँ एक शराबी का बेटा पढ़ाई में आगे बढ़े। गाँव की दुनिया, गाँव की राजनीति और उस राजनीति की चालें...तभी तो यह हुआ कि ऐन इम्तिहानों से एक महीना पहले एक दिन तहसील का अमीन कागज लेकर घर आ धमका। कागज का मजमून यह था कि पिताजी ने किसान सोसायटी से कई बरस पहले खेती के लिए रासायनिक खाद के कट्टे ऋण स्वरूप लिए थे।

उस ऋण की सारी रकम बाबूजी ने नहीं चुकता की। लिहाजा उनके नाम चढ़े हुए बाकी ऋण की रकम पर ब्याज लगकर वह राशि छह सौ रुपए के लगभग हो गई। तहसील के वसूली नोटिस में यह लिखा हुआ था कि यदि ये रकम पन्द्रह दिन के भीतर न चुकता की गई तो बाबूजी को पकड़कर तन्हाई (तहसील-कारागार) में बन्द कर दिया जाएगा।

यह ब्लॉक प्रमुख हरिराम और उनके गुर्गों की सुनियोजित साजिश का ही तो परिणाम था अन्यथा इतनी कम रकम के लिए किसान सोसायटी को ऋण वसूली हेतु पिताजी का नाम तहसील में भेजने की भला क्या जरूरत थी। यह तो बाबूजी को नीचा दिखाने का प्रयास था। सोसायटी वाले भी तो गाँव के ही थे। साथ उठना-बैठना, साथ रहना, साथ खाना-पीना। उस पर भी यह सब हुआ।

तहसील से नोटिस आने वाली रात को बाबूजी ने बिलकुल भी नहीं पी थी। उसने सोचा था कि जब बाबूजी सो जाएँगे तो वह पढ़ने बैठेगा लेकिन वह आश्चर्यचकित रह गया जब बाबूजी ने ही उसे टोका, "क्यों अरुण, पढ़ना नहीं है क्या?''

उनकी आवाज काँप रही थी। उने जवाब दिया, "बाबूजी, आप इतना परेशान क्यों हो रहे हैं।...इस संकट और अपमान की घड़ी में आपके पास कोई ठोस सहारा हो न हो, मैं तो हूँ। मैं अपनी हाईस्कूल व इंटरमीडिएट की सनद गिरवी रखकर भी, कहीं से भी, पैसा लाऊँगा और इस गाँव में घर की इज्जत नीलाम होने से बचाऊँगा।''

यह सब इसलिए भी कहा था उसने, चूँकि वह जानता था कि इस घटना के बाद गाँव में किसी से भी कुछ उधार माँगने को बाबूजी का आत्मसम्मान गवारा न करेगा और रिश्तेदारी में कहीं बाबूजी जाएँगे भी तो रिश्तेदार उन्हें इसलिए रकम उधार नहीं देंगे कि कहीं वे उस रकम से शराब न पी जाएँ।

हताश और परेशान से अरुण ने अगले दिन सुबह ही शहर जाकर अपने अंग्रेजी के प्राध्यापक के सामने यह समस्या रखी थी चूँकि वे उसके मेधावी होने के कारण उसे बिलकुल अपने छोटे भाई जैसा मानते थे। उन्होंने कहा था–मेरी नई-नई नौकरी है और तनख्वाह में कुछ रुपया फंड वगैरह का कट जाता है। फिर भी मैं तुम्हें तीन सौ रुपए अवश्य दे दूँगा। बाकी तीन सौ रुपयों का इन्तजाम तुम कहीं और से कर लो।

अरुण बड़ा खुश हुआ था। उसकी समस्या आधी हल हो चुकी थी। बाकी तीन सौ रुपए की ही तो बात थी। तीन सौ रुपए तो लल्लू दाज्यू से ही मिल जाएँगे। फिर उसके दिमाग में विचार आया–तीन सौ रुपए तो क्या यदि वह लल्लू दाज्यू से छह सौ रुपयों के लिए भी कहता तो वे मना थोड़े ही करते। बेकार में अंग्रेजी के प्राध्यापक के आगे अपनी पोल खोली। ऐसा सोचने के बावजूद उसे हल्द्वानी जाने के लिए पाँच रुपए अंग्रेजी प्राध्यापक के छोटे भाई से ही उधार माँगने पड़े थे। लल्लू दाज्यू उन दिनों हल्द्वानी में पोस्टेड थे।

रुद्रपुर बस अड्डे तक प्राध्यापक के छोटे भाई ने ही साइकिल से छोड़ दिया था। तब बस से किराया दो रुपए लगता था। किन्तु ट्रक में बैठकर तो डेढ़ रुपए में ही हल्द्वानी पहुँचा जा सकता है–यह सोचकर अरुण ने दो बसें छोड़ दी थीं और उनके निकलने के बाद आए ट्रक को हाथ देकर उसके टूल्स पर बैठ गया था।

हल्द्वानी बस अड्डे पर उसने पता किया तो लोगों से जानकारी मिली कि लल्लू दाज्यू का दफ्तर तो बहुत दूर है। नैनीताल रोड पर डिग्री कॉलेज से भी आगे। रिक्शे वाले से पूछा तो जवाब मिला–पूरे दो रुपए लगेंगे।

'दो रुपए'–उसने मन ही मन सोचा। दो रुपए तो बहुत हैं। फिर उसके पास गुंजाइश ही कहाँ थी। धूप बहुत तेज थी। जून के महीने की दोपहर की तीखी धूप। पैदल चलकर डिग्री कॉलेज पहुँचते-पहुँचते तेल निकल गया। वहाँ पहुँचने पर भी पता चला कि वहाँ से भी लगभग एक किलोमीटर आगे चलने के बाद लल्लू दाज्यू का दफ्तर मिलेगा।

हाँफ गया था वह। लेकिन इस बात को सोच-सोचकर उसे सन्तोष हो रहा था कि लल्लू दाज्यू जैसे विशाल वृक्ष की छाँह में पहुँचते ही उसकी सारी थकान दूर हो जाएगी।

लल्लू दाज्यू के दफ्तर पहुँचा तो दफ्तर का भव्य भवन, उस पर लगा बोर्ड देखकर ही सहम गया। दफ्तर के प्रांगण में कारें ही कारें। बरामदे में बहुत सारे लोग बैठे हुए। वे सब लल्लू दाज्यू की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं–उसे पता चला।

वह भी बरामदे में बैंच पर बैठ गया और उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने दो व्यक्तियों को बातें करते सुना–आज साहब आएँगे तो अपने कागजों पर दस्तखत हुए समझो। कल ही उनके सेक्रेट्री से बात पक्की हुई है। कह रहा था कि पाँच हजार के लिए कहा है साहब ने। हमें क्या, हमने छह दे दिए। पाँच साहब के तो एक सेक्रेट्री का भी तो हुआ न ईमानदारी का।

पाँच हजार ऊपर की कमाई एक साथ–उसके कानों को जैसे विश्वास ही न हुआ। उसे अपना अस्तित्व बहुत बौना-सा लगने लगा। भाई साहब की तनख्वाह भी तो बहुत होगी। उस पर इतनी कमाई। एक बार को उसे लगा कि रिश्वत लेने वाले भाई से उसे मदद नहीं माँगनी चाहिए किन्तु फिर मन में खयाल आया कि समुद्र में तो हर प्रकार का पानी पहुँचता है और वह तो सिर्फ एक कटोरा जल की तलाश में निकला है।

तभी एक और विचार उसके मन में आने लगा। इतने बड़े आदमी के दफ्तर में उसे इस तरह नहीं आना चाहिए था। न कोई अच्छे कपड़े, न अच्छे जूते। उसे 'साहब' के चपरासी से यह कहने में भी शर्म महसूस हुई कि उनका भाई है और मिलने आया है।

घर जाकर मिलना ही सही रहेगा–सोचकर वह वहाँ से उठा। दफ्तर के प्रांगण में ही खड़े व्यापारी से दिखने वाले एक व्यक्ति से उसने भाई साहब की कोठी का पता मालूम कर लिया था।

इसी बीच क्या किया जाए। भाई साहब तो शाम तक घर पहुँचेंगे और भाभी-जी से उसकी पहले कोई मुलाकात नहीं हुई थी। फिर उसने यह भी सुन रखा था कि वे बहुत बड़े

घर की बेटी हैं और इस बात की उनमें बू भी है।

यूँ ही समय बिताने के लिए वह हल्द्वानी के डिग्री कॉलेज तक आ गया था और उसके प्रांगण में टहलने लगा था कि शायद कोई परिचित मिल जाए। भूख भी बहुत जोरों से लग आई थी किन्तु जेब में इतने पैसे अतिरिक्त न थे कि कुछ खरीदकर खाने का साहस वह जुटा पाता।

एकाएक वहाँ उसे एक परिचित छात्र रूपचन्द मिल गया था। रूपचन्द इससे पहले उसके शहर में ही उसके साथ इंटरमीडिएट में पढ़ता था। रूपचन्द बड़े प्यार के साथ उसे नवाबी रोड स्थित अपने कमरे में ले गया। वहाँ खिचड़ी बनाकर उसे खिलाई।

शाम को उसने रूपचन्द से कहा, "मुझे अपने एक परिचित के पास जाना है। यदि वे मिल गए तो मैं वहाँ रुक जाऊँगा अन्यथा तुम्हारे साथ लौट आऊँगा। रूपचन्द को यदि वह सच बात बतलाता तो शायद रूपचन्द विश्वास ही न करता कि वे उसके भाई होते हैं। रूपचन्द ने उसे साइकिल से भाई साहब की कोठी तक पहुँचाया था। उसे लगा कि जैसे रूपचन्द पर भी उसका रुआब लल्लू दाज्यू की कोठी की शान-शौकत की वजह से पड़ रहा था।

चाय वहाँ उसने जरूर पी थी लेकिन चूँकि भाई साहब नहीं आए थे और यह पता चला था कि वे रात को देर से लौटेंगे, इसलिए वह रूपचन्द के साथ वापस लौट आया था, भाभीजी से यह कहकर कि अभी जरूरी काम से कहीं जाना है। मैं सुबह भाई साहब से मिलने आऊँगा।

अपने काम के लिए भाभीजी से कहने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई थी। फिर भाभीजी तो एक तरह से पराए घर से आई बेटी थीं, पराया खून थीं जबकि लल्लू दाज्यू तो अपने भाई थे जिनमें अपना खून था।

सुबह रूपचन्द ने उसे साइकिल से फिर भाई साहब की कोठी के गेट तक पहुँचा दिया था। रूपचन्द को विदा कहकर वह कोठी के अहाते में पहुँचा। भाई साहब लॉन में कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे।

उसने भरे हुए गले से उन्हें तहसील के वसूली नोटिस की पूरी रामकहानी सुनाई। नोटिस उनके सामने रख दिया तो वे बोले, "मेरे पास पैसा कहाँ है अरुण, यहाँ खर्चे वैसे ही पूरे नहीं पड़ते, कैसे-कैसे जोड़-तोड़ करके काम चलाना पड़ता है–हमीं जानते हैं।''

अरुण उनके सामने गिड़गिड़ाने लगा। उसे उनसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। उसकी आँखों से आँसू फूट पड़े थे और उसने कहा था, "भाई साहब, मैं कसम खाकर कहता हूँ कि बी.ए. पूरा होते ही कोई भी छोटी-मोटी नौकरी करूँगा और पहली तनख्वाह पर मिले पैसों से सबसे पहले मैं आपके तीन सौ रुपए चुकाऊँगा।'' किन्तु भाई साहब को इन बातों से कोई फर्क न

पड़ा। इतना उन्होंने कहा था, "वो तो सब ठीक है लेकिन मैं मजबूर हूँ।''

"अच्छा चलता हूँ'' कहकर उसने भाई साहब के चरण छुए और चला आया था।

वापसी में फिर बस अड्डे तक वही लम्बा पैदल रास्ता। मेहमान को विदा करते समय दस-पाँच रुपए हाथ में रखने का जो दस्तूर है, वह भी भाई साहब ने नहीं निभाया। पाँच रुपए ही दे दिए होते तो हल्द्वानी से रुद्रपुर तक का जो किराया खर्च हुआ, वह तो अंग्रेजी प्राध्यापक के भाई के कर्ज के रूप में सिर न चढ़ा होता। तीन-चार सौ रुपए तो आज अरुण अपने चपरासियों को ही उधार दे देता है।...सीढ़ियों पर खड़े-खड़े ही इतना सब सोच गया अरुण। अतीत की उन स्मृतियों का बोझ उसे अब भी अपने मनोमस्तिष्क पर महसूस हुआ और सेकंड फ्लोर के कमरा नम्बर बीस तक पहुँचकर भाई साहब यानी लल्लू दाज्यू से लपककर मिलने की सारी उमंगें खत्म हो गईं।

धीरे-धीरे वह सीढ़ियों से उतरते हुए नीचे लौट आया था।

सोने का सुअर

मनोज कुमार पांडेय

चन्दू बहुत खुश हैं। बापू मामा के यहाँ से लौटकर आए हैं और अभी उन्होंने अम्मा से कहा कि कक्षा आठ से आगे की पढ़ाई के लिए चन्दू का मामा के यहाँ रह कर पढ़ना तय हो गया है। ऐसा नाना और बापू ने मिलकर तय किया है।

मामा का घर मामा के गाँव में सबसे ऊँचा है। छत पर चढ़ जाओ तो मामा का ही गाँव नहीं बल्कि आसपास के और भी कई गाँव दिखाई पड़ते हैं। पूरब में नरायनगंज, पश्चिम में न्यायीपुर, उत्तर में सोराँव और दक्षिण में नहर पार नेवादा। मामा के गाँव का नाम है चौबारा। चौबारा के दक्षिण में गाँव से लगकर एक नहर बहती है। नहर के दोनों किनारों पर विलायती बबूल फैले हुए हैं। नहर के दक्षिण में आपस में जुड़े हुए कई छोटे-छोटे तालाब हैं जो बारिश में मिलकर एक बड़ा तालाब बन जाते हैं। तालाब के पूरब में एक ऊँचा टीला है जिस पर तरह-तरह के पेड़ों का एक जंगल छाया हुआ है।

चन्दू को मामा के यहाँ जाना अच्छा लगता है। इस भूगोल के अलावा इसकी और भी कई वजहें हैं। पहली तो यही कि चन्दू के आने जाने की इकलौती यही जगह है जहाँ वह कभी कभार आ जा सकते हैं। उन्हें पास के बाजार भी अकेले नहीं जाने दिया जाता। ऐसे में मामा का घर उन्हें मुक्ति और नएपन की तरफ ले जानेवाला एक सुन्दर रास्ता लगता है जिसके किनारे-किनारे खजूर और जामुन के पेड़ों की एक लम्बी कतार है। चन्दू के पूरे गाँव में इनके

एक भी पेड़ नहीं हैं जबकि दोनों ही उन्हें बहुत अच्छे लगते हैं। गर्मियों में पहले जामुन पकता है फिर खजूर। काले काले जामुन और सूखे संतरे के रंग के खजूर।

मामा का घर पक्का है। फर्श इतनी चिकनी कि चाहे फर्श पर खाना खा लो और चन्दू का घर खपड़ैल है जिसकी छत से गोजर और बिच्छू गिरते हैं। चन्दू को दोनों से बहुत डर लगता है। बापू को बिच्छू बहुत जम कर चढ़ती है। उन्हें जब कभी बिच्छू डंक मारती है, वे हफ्तों बेसुध चारपाई पर पड़े रहते हैं। चन्दू की उन दिनों चारपाई से नीचे उतरने की भी हिम्मत नहीं पड़ती। और गोजर के बारे में तो चन्दू ने सुन रखा है कि वह चमड़ी में अपने पैरों को धँसाकर कुछ इस तरह चिपक जाती है कि चाहे उसके लाख टुकड़े कर डालो, फिर भी वह नहीं निकलती।

मामा के घर में बिजली है। चन्दू के घर में चिमनी जलती है। मामा के यहाँ टी.वी. है। चन्दू के यहाँ रेडियो भी नहीं है। मामा के यहाँ सब खूब गोरे हैं। चन्दू के यहाँ चन्दू और उनकी अम्मा को छोड़ कर सब काले। चन्दू सोचते हैं कि कितनी अच्छी बात है कि वे अम्मा पर गए हैं। गोरे और खूबसूरत। और भी कई कारण हैं जैसे चन्दू जब मामा के यहाँ से आने लगते हैं तो नानी उन्हें पाँच या दस रुपए देती हैं। पूरे साल में यह चन्दू को इकट्ठा मिलनेवाली सबसे बड़ी रकम होती है। रास्ते में बापू या अम्मा पूछती हैं कि कितना मिला तो चन्दू झूठ बोल जाते हैं और आधा ही बताते हैं। बाकी पैसे उन्हें कुछ दिन अपने मन का बादशाह बनाये रखते हैं। चन्दू पूरा सही सही बता दें तो पैसे अम्मा ले लें या फिर गुल्लक में डालना पड़े और गुल्लक चाहे जिसकी हो घर के गाढ़े वक्तों में काम आती है जो कि चन्दू के घर में आता ही रहता है।

अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि चन्दू ने अभी तक शहर नहीं देखा है और मामा का घर शहर से जुड़े कस्बे के नजदीकी गाँव में है। चन्दू जिस स्कूल में पढ़ने जा रहे हैं उसका रास्ता उस कस्बे के बीचोंबीच होकर गुजरता है जिस पर चन्दू साइकिल चलाते हुए रोज ब रोज गुजरा करेंगे। साइकिल साल भर पहले आ गई थी पर अभी तक इस पर दीदी का कब्जा था। वह साइकिल से स्कूल जाती थी और चन्दू पैदल गाँव के दूसरे लड़कों के साथ लड़ते झगड़ते। साइकिल को लेकर अक्सर उनका दीदी से झगड़ा होता रहता। वह चन्दू को साइकिल छूने भी नहीं देती थी। चन्दू दीदी से तो पिटते ही बाद में दीदी ये बातें बापू से भी कुछ इस तरह बताती कि चन्दू को वहाँ भी डाँट पड़ती। ये बीस इंच की कत्थई रंग की हीरो साइकिल चन्दू को अनायास ही मिल गई क्योंकि दीदी दसवीं की परीक्षा पास कर गई और आसपास ऐसा कोई स्कूल नहीं था जहाँ वह आगे पढ़ाई के लिए जाती।

चन्दू के स्कूल जाने के रास्ते में दो सिनेमाघर हैं। आते-जाते फिल्मों के पोस्टर सड़क के किनारे की दीवारों या पान की गुमटियों की साइड में चिपके दिखाई पड़ते हैं। बृहस्पतिवार के दिन दोनों सिनेमाघरों की दो टेंपो निकलती हैं जिनमें चारों तरफ अगले दिन से लगने जा रही फिल्म के पोस्टर चिपके होते हैं और एक व्यक्ति लाउडस्पीकर पर फिल्म और उसके कलाकारों के बारे में बताता चलता है। हर पाँच मिनट बाद बताने वाला थक जाता

है तो वह बीच में सुस्ताने के लिए फिल्म के गाने लगा देता है।

पिछली गर्मियों में छोटे मामा जब सबको चन्द्रलोक टाकीज में फिल्म दिखाने ले गए थे तो बाकी का तो चन्दू नहीं जानते पर उनकी वह टाकीज में देखी गई पहली फिल्म थी। फिल्म का नाम था 'नगीना की निगाहें'। इसके बाद चन्दू का मन इच्छाधारी नाग होने का करने लगा था। उनके सपनों में इच्छाधारी नाग आते और बीन की आवाज सुनते ही उन्हें अमरीश खेर याद आने लगता। पिछली गर्मी से इस गर्मी के बीच चन्द्रलोक टाकीज का नाम बदल कर गंगा टाकीज हो गया है। गंगा टाकीज में तीन तरह के टिकट हैं जिनके दाम हैं पन्द्रह रुपए, दस रुपए और पाँच रुपए। इतने पैसे चन्दू के पास इकट्ठे कभी नहीं होते हैं सो चन्दू सिर्फ पोस्टर देखते हैं या फिर शो टाइम में कभी कभी टाकीज चले जाते हैं और निकास की तरफ की सीढ़ियों पर बैठकर फिल्म के गाने और डायलाग सुनते हैं। इस तरह बहुत सारी फिल्में चन्दू ने देखी भले नहीं है पर उनके पूरे डायलाग उन्हें याद हैं।

मामा के लड़के अक्सर फिल्म देखने जाते हैं मामा के साथ, मामी के साथ और कई बार अकेले भी। चन्दू सिर्फ पोस्टर देखते हैं, एक ही फिल्म के अलग-अलग पोस्टर और पोस्टर के आधार पर फिल्म की कहानी की कल्पना कर लेते हैं। इस तरह गंगा टाकीज और सूर्या टाकीज, इन दोनों ही टॉकीजों में चलने वाली हर फिल्म की दो-दो कहानियाँ होती हैं। एक वह जो सचमुच फिल्म की कहानी होती है और दूसरी वह जिसे पोस्टरों के आधार पर चन्दू रचते हैं। इस दूसरी कहानी के बारे में सिर्फ चन्दू को पता होता है।

मामा के घर आकर कई ऐसी मुश्किलें खड़ी हो गई हैं जिनके बारे में चन्दू ने पहले कभी सोचा ही नहीं था। अभी कल की ही बात ले लो। कल दशहरे के मेले का दिन था। चन्दू के सभी ममेरे भाई बहन एक से एक रंगीन कपड़ों में मेला जाने के लिए तैयार थे। पर चन्दू के पास नए कपड़े के नाम पर स्कूल ड्रेस है, गाढ़ा नीला पैंट और आसमानी शर्ट। इसके अलावा एक और शर्ट है जो कॉलर पर पूरी तरह घिस गई है और अन्दर का अस्तर बाहर निकल आया है। एक हॉफ पैंट है जो चूतड़ पर इस तरह से घिस चुकी है कि रंगीन तागे जो शायद सूती रहे होंगे, घिसते-घिसते गायब हो गए हैं और दोनों उभारों पर टेरीकॉट के तागों के दो गोल धूसर घेर भर बचे हैं जो पैबन्द नहीं हैं फिर भी पैबन्द की तरह दिखाई पड़ते हैं। एक फुलपैंट भी है जो छोटी हो गई थी तो बापू ने नीचे की मोहड़ी खोलकर बड़ा करवा दिया। अब वह पैंट चन्दू के नाप की तो हो गई है पर एक दूसरी मुश्किल पैदा हो गई है। पूरे पैंट का रंग धुँधला हो गया है पर पैंट की मोहड़ी खुलने के बाद जो हिस्सा नीचे से ऊपर आया है वह अभी भी पहले के रंग में है। इसलिए वह अलग से जोड़ी गई पट्टी की तरह दिखाई पड़ता है। एक चौड़ी मोहड़ी का पजामा भी है पर उसके बारे में चन्दू की राय यह है कि उसको पहनने से अच्छा है कि चड्ढी पहन के घूमते रहो। चड्ढी चन्दू के गाँव में तो चल जाती थी जहाँ बचपन से ही वह चड्ढी पहनते आए थे पर यहाँ उनका हमउम्र ममेरा भाई मुन्ना चूड़ीदार पजामा या रेडीमेड हॉफ पैंट पहनता है। चन्दू घर से बापू की सफेद धोती उठा लाए हैं जिसे दुहरकर वह लुंगी की तरह पहनते हैं। वैसे उन्हें यह जरा भी नहीं पसन्द है पर

इस तरह वह अपनी एक ठसक बनाए रखने की कोशिश करते हैं और यही जाहिर करते हैं कि उन्हें तो यही पसन्द है।

यह स्थिति सिर्फ कपड़ों के ही मामले में नहीं है। जूते, किताबें सारे मामलों में यही होता है। मुन्ना के पास नई नई किताबें होती हैं और चन्दू के पास हमेशा वही पुरानी किताबें जिनके कई कई पन्नो फटे रहते हैं। चन्दू लगातार इन स्थितियों के बारे में सोचते हैं और पछताते हैं कि वे यहाँ क्यों आए। चन्दू को बापू पर गुस्सा आता है। वे भूल जाते हैं कि वे खुद भी यहाँ आने को लेकर कितने उत्साही और उतावले थे। बहुत सोचने लगे हैं चन्दू और जितना सोचते हैं उतना ही क्षोभ और हीनता के गर्त में समाते चले जाते हैं। बार बार उनका मन कुछ तोड़ने-फोड़ने का करने लगता है पर किसी तरह से वह खुद को रोके रखते हैं।

दिक्कत वहाँ से आई जहाँ पहले से ही हीनता के गर्त में सिर से पाँव तक धँसे चन्दू को अनेक तरीकों से बार-बार यह एहसास कराया जाने लगा कि वे कितने हीन हैं और इस काम में नाना, जो कि एक अर्थ में उनके यहाँ रहने की वजह बने थे, से लेकर मामियाँ, ममेरे भाई बहन, यहाँ तक कि गाँव के लोग भी जाने अनजाने भागीदार होते।

यह काम कई तरीके से होता। मान लो परवल चन्दू को नहीं पसन्द, तो मामी कहतीं कभी परवल खाया भी है। पराठे चन्दू को कभी नहीं अच्छे लगे तो इसको लेकर उन पर ताना कसा जाता कि बाजरे की सूखी रोटी तोड़ी है अब जबान को नरम चीजें कैसे पसन्द आएँगी।

ऐसे ही चन्दू एक बार कपड़ा धुल रहे थे तो उनकी एक मौसी जिन्हें अपने सम्पन्न होने का बड़ा घमंड था, कह गईं कि चन्दू ये रिन साबुन है, यह कपड़े के एक ही तरफ लगाया जाता है, दोनों तरफ नहीं। इसके बाद एक गन्दी नखरीली हँसी का दृश्य है जिसे चन्दू कभी नहीं भूल पाएँगे। हँसने के बाद मौसी ने कहा कि तुम्हारे घर में साबुन आता भी है या कपड़े रेह से ही धुले जाते हैं।

मौसी के इस वाक्य के बाद चन्दू शर्म से काँपने लगे। उनके मन में आया कि कुछ ऐसा हो जाए कि वे वहीं का वहीं गायब हो जाएँ। चन्दू तो गायब नहीं हो पाए पर साबुन जरूर गायब होने लगे। चन्दू के गुस्से को एक दिशा मिल गई। नहाने का हो या कपड़े का, चन्दू साबुन उठाते और छत पर पहुँच जाते। मामा के घर के पीछे एक गड़ही थी जिसमें आसपास के सभी घरों का गन्दा पानी जमा होकर सड़ता रहता था। इस गड़ही के चारों तरफ घनी बँसवारियाँ थीं, जिन पर जो जिसकी तरफ थीं उन लोगों ने कब्जा कर रखा था। इन बँसवारियों से होकर कोई गड़ही की तरफ जाने का रुख भी नहीं करता था लिहाजा कुछ भी उठा कर फेंक देने के लिए ये जगह बेहद मुफीद थी। चन्दू दुमन्जिली छत पर जाते और गड़ही की तरफ साबुन की टिकिया उछाल देते, जो गन्दे बजबजाते पानी में एक आवाज भर पैदा करती। यह आवाज चन्दू को एक हिंसक खुशी से भर देती।

जब घर में साबुन की गुम टिकिया ढूँढ़ी जा रही होती तो चन्दू भी अपने ममेरे भाइयों बहनों के साथ ढूँढ़ रहे होते। उनका मन भीतर ही भीतर खुशी से खदबदाता रहता। हालाँकि बाद के दिनों में उन पर शक भी किया गया कि वह साबुन की टिकिया छुपाकर रखते जाते हैं और जब घर जाते हैं तो उठा ले जाते हैं पर सही बात कोई नहीं जान पाया।

दरअसल चन्दू विरोधियों के बीच थे इसलिए वे धीरे-धीरे घात लगाकर काम करना सीख गए थे। पता चला कि पन्द्रह बीस दिन सब कुछ सामान्य है और कोई घटना नहीं घटी पर अगले हफ्ते चन्दू कई कारनामे एक साथ कर गुजरते। साबुन से शुरुआत हुई तो चन्दू खुलते ही चले गए। उन्हें एक रास्ता मिल गया था जिससे वे अपने भीतर की आग को बुझाते रहते। वह लगातार मौके का इन्तजार करते। मन ही मन साजिशों के जाल बुनते और पता नहीं क्या क्या सोचते रहते। सोचते-सोचते कभी उदास हो जाते तो कभी मुस्कुराते और इस क्रम में धीरे-धीरे वे इतने घुन्ने होते चले गए कि उनके चेहरे पर तो एक चुप्पी छाई होती और मन में खुशियों के लड्डू फूट रहे होते या फिर इसका उल्टा वे उदासी के महासागर में गोते लगा रहे होते।

बाद के अनेक दृश्य हैं जिनमें चन्दू ममेरे भाई की किताब के पन्ने फाड़ रहे हैं। चन्दू साइकिल पंक्चर कर रहे हैं। कोई किताब छुपा कर टाँड़ पर फेंक दे रहे हैं। छत पर से कोई कपड़ा पिछवाड़े गिरा दे रहे हैं, कुछ इस तरह कि कोई देखे तो यही समझे कि हवा से चला गया होगा। अपने इन कारनामों के लिए चन्दू हमेशा ऐसा कोई समय चुनते जब उनके ममेरे भाइयों में आपस में कोई झगड़ा दिखाई पड़ता। छोटे मामा का बड़ा लड़का बंटी चन्दू की नाक में दम किए रहता पर वह नाना और मामा मामी को इतना प्यारा था कि हर सन्देह से परे था। चन्दू अपने कारनामों की वजह से कभी नहीं पिटे बल्कि बंटी की झूठी शिकायतों की वजह से ज्यादा पिटे। पिटने के कई मौके ऐसे भी रहे जब उन्हें किसी बात का प्रतिकार करने की वजह से पीटा गया।

इस बंटी का किसी से कोई झगड़ा होता तो यह चन्दू के लिए बदले का सबसे सुनहरा मौका होता। यह तरीका इतना प्रभावी रहा कि धीरे धीरे दूसरे मामा का परिवार उसे सन्देह की नजर से देखने ही लगा। इस बंटी का और क्या करें चन्दू? आलू की बुवाई हो रही है। नाना सब बच्चों को लेकर आलू की बुवाई करवा रहे हैं। चन्दू भी हैं। बंटी खेत से ढेले उठा उठा कर चन्दू को मार रहा है। जब भी ढेला लगता है चन्दू खिसिया कर रह जाते हैं। वह सीधा प्रतिकार करना चाहते है पर बंटी नाना के आसपास ही चक्कर लगा रहा है। ऐसे ही एक तेज ढेला आकर चन्दू की कनपटी पर लगता है। चन्दू गुस्से से तनतना जाते हैं और इतने दिनों का अर्जित अभ्यास कि बदला लेने के लिए सही मौके का इन्तजार करें उनसे नहीं हो पाता। वह बदले में एक बड़ा सा ढेला उठाते हैं और पूरे दमखम से बंटी को दे मारते हैं। चन्दू का दुर्भाग्य कि वह ढेला बंटी को न लग कर नाना को जा लगता है। नाना चन्दू को खदेड़ लेते हैं। चन्दू पकड़े जाते हैं और उनकी उसी खेत में जी भर के कुटम्मस होती है।

चन्दू के अगले कई दिन अब छुप छुप कर बीतेंगे। उनके छुपने की कई जगहें हैं। मामा के

घर के आगे का हिस्सा पहले कच्चा था और पीछे का पक्का बना था। बाद में जब आगे वाला हिस्सा बना तो पीछे वाले हिस्से की छत नीची रह गई। अब मकान के नए हिस्से की छत पर से पुराने हिस्से की छत पर जाने के लिए एक सीढ़ी नीचे उतरती है। सीढ़ी के नीचे की जगह में कुछ फालतू सामान पड़े रहते हैं। चन्दू ने अपने लिए उन्हीं फालतू सामानों के बीच एक छोटी सी जगह खोज निकाली है। जिसमें वह गाहे बगाहे जरूरत के वक्त जाकर बैठ जाते हैं। मकान के पुराने वाले हिस्से में छत पर दो कमरे हैं जिनमें से एक कमरे में दो पुरानी चारपाइयाँ पड़ी हुई हैं। इन चारपाइयों पर अब कोई नहीं लेटता। चारपाइयों पर फटे पुराने बिस्तर गंजे रहते हैं। कई बार चन्दू भी इन बिस्तरों का हिस्सा बन जाते हैं। एक बार जब उन्हें लाल हाँड़ा ने डंक मारा तो वह पूरे दो दिन उन्हीं बिस्तरों पर करवटें बदलते रहे। दूसरे दिन शाम को जब छोटे मामा को चन्दू की सुधि आई तो उन्होंने चन्दू को बुलाया और कुछ झाड़ फूँक का नाटक किया। चन्दू का दर्द तब तक ऐसे ही काफी कम हो गया था सो उन्होंने मामा को खुश करने के लिए कह दिया कि उनका दर्द चला गया। इसके बाद चन्दू उठे और अपने मनपसन्द काम में जुट गए।

मामा के घर के सामने एक शिव मंदिर है। मंदिर के पीछे काफी जगह खाली है। चन्दू ने यहाँ वहाँ से लाकर तमाम तरह के पौधे वहाँ लगा रखे हैं। गेंदा, गुड़हल, बेला, हरसिंगार, चाँदनी, मुर्गकेश, तरह तरह के फूल, वैसे ये सब अलग-अलग मौसम के फूल हैं पर चन्दू अपनी स्मृतियों में जब भी इस फूलवाड़ी को देखेंगे तो उन्हें सारे ही फूल एक साथ खिले नजर आएँगे।

नानी चन्दू से खुश रहती हैं, इसलिए भी कि उन्हें पूजा के लिए तरह तरह के फूल मिल जाते हैं। चन्दू के पहले उन्हें सिर्फ पीले कनेर के सहारे ही रहना पड़ता था। तो नानी चन्दू से खुश तो रहती हैं मगर... बस यही एक मगर लगा रहता है। नानी अकेली हैं जहाँ से चन्दू को थोड़ी ओट मिलती है पर ये ओट भी कई बार ओट में ही मिल पाती है। चन्दू का अपने ममेरे भाइयों बहनों से झगड़ा वगैरह होता है तो गलती चाहे किसी की भी हो, नानी चन्दू को ही समझाती हैं। कई बार तो मीठे लहजे में डाँट भी देती हैं। चन्दू को ये डाँट तब और मीठी लगती है जब नानी उन्हें अपनी कोठरी में बुलाती हैं और कभी पेठा, कभी अनरसे की पूड़ी, कभी दलपट्टी तो कभी बेसन के लड्डू देती हैं।

चन्दू के ममेरे भाइयों के अलावा कुछ दूसरे भी स्थायी दुश्मन हैं। एक चितकबरी गाय है जिसका नाम नाना ने गौरी रख छोड़ा है। गौरी पता नहीं क्यों चन्दू को पसन्द नहीं करती। जब चरने जाती है तो चन्दू को इतना परेशान करती है कि चन्दू का दम निकल जाता है जबकि मुन्ना उसे डाँट भी देता है तो वह गाय से भीगी बिल्ली बन जाती है। इसी गौरी को चन्दू डंडा दिखाता है तब भी उसके ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ता। चन्दू गौरी के पीछे पीछे दौड़ता रहता है फिर भी कभी वह इस खेत में मुँह मार देती है तो कभी उस खेत में। एक बार वह ठकुराने के ददन सिंह के खेत में घुस गई जिनकी मामा के यहाँ से पुरानी दुश्मनी है। तो ददन सिंह ने चन्दू का कान जम कर उमेठा, बाहें मरोड़ी और पीठ पर मुक्का मारा।

चन्दू अपमान और दर्द से रोते बिलबिलाते गौरी पर झपटे और गुस्से में गौरी की पीठ पर दनादन डंडे बरसा दिए। गौरी भागती रँभाती नाना के पास जा पहुँची। पीछे लुटे पीटे दौड़ते हाँफते चन्दू आए जहाँ पन्नालाल का बेंत उनका इन्तजार कर रहा था।

पन्नालाल का बेंत चन्दू का दूसरा स्थायी दुश्मन है। छोटे मामा के पास एक बेंत है जिसे वह महीने में एक बार तेल जरूर पिलाते हैं। इस बेंत को बातचीत में सब पन्नालाल का बेंत कहते हैं। पन्नालाल गाँव का ही गरीब आदमी था जिसको किसी बात पर छोटे मामा ने इस बेंत से मारा था। इसके बाद पन्नालाल बहुत दिन दिनों तक चारपाई पर पड़ा रहा और ठीक होने के बाद कमाने के बहाने गाँव छोड़कर कहीं चला गया। तब से बेंत का नाम पन्नालाल का बेंत पड़ गया।

इसके बाद से मामा का जब भी किसी से झगड़ा होता है वह उसे पन्नालाल के बेंत का नाम लेकर धमकाते हैं और चन्दू के ममेरे भाई बहन उन्हें धमकाते हैं कि आने दो पापा को, पन्नालाल के बेंत से चमड़ी न कटवा दें तब कहना।

चन्दू इस बेंत से बहुत डरते हैं।

चन्दू सलमान खान से भी बहुत डरते हैं।

मामा के यहाँ टी.वी. पर फिल्में वगैरह देखते-देखते अचानक एक दिन चन्दू ने महसूस किया कि उनके सीने में भी एक दिल है जो साथ में पढ़ने वाली एक लड़की के लिए धड़कता है। प्यार के जोश में चन्दू ने एक दिन लड़की को आई लव यू बोल दिया। लड़की कुछ नहीं बोली और चली गई। लड़की बड़ी मामी की सहेली की बेटी है और मुन्ना से उसका ठीकठाक संवाद है। दूसरे दिन ठीक उसी समय चन्दू ने उसे फिर से आई लव यू बोला तो लड़की ने चप्पल दिखाई और दूसरे दिन क्लासटीचर से तथा मामी से बताने की धमकी देकर चली गई। क्लास में तो चन्दू अफोर्ड कर सकते थे पर मामी को बताया जाना, अपने पिछले अनुभवों के आधार पर उन्होंने तुरन्त कुछ दृश्यों की कल्पना कर ली कि मामी उनसे सारी बातें खोद खोदकर पूछ रही हैं, मुन्ना छुपकर सारी बातें सुन रहा है। मामी सारी बातें मामा को बता रही हैं, मामा सारी बातें नाना को बता रहे हैं, नाना ने बापू को बुलाया है और चन्दू को बापू की मार के कई भयानक दृश्य आज भी याद हैं। चन्दू बापू की मार से बहुत डरते हैं।

तो यही सब सोच कर उन्होंने प्यार से तोबा कर ली पर इससे अच्छा तो वे इस खेल में शामिल ही रहते। दो दिन बाद ही मुन्ना उनसे मजे लेने लगा और उनकी आशिकी के किस्से पूछने लगा। चार दिन बाद से ही चन्दू की भूतपूर्व सम्भावित प्रेमिका के पास सलमान खान की चि_ियाँ पहुँचने लगीं। जाहिर है कि चन्दू को इसके बारे में कुछ भी नहीं पता चला। तब भी नहीं जब एक दिन बड़े मामा ने पूछा कि चन्दू तुम्हें सलमान खान बहुत पसन्द है क्या, तो चन्दू ने मिनमिनाती आवाज में कहा कि नहीं, मुझे सलमान खान बिल्कुल नहीं

पसन्द है। मुझे तो गोविन्दा पसन्द है। मामा उस समय तो कुछ नहीं बोले पर मामा के पूछने का मतलब चन्दू को तीन दिन बाद रविवार के दिन समझ में आया जब मामी और लड़की की माँ के सामने उनकी बाकायदा पेशी हुई। चन्दू के सामने सलमान खान के खतों का पुलिन्दा रख दिया गया और पहले से ही यह तय मानते हुए कि सलमान खान कोई और नहीं बल्कि चन्दू ही हैं, उन पर देर तक जोर डाला गया कि वे कुबूल कर लें कि वही सलमान खान यानी कि इन खतों के लेखक हैं। फिर उन्हें झाँसा दिया गया कि अगर वे अपनी गलती मान लें तो उन्हें कुछ नहीं कहा जाएगा और नाना या बापू से भी नहीं बताया जाएगा। चन्दू नहीं माने तो नहीं माने इसके बावजूद शक की सुई लम्बे समय तक उन पर टँगी रही। बात आगे बढ़ती रही। नाना से बताया गया और बापू से बताने के लिए विशेष व्यूह की रचना की गई।

हुआ यह कि फिल्मी गीतों की एक फटी पुरानी किताब चन्दू को जाने कहाँ से मिल गई। जिस समय उन्हें वह किताब मिली उस समय वह प्रेम में थे सो वह किताब उन्हें अच्छी भी लगी। चन्दू ने लेई से चिपकाकर किताब की हालत सुधार ली और उस पर अपने प्रिय हीरो गोविन्दा की तस्वीर चिपका दी। चन्दू एक दिन इसी किताब का पारायण करते हुए बैठे थे कि बड़ी मामी ने यह किताब देख ली और यह कह कर चन्दू से माँग लिया कि वे भी पढ़ना चाहती हैं। चन्दू बेचारे भला क्या करते, उन्होंने बिना किसी नानुकुर के वह किताब मामी को दे दी। बाद में कई बार चन्दू का मन हुआ कि वह मामी से किताब वापस माँग लें पर उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। मामी ने किताब क्यों माँगी थी इसका खुलासा तब हुआ जब चन्दू के बापू आए। मामी ने चन्दू के बापू को फिल्मी गानों की वह किताब दिखाई और बोली कि देखिए आप के चन्दू आजकल क्या क्या पढ़ रहे हैं। इसके बाद उन्होंने पूरा सलमान खान प्रसंग बापू को बता दिया। जाहिर है कि मामी की इस कहानी में सलमान खान कोई और नहीं बल्कि चन्दू ही थे।

चन्दू की रीढ़ तक में कँपकँपी दौड़ गई। बापू के गुस्से से वह अच्छी तरह परिचित थे पर पता नहीं क्या सोच कर बापू ने समझदारी दिखाई और चन्दू पर एक ठंडी नजर भर डालकर रह गए। बापू जब घर जाने लगे तो उन्होंने कहा कि चलो घर हो आओ। तुम्हारी अम्मा ने बुलाया है, एक दो दिन में लौट आना। चन्दू बापू को ना नहीं बोल सके। वैसे जब से वह यहाँ आए हैं अपना घर उन्हें पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा लगने लगा है पर इस समय चन्दू घर नहीं जाना चाहते क्योंकि बापू के इरादे उन्हें अच्छे नहीं लग रहे थे और बापू के भीतर से पिटाई के घने बादलों के उमड़ने घुमड़ने की आवाज आ रही थी।

पर चन्दू को घर जाना पड़ा। मामा के घर से चन्दू का घर करीब बीस मील है। पूरे बीस मील चन्दू बापू की साइकिल के कैरियर पर सिकुड़े से बैठे रहे। पूरे रास्ते बापू उनकी खबर लेते रहे। रही चन्दू की बात तो पहले तो उन्हें यही नहीं समझ में आया कि एक पुरानी फिल्मी गाने की किताब पढ़ने या रखने में भला क्या दिक्कत थी पर चूँकि मामी से लकर बापू तक सभी ऐसी नाकिस किताब रखने के खिलाफ थे इसलिए चन्दू ने मिनमिनाते हुए

अपना अपराध दूसरे पर धकेलने की कोशिश की और कहा कि ये किताब उन्हें नवाब अली यानी चन्दू के स्कूल के संगीत टीचर ने दी थी और कहा था कि गाने याद कर लेना तो सुर लय ताल सिखा देंगे। बापू ने कहा कि वे नवाब अली को जानते हैं और मिलने पर उनसे इस बारे में पूछेंगे।

बापू थोड़ी देर चुप रहे, फिर पूछा कि ये सलमान खान का क्या किस्सा है। चन्दू ने कहा कि वे सलमान खान नहीं हैं और उन्हें मुन्ना फँसा रहा है। यह कहते कहते चन्दू रोने लगे। ये उनका आखिरी अस्त्र था या शायद डर का चरम। बापू चुप हो गए फिर पूरे रास्ते बापू कुछ नहीं बोले फिर भी चन्दू पूरे रास्ते सँसे रहे। कोई पूछे तो चन्दू यही बताएँगे कि यह सफर उनकी जिन्दगी का एक मुश्किल सफर रहा। बापू जब तक उनकी खबर लेते रहे और बाद में जब चुप भी हो गए तब भी पूरे रास्ते चन्दू को यही लगता रहा कि बापू अभी साइकिल रोकेंगे और सड़क पर ही उन्हें पीटना शुरू कर देंगे। पर चन्दू की किस्मत अच्छी थी। बापू ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। फिर भी पूरे रास्ते जिस भयानक डर और आशंका में उनका समय गुजरा वह शायद पिटाई से भी बढ़ कर था। इससे अच्छा तो बापू ने उन्हें पीट ही दिया होता तो इस डर और आतंक से तो उन्हें मुक्ति मिल गई होती।

घर पहुँचकर बापू ने पानी मँगाया, पिया और फिर चन्दू को अपने पास बुलाया। चन्दू को लगा कि अब बस कयामत आ ही गई। काँपते हुए चन्दू बापू के पास पहुँचे। बापू बहुत देर तक चन्दू को देखते रहे। चन्दू की नजरें उठा कर बापू की तरफ देखने की हिम्मत तो नहीं हुई पर बापू की उस निगाह में ऐसा कुछ जरूर था जिसे चन्दू पहचान नहीं पा रहे थे। बापू ने चन्दू से बैठने के लिए कहा तो चन्दू बैठ गए। आखिरकार बापू की चुप्पी टूटी, उन्होंने चन्दू के सिर पर हाथ रखा और बोले अब तुम इतने बड़े हो गए हो कि घर की हालत देख सकते हो। वहाँ पढ़ने गए हो तो पढ़ने में मन लगाओ। इस तरह की चीजों में नाक क्यों कटा रहे हो। बापू फिर चुप हो गए, थोड़ी देर बाद बोले जाओ, सुबह तैयार हो जाना। कल मुझे कचहरी जाना है। मैं तुमको सोराँव में छोड़ दूँगा। वहाँ से तुम चले जाना।

चन्दू को अपने कानों पर भरोसा नहीं हुआ। चन्दू को इस बात पर भी भरोसा नहीं हुआ कि बापू ने उन्हें बिना मारे छोड़ दिया। वे वैसे ही बुत बने पड़े रहे और जब उन्हें इस बात का एहसास हुआ तो खुशी के मारे वह वहीं खड़े खड़े भें भें करके रोने लगे। अब चौंकने की बारी बापू की थी। बापू ने चन्दू को चुप होने के लिए कहा और उठकर खेत की तरफ चल दिए।

बापू गए तो अम्मा पास में आ गईं। अम्मा ने चन्दू से पूछा क्या हुआ क्यों रो रहे हो। चन्दू उसी तीव्रता से चुप हो गए पल भर पहले जिस तीव्रता से रो रहे थे। वे अम्मा से कभी नहीं झूठ बोल पाए। उन्होंने सब कुछ अम्मा को जैसे का तैसा बता दिया। अम्मा सुनतीं रहीं। उनके चेहरे के भाव पल पल बदलते रहे। जब चन्दू सब कुछ कह चुके तो अम्मा बोलीं, थोड़े दिनों की बात है बेटा, अपने पर काबू रखो। ये जो कुछ तुम कर रहे हो, इससे तुम्हें क्या मिल जाता है? मुन्ना की किताब फाड़ने पर तुम्हें नई किताब मिल जाती है क्या? फिर ये

सब करने का क्या फायदा। उनकी किस्मत उनके साथ हमारी किस्मत हमारे साथ। फिर अम्मा एक एक करके नानी, नाना, मामी, मामा, या और भी गाँव के तमाम लोगों के बारे में पूछती रहीं। चन्दू ने सबके बारे में बताया। अम्मा ने सब कुछ सुना फिर बोली बेटा किसी भी तरह निबाह लो और ये बातें भूलकर भी अपनी दादी या बापू से मत कहना। मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ।

दूसरे दिन चन्दू फिर से मामा के यहाँ पहुँच गए। इस बार चन्दू और चुप चुप रहने लगे। इस बार के बापू चन्दू की समझ में नहीं आए। इस बार की अम्मा चन्दू की समझ में नहीं आयीं। वह लगातार बापू, अम्मा और अपने घर के बारे में सोच रहे थे। आखिर में उन्होंने सोचा कि अगर उनके पास खूब पैसा हो जाए तो स्थितियाँ एकदम बदल जाएँगी। इसके बाद चन्दू ने इस बारे में विस्तार से सोचा कि जब उनके पास पैसा हो जाएगा तो वे क्या क्या करेंगे। सबसे पहले उन्होंने सोचा कि वह मामा कि गाँव में ही एक पक्का घर बनवाएँगे जो मामा के घर से दुगुना ऊँचा होगा। फिर उन्होंने अपने गाँव के घर के बारे में सोचा। कपड़ों के बारे में सोचा, किताबों के बारे में सोचा, फिल्मों के बारे में सोचा, अपना एक सिनेमाहॉल बनवाने के बारे में सोचा और आखिर में उन्होंने एक हीरोपुक खरीदने के बारे में सोचा। मुन्ना साइकिल से स्कूल जाता है तो वे हीरोपुक से जाएँगे।

चन्दू अपने में मगन बैठे यही सब सोच रहे थे कि हीरोपुक में ब्रेक लग गया। नाना चिल्ला रहे थे कि इतनी देर हो गई और अभी तक गौरी की सानी पानी नहीं हुई। चन्दू बेमन से उठे, खाँची उठायी और भूसा निकालने के लिए भुसौल की तरफ बढ़ गए। भूसा निकालते हुए उनके सामने यह यक्षप्रश्न उपस्थित हुआ कि सब कुछ तो ठीक है वे करेंगे पर इसके लिए पैसा कहाँ से आएगा। पैसा आने का एक रास्ता तो वही था जिसके लिए बापू ने रास्ते में समझाया था पढ़ लिख कर कलेक्टर बनने का। पर यह रास्ता बहुत लम्बा था दूसरे इसमें हीरोपुक से स्कूल जाने की गुंजाइश नहीं बचती थी इसलिए सानी पानी करते हुए चन्दू ने पैसे कमाने के कुछ दूसरे तरीके खोजने शुरू किए और तब उन्हें सोने के सुअर का ध्यान आया।

सोने के सुअर का किस्सा चन्दू को पहले कभी नानी ने सुनाया था कि नहर के पार का टीला जिस पर तमाम तरह के पेड़ रहते हैं, वहीं पेड़ों के बीच में एक कुआँ है। कुएँ में कुएँ की दीवाल से चिपका हुआ एक पीपल का पेड़ है जिसकी जड़ें कुएँ की दीवाल फाड़ कर मिट्टी में तो समाई ही हैं, सीधे दीवाल में चिपकी हुई पानी के भीतर तक चली गई हैं। पानी में एक सुअर रहता है। सुअर सोने का है और सात कड़ाही सोने का मालिक है। जब सुअर चलता है तो उसके पीछे सोने की सात कड़ाहियाँ घूमती हुई चलती हैं। उस समय जमीन में कान लगाओ तो जमीन से घनन घनन की आवाज आती है। धरती धीरे धीरे काँपने लगती है। जब कभी ये सुअर धरती के ऊपर टहलने के लिए निकलता है तो कुएँ की जगत फट जाती है और कुएँ से पानी बहने लगता है। पूरे टीले के चारों तरफ पानी भर जाता है। टीले के बगल में जो तालाब हैं वह कुएँ के पानी से ही बारहों महीने लबालब भरे रहते हैं।

टहलने के बाद जब सुअर कुएँ में वापस लौटता है कुएँ की जगत फिर पहले जैसी हो जाती है।

तो नानी ने बताया कि सुअर कुएँ में रहता है। उसका सब कुछ सोने का है, सोने की पूँछ, सोने की थूथन, सोने के दाँत, सोने के बाल। उसकी पूरी की पूरी देह सोने की है और जो उसे एक बार देख लेता है फिर वह कुछ और देखने के काबिल नहीं बचता।

यही सोने का सुअर चन्दू के भीतर समा गया। पल पल बेचैन करने लगा। वह लगातार इसी सुअर के बारे में सोचते रहते। उन्होंने सुअर पर एक तुकबंदी भी रच डाली जिसे वह गाहे बगाहे गुनगुनाते रहते।

सोने के सुअर के सोने के बाल हैं

सोने के सुअर की सोने की खाल है

सोने के सुअर के सोने के नाखुन हैं

सोने के सुअर में सोने का खून है।

ऐसे ही करते करते सुअर चन्दू के सपनों तक में घुस गया। कभी अपनी थूथन से चन्दू को चूमता, कभी पूँछ से हवा करता, कभी गुर्राता तो कभी दूर से ही ललचाता और एक दिन उसने चन्दू को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह टीले पर सुअर से मिलने जाएँगे।

यह एक घनी अँधेरी रात थी जिसमें चन्दू ने सुअर से मिलने जाने की हिम्मत जुटायी। रात का पहला पहर बीत रहा था जब चन्दू अपने कमरे से निकले। पहले बारजे पर आए फिर खिड़की के सहारे नीचे आ गए। अँधेरी रात सन सन कर रही है। कहीं कहीं कुत्ते भौंक रहे हैं। आसमान में तारे चमक रहे हैं पर उनकी चमक कुछ भी देखने के लिए नाकाफी है। चन्दू रास्ता टटोलते हुए आगे बढ़ रहे हैं। उनके रोंगटे सन्न भाव से खड़े हैं और हल्की से हल्की आहट को भी उन तक पहुँचाने के लिए तत्पर हैं। उनकी आँखों की पुतलियाँ लगातार नाच रही हैं।

चन्दू ने अपना रास्ता इतना चुपचाप तय किया कि एक कुत्ता तक नहीं भौंका। चन्दू नहर पर पहुँचे तो नहर कलकल गलगल की आवाज करते हुए बह रही थी। नहर के पास ठंडी ठंडी हवा बह रही थी। चन्दू ने एक एक करके अपने सारे कपड़े उतारे और नहर किनारे लगे एक पेड़ की डाल पर टाँग दिया। इसके बाद चन्दू नहर में उतर गए। नहर पार करने के बाद चन्दू ने बदन का पानी झटका और टीले की तरफ बढ़ गए।

टीला अपने ऊपर के जंगल सहित जैसे कोई बूढ़ा शैतान लग रहा था। चन्दू को डर सा

लगा, सीने में कुछ धक सा होकर रह गया। एक बार तो चन्दू ने सोचा कि वापस लौट जाएँ पर तभी उन्हें भूतों और चुड़ैलों से जुड़े बहुत सारे किस्से याद आ गए जिनमें डर कर भागने वालों का भूत पीछा करते हैं और उन्हें पकड़ लेते हैं पर जो भूतों से नहीं डरता भूत खुद उससे डरते हैं और उसकी मनचाही मुराद पूरी करते हैं। सो चन्दू वापस नहीं पलटे और धीरे धीरे चलते हुए कुएँ के पास पहुँच गए।

यह एक विशाल कुआँ था। चन्दू कुएँ की जगत पर पहुँचे तो उन्हें आभास हुआ कि कुआँ काँप रहा है। कुएँ के कई खम्भे गिर गए थे जिनकी जगह खाली हो गई थी। जो खम्भे खड़े थे वे अपने अनियमित क्रम में और भी डरावने लग रहे थे। कुएँ की जगत पर उगा पीपल का पेड़ ऐसा लग रहा था जैसे कुएँ का ही एक खम्भा जीवित होकर बढ़ता चला गया हो। हवा के बहाव में पीपल के पत्ते चटचट की आवाज कर रहे थे। तभी ऊपर से चाँद निकल आया जो एकदम कुएँ की सीध में था। चन्दू को ऐसा लगा जैसे आसमान से कोई उनकी मदद के लिए टार्च दिखा रहा है।

उत्तेजित चन्दू ने पुकारा। सोने के सुअर कहाँ हो तुम? तुम जो इतनी धन दौलत लेकर घूमते हो वह तुम्हारे किसी काम की भी है? सुनो क्या तुम मेरी बात सुन रहे हो?

चन्दू को लगा, जैसे कुएँ में कुछ चमका फिर तुरन्त ही चमक गायब हो गई। चन्दू कुएँ में झाँकते हुए बोले, क्या तुम मुझसे आइस पाइस खेल रहे हो? सोने के सुअर किस बात का घमंड है तुम्हें? क्या इसका कि तुम सोने के हो या इसका कि तुम्हारे पास सात कड़ाही सोना है? इस सोने का आखिर क्या करोगे तुम? आवाज दो या तुम बोल ही नहीं पाते हो? हाँ तुम तो सुअर हो और सुअर भला बोल कैसे सकता है?

जवाब में नीचे से एक घनघनाती हुई गुर्राहट आई। गुर्राहट की आवाज चन्दू को सहलाती हुई लगी। उन्हें लगा कि सुअर उन्हें नीचे बुला रहा है। उन्हें लगा कि उनका सपना साकार होने में बस थोड़ी ही देर है। सुअर से वे कहेंगे कि सुअर अगर उन्हें एक कड़ाही सोना दे दे तो वे यहीं मामा के गाँव में जहाँ उन्होंने अपना घर बनवाने के लिए सोच रखा है वहीं घर के सामने सुअर का एक मन्दिर बनवाएँगे और रोज सुबह शाम सुअर की पूजा किया करेंगे।

यही सब सोचते सोचते चन्दू ने पीपल की जड़ को थाम लिया और नीचे उतरने लगे। नीचे से फिर घुर्र घुर्र की आवाज आई। चन्दू ने नीचे उतरते हुए सुअर को फिर से पुकारा और कहा कि वह चारों तरफ सुअर की महिमा का प्रचार किया करेंगे। इस तरह चारों तरफ सुअर की जय जयकार हो जाएगी। चन्दू नीचे उतरते हुए लगातार प्रार्थना कर रहे थे कि सुअर सामने आओ। सुअर सामने आओ। नीचे से घुर्र घुर्र की आवाज फिर से आई। चन्दू भूल गए कि वे अँधेरी रात में एक भयानक कुएँ में पीपल की जड़ों से लटके हुए और भी गहरे अँधेरे में उतरते चले जा रहे हैं। चन्दू एक सम्मोहन में पहुँच गए। एक जुनून था जो उन पर तारी हुआ जा रहा था। ऐसे ही चन्दू नीचे उतरते रहे। घुर्र घुर्र की आवाज आती रही। लगातार नीचे बुलाती हुई आवाज, चन्दू को ललचाती हुई आवाज।

अचानक चन्दू को लगा कि जैसे जैसे वे नीचे उतरते जा रहे हैं वैसे वैसे पानी भी नीचे उतरता जा रहा है। चन्दू पल भर को जैसे जड़ हो गए फिर उन्हें वे सारे किस्से याद आ गए जिनमें भगवान अपने भक्तों का इम्तहान लेते हैं। उन्हें लगा कि सुअर भी उनका इम्तहान ले रहा है। और आखिरकार उनके ऊपर खुश होकर उन्हें उनका मनचाहा वरदान देगा। तो चन्दू फिर से नीचे उतरने लगे पर अब तक चन्दू थक गए थे सो हाँफने लगे।

एक साँप चन्दू के बदन पर सरसराता हुआ ऊपर की तरफ निकल गया। चन्दू कुछ इस तरह सिहर गए कि पीपल की जड़ उनके हाथों से छूट गई और वह कुएँ में जा गिरे और इसी के साथ कुएँ का सारा पानी पाताल में समा गया। अब कुएँ में सिर्फ कीचड़ भरा हुआ था। नंगे चन्दू कीचड़ में कुछ इस तरह लथपथ हो गए कि वे भी कीचड़ का ही एक हिस्सा लगने लगे।

चन्दू ने कान लगाया कि शायद कहीं से घुर्र घुर्र की आवाज आए पर आवाज बन्द हो चुकी थी। कुएँ में एक भयानक सन्नाटा फैला हुआ था। चन्दू ने चीखते हुए कई बार आवाज लगाई कि सुअर तुम कहाँ हो, सुअर कहाँ हो पर न कहीं कोई चमक उभरी न कहीं से गुर्राहट की आवाज आई। अब चन्दू को डर लगा और जोर की झुरझुरी आई। चन्दू ने ऊपर की ओर देखा। आसमानी टार्च गायब थी। कुएँ में भयानक अँधेरा था। चन्दू को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। उन्होंने कुएँ की दीवाल टटोली तो पीपल की जड़ उनके हाथ में आई। चन्दू पीपल की उसी जड़ के सहारे ऊपर चढ़ने लगे। ऊपर पहुँचते पहुँचते चन्दू निढाल हो गए। उनके बदन में जरा सा भी दम बाकी नहीं बचा। उनका सपना पहले ही टूट चुका था। ऊपर पहुँच कर चन्दू पस्त होकर वहीं जगत पर लेट गए। पीपल जरा नीचे होकर उन पर हवा करने लगा। हवा से चन्दू जरा चैतन्य हुए तो उन्होंने पाया कि हजारों जोंकें उनके बदन से चिपकी हुई हैं। चन्दू ने जोर की झुरझुरी ली और जल्दी जल्दी जोंकों को नोचने लगे। जोंकें फिसल फिसल जा रही थीं। चन्दू को जोर की उबकाई आई। चन्दू को जोर से डर लगा। पीपल के पत्ते अभी भी सटासट बज रहे थे। चन्दू को लगा जैसे पीपल के ऊपर कोई बैठा उनके ऊपर हँस रहा है। पर चन्दू की ऊपर की ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई। उन्हें कँपकँपी हुई।

अचानक चन्दू पूरा जोर लगा कर नहर की ओर भागे। टीले पर के पेड़ों ने एक नग्न आकृति जो कीचड़ में सिर से पाँव तक सनी हुई थी और जिस पर सैकड़ों जोंकें यहाँ वहाँ चिपकी हुई थीं को देखा होगा तो डर के मारे काँप गए होंगे। चन्दू भागते हुए आए और नहर में कूद गए। चन्दू नहर के पानी में अपने बदन को मल मल कर नहाते रहे, जोंकें छुड़ायीं और बाहर निकल आए।

अब नंगे चन्दू को ठंड लगने लगी। चन्दू हाथों से बदन का पानी पोछते हुए उस पेड़ तक पहुँचे जहाँ उन्होंने अपने कपड़े रख छोड़े थे। कपड़े गायब थे। आसमान अब भी वैसे ही तारों से भरा था। कभी नानी ने चन्दू को बताया था कि तारे इन्द्र भगवान की आँखें हैं जिनसे वह पूरी दुनिया पर नजर रखते हैं। चन्दू तिक्त भाव से मुस्कुराए कि इन्द्र भगवान के

रहते हुए उनके कपड़े गायब हो गए। चिढ़ के मारे उन्होंने इन्द्र भगवान को अपना सूसू दिखाया और दबे पाँव मामा के घर की तरफ चल दिए।

रात खत्म होने की तरफ बढ़ रही थी। पूरब की तरफ से आसमान में एक सिन्दूरी आभा उतरने को थी। चन्दू पस्त कदमों से जरा भी आहट न करते हुए मामा के घर की तरफ लौट रहे थे। उनसे थोड़ी दूरी बनाए हुए एक कुत्ता चुपचाप उनके पीछे चला आ रहा था। घर पहुँचकर चन्दू वैसे ही बदन की पूरी चुप्पी के साथ खिड़की पर चढ़े, वहाँ से बारजे पर चढ़े फिर अपने कमरे में पहुँच गए जहाँ दूसरी चारपाई पर उनका ममेरा भाई मुन्ना सोया हुआ था।

सुबह जब मुन्ना उठा तो उसने पाया कि चन्दू नींद में सुअर सुअर बड़बड़ा रहे थे। मुन्ना शिकायत करने के लिए भागा कि चन्दू उसे सुअर कह रहे हैं। नाना आए और उन्होंने पाया कि चन्दू बुखार से तप रहे हैं। नाना ने नानी को बुलाया। चन्दू के पास बैठ कर उनका माथा सहलाते हुए नानी ने सोचा कि चन्दू ने तेज बुखार के बीच शायद कोई डरावना सपना देखा होगा। अपनी ही सुनाई हुई सोने के सुअर और उसके पैरों से बँधी सात सोने की कड़ाहियों की बात नानी शायद भूल चुकी हों।

अगले तीन दिनों तक चन्दू ऐसे ही बुखार में पड़े रहे और बीच-बीच में सुअर सुअर बड़बड़ाते रहे। बच्चों को उनके आसपास फटकने की मनाही कर दी गई। बस नानी ही अकेली थीं जो पूरे समय उनके साथ बनी रहीं। बाकी लोग आते रहे और अपनी अपनी राय देते रहे। नाना ने चन्दू के बापू को खबर करवाई। चौथे दिन जब चन्दू के बापू वहाँ पहुँचे थे उसी दिन सुबह चन्दू को होश आया था। होश में आते ही चन्दू ने नानी से कहा कि वे अपने गाँव जाएँगे और अब वे यहाँ नहीं रहेंगे।

नानी कुछ भी नहीं बोलीं। पल भर बाद चन्दू के चेहरे पर नानी का एक बूँद आँसू गिरा। चन्दू ने आँखें मूँद लीं। थोड़ी देर बाद चन्दू उठे और एक झोले में अपना सामान समेटने लगे। नानी पहले तो उन्हें देखती रहीं फिर उनकी मदद में जुट गईं।

दोपहर बाद जब चन्दू के बापू वहाँ पहुँचे तो लगभग उसी समय चन्दू अपने घर पहुँच चुके थे और यहाँ मामा के यहाँ सब चन्दू को ढूँढ़ रहे थे। नानी चुपचाप अपने कमरे में लेटी हुई थीं।

घर पर चन्दू ने अम्मा को बताया कि वे हमेशा के लिए मामा का घर छोड़ आए हैं, तो अम्मा भी कुछ नहीं बोलीं, बस बैठी चन्दू का माथा सहलाती रहीं। चन्दू ने पाया कि अम्मा हूबहू नानी की तरह उनका माथा सहला रही हैं और इस बात पर अचरज से भर गए। ठीक इसी समय एक बूँद आँसू अम्मा की आँख से भी गिरा जो चन्दू का माथा सहला रहे अम्मा के ही हाथों पर गिरा। आँसू की इस एक बूँद के बारे में चन्दू क्या कभी जान पाएँगे।